जिणदत्त-चरित

(आदिकालिक हिन्दी काव्य)

रचयिता—कविवर राजसिंह

सम्पादक :

डा० माताप्रसाद गुप्त
एम. ए., डी. लिट्.

डा० कस्तूरचंद कासलीवाल
एम. ए., पी. एच. डी.

प्रकाशक :

गैंदीलाल साह एडवोकेट

मंत्री

प्रबन्ध कारिणी कमेटी, दि० जैन अ० क्षेत्र श्रीमहावीर जी

जयपुर

—: अनुक्रमणिका :—

क्र०सं	विषय	पृ०सं०
१.	प्रकाशकीय	क.–ख.
२	भूमिका	१–४०
३.	जिणदत्त चरित	१–१६८
४.	शब्दकोष	१६९–२४०

प्रकाशकीय

हिन्दी पद संग्रह के प्रकाशन के कुछ मास पश्चात् ही 'जिणदत्त चरित' को पाठकों के हाथों में देते हुए अतीव प्रसन्नता है। 'जिणदत्त चरित' हिन्दी साहित्य की आदिकालिक कृति है और इसके प्रकाशन से हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। इसके पूर्व साहित्य शोध विभाग की ओर से 'प्रद्युम्न चरित' का प्रकाशन किया जा चुका है। इस प्रकार हिन्दी के दो आदिकालिक एवं अज्ञात काव्यों की खोज एवं प्रकाशन करके साहित्य शोध विभाग ने राष्ट्र भाषा हिन्दी की महती सेवा की है। दोनों ही कृतियां प्रबन्ध काव्य हैं और हिन्दी के आदिकाल की महत्वपूर्ण कृतियां हैं। प्रद्युम्न चरित का जब प्रकाशन हुआ था तो उसका सभी ओर से स्वागत हुआ था तथा स्व० महापंडित राहुल सांकृत्यायन, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल एवं डा० सत्येन्द्र जैसे प्रभृति विद्वानों ने उसकी अत्यधिक सराहना की थी। उसी समय पंडित राहुल सांकृत्यायन ने तो हमें 'जिणदत्त चरित' को भी शीघ्र ही प्रकाशित करने की प्रेरणा दी थी लेकिन इसकी एकमात्र प्रति डा० कस्तूरचंद कासलीवाल को जयपुर के पाटोदी के मंदिर के हस्तलिखित ग्रंथों की सूची बनाते समय उपलब्ध हुई थी इसलिए दूसरी प्रति की आवश्यकता थी। इसके पश्चात् इसकी दूसरी प्रति की तलाश करने का भी काफी प्रयास किया गया लेकिन उसमें अभी तक कोई सफलता नहीं मिली। अतः एक ही हस्तलिखित प्रति के आधार पर ही इसका प्रकाशन किया जा रहा है।

जिणदत्त चरित के सम्पादन में हिन्दी के मूर्धन्य विद्वान डा० माताप्रसाद जी गुप्त अध्यक्ष हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ने जो सहयोग दिया है उसके लिये हम आभारी हैं। डा० गुप्त जी की हमारे साहित्य शोध विभाग पर सदैव कृपा रही है। उन्होंने पहिले भी प्रद्युम्न चरित पर प्राक्कथन लिखने का कष्ट किया था।

साहित्य शोध विभाग द्वारा खोज एवं प्रकाशन का कार्य तेजी से चल रहा है और शीघ्र ही "Jain Granth Bhandars in Rajasthan" 'राजस्थानी जैन सन्तों की साहित्य साधना' पुस्तकें प्रकाशित होने वाली हैं। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची का पांचवा भाग भी शीघ्र ही तैयार होकर सामने आने वाला है। इसमें २० हजार से अधिक ग्रंथों का परिचय रहेगा। इस तरह और भी पुस्तकें प्रकाशित होने वाली हैं। साहित्य शोध विभाग की एक पंचवर्षीय योजना भी क्षेत्र कमेटी के विचाराधीन है। तथा खोज एवं प्रकाशन के कार्य को और भी अधिक गतिशील बनाने का प्रयास जारी है। अभी कुछ समय पूर्व भारतीय ज्ञानपीठ के व्यवस्थापक डा० गोकलचंद जी जैन जब जयपुर आये थे तब उन्होंने इस सम्बन्ध में कुछ सुझाव भी दिये थे। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आगामी कुछ ही वर्षों में प्राचीन साहित्य की खोज एवं प्रकाशन तथा अर्वाचीन साहित्य के निर्माण की दिशा में हम पर्याप्त प्रगति कर सकेंगे।

महावीर भवन
१-१२-६५

गेंदीलाल साह एडवोकेट
अवैतनिक मंत्री

भूमिका

"जिणदत्तचरित" की उपलब्धि डा० कासलीवाल को राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची बनाते समय हुई थी। इसकी एक मात्र पाण्डुलिपि जयपुर के दि० जैन मन्दिर पाटोदी के शास्त्र भण्डार के एक गुटके में संगृहीत है। गुटके का आकार ६½"×८" है। इसमें ३४ पत्र हैं। प्रथम १३ पत्रों में 'जिणदत्त चरित' लिखा हुआ है। शेष २१ पत्रों में अन्य छोटी १३ रचनाओं का संग्रह है। ये कृतियां संवत् १७४३ मंगसिर बुदी ७ से लेकर संवत् १७७२ तक लिपिबद्ध हुई हैं। 'जिणदत्त चरित' का 'लेखन काल सं. १७५२ कार्तिक सुदी ५ शुक्रवार'[1] है। यह प्रति पालम निवासी पुष्करमल के पुत्र महानंद द्वारा लिखी गई थी जो पञ्चमीव्रत के उद्यापन के निमित्त व्रतकर्ता की ओर से साहित्य-जगत् को भेंट दी गयी थी। प्रति कागज पर लिखी हुई है। लिपि सामान्यतः स्पष्ट है। प्रत्येक पृष्ठ पर सामान्यत. ३२ पंक्तियां तथा प्रति पंक्ति में इतने ही अक्षर हैं। लेकिन प्रारम्भ के ३ पत्र मोटी लिपि में लिखे हुये हैं। इसी तरह अन्तिम पत्रों में लिपि किंचित् पतली हो गयी है। गुटके के पत्रों का एक छोर टेढा कटा हुआ है जिससे कुछ अक्षर कट भी गये हैं।

---

१. सं. १७५२ वर्षे कार्तिक सुदि ५ शुक्रवासरे लिखितं महानंद पालवं निवासी पुष्करमलात्मज।

यादृशं पुस्तकं दृष्ट्वा, तादृशं लिखितं मया।
यदि शुद्धमशुद्धं वा, मम दोषो न दीयते॥

शुभं भवेत् लेखकाध्यापकयोः। श्रीरस्तु।
पंचमीव्रतोद्यमनिमित्तं। शुभं।

रचना का नाम

लिपिकार ने प्रारम्भ में कृति का नाम 'जिणदत्त कथा' तथा अन्त में 'जिणदत्त चउपई' लिखा है। स्वयं कवि भी अपने काव्य के सम्बन्ध में स्थिर मंतव्य नहीं रख सका है। वह भी कभी 'चरित,' कभी 'पुराण' एवं कभी 'चउपई' के नाम से रचना का उल्लेख करता है। लेकिन जैन चरित काव्यों में जीवन चरित, कथा आख्यायिका तथा धर्म कथा आदि के लक्षणों का समन्वय प्रायः हुआ है। इसलिये चरित-काव्य को कभी कभी 'कथा' एवं 'पुराण' भी कहते हैं। इसी दृष्टि को ध्यान में रख कर रल्ह कवि ने भी अपने काव्य को 'चरित,' 'कथा' एवं 'पुराण' शब्दों से अभिहित किया है। 'चउपई' शब्द का प्रयोग मुख्यतः इसी छन्द में कवि ने अपनी रचना निबद्ध करने के कारण किया है जैसा कि अन्यत्र उल्लिखित चउपई-बन्ध शब्द से प्रकट है[1]। प्रस्तुत काव्य को 'चरित' नाम से कहना ही अधिक उचित रहेगा, क्योंकि कवि ने इसे प्रायः 'चरित'[2] ही कहा है और यह (चरित) धार्मिक है इसलिए इसे 'पुराण'[3] भी कहा है।

कवि परिचय

मंगलाचरण, सरस्वतीवन्दना एवं अपनी लघुता प्रदर्शित करने के पश्चात् कवि ने अपना परिचय देते लिखा है कि वे जैसवाल जाति के श्रावक

---

१. जइय होइ कुकइत्तणि गंधु, जिणदत्त रयउ चउपई बंधु ॥२५॥
जिणदत्त पुरी भई चउपही, छप्पन हीणाधि छहमह कही ॥५५३॥

२ मइ पसाउ स्वामिनि करि तेम, जिणदत्त चरितु रचउ हउ जेम ॥१६॥
तउ पसाइ गुणु थवइ लहउ, ता जिणदत्त चरिउ हउ कहउ ॥१८॥
यहु जिणदत्त चरिउ निय कहिउ, असुह कम्मु चुइ सुह संगहइ ॥५४८॥

३. हउ अखउ जिणदत्त पुराणु, पढिउ न लखण छंद बखाणु ॥२०॥
मइ जोमउ जिणदत्त पुराणु, लाखु विरयउ अइसु पमाणु ॥५५०॥

थे [1] । पाटल उनका गोत्र था । कवि के पिता का नाम 'पंचऊलीया अमइ' था जो एक स्थान पर 'आते' भी कहा गया है । किन्तु 'आते संभवत: अमि ८_अमइ से पाठ-प्रमाद के कारण हुआ है । इनकी माता का नाम 'सिरीया' था [2] । इनके पिता का संभवत: बचपन में ही स्वर्गवास होगया था और लालन पालन माता ने ही किया था, इसलिये इन्होंने माता के प्रति अपना भक्ति-भाव प्रदर्शित करते हुये लिखा है कि सिरिया माता ने इनका बड़े ही करुणा भाव से पालन किया तथा दश मास तक उदर में रक्खा जिसकी कृतज्ञता से उऋण होना संभव नहीं था । इनकी माता धार्मिक विचारों वाली थी । कवि का नाम रल्ह था लेकिन उसके कितने ही छन्दों में 'राजसिंह' अथवा राइसिंह भी नाम आए हैं संभवत: कवि का नाम राजसिंह था लेकिन उनका लघु नाम, जिससे वे जन-साधारण में सम्बोधित किये जाते रहे होंगे 'रल्ह' रहा होगा । इसलिये कवि ने अपनी इस कृति में दोनों ही नामों का उल्लेख किया है । वैसे उस युग में छोटे नामों का अधिक प्रयोग होता था । वल्ह, पल्ह, बूचा, छीहल, पूनो आदि नाम बड़े नामों के ही विकृत नाम हैं जिन्हें कवि ही नहीं किन्तु जन-साधारण भी प्रयोग में लाते थे । ग्रंथ प्रशस्तियों में ऐसे सैकड़ों नाम पढ़ने को मिलते हैं । इसलिये यह निश्चित है कि 'रल्ह और 'राजसिंह कवि के ही दो नाम थे ।

---

१. जइसवाल कुलि उत्तम जाति, बाईसइ पाडल उतपाति ।
पंचऊलीया आते कउ पूतु, कवइ रल्हु जिणदत्त चरितु ॥२६॥
जो जिणदत्त कउ सुणइ पुराणु, तिसको होइ णाणु निव्वाणु ।
अजर अमर पउ लहइ निरुत्तु, चवइ रल्ह अमई कउ पुत्तु ॥५५१॥

२. माता पाइ नमउ जं जोगु, देखालियउ जेहि मत लोगु ।
उवरि मास दश रहिउ धराइ, धम्म बुधि हुइ सिरीया माइ ॥२७॥
पुणु पुणु पणवउ माता पाइ, जेइ हउ पालिउ करुणा भाइ ।
म उतारण हुइसउ उरणु, हा हा माइ मज्झु जिण सरणु ॥२८॥

तीन

रचनाकाल

हिन्दी के आदिकाल की कृतियों में **'जिणदत्त चरित'** ऐसी इनी-गिनी कृतियों में से है जिसमें स्वयं कवि ने रचनाकाल का उल्लेख किया हो। इस दृष्टि से भी इस रचना का विशेष महत्व है। रल्ह कवि ने इस काव्य को संवत् १३५४ (सं. १२९७) भादवा सुदि ५ गुरुवार के दिन समाप्त किया था[1]। उस दिन चन्द्रमा स्वाति नक्षत्र पर था तथा तुला राशि थी। भारत पर उन दिनों अलाउद्दीन खिलजी (सन् १२९६–१३१६) का शासन था। कवि ने उस समय की राजनैतिक अवस्था का कोई उल्लेख नहीं किया है। संभवतः उसने शासन के पक्ष–विपक्ष में लिखना ही उचित नहीं समझा।

ग्रंथ प्रमाण

कवि ने काव्य के तीन स्थलों पर पद्यों की संख्या का भी उल्लेख किया है। अन्तिम दो पद्यों में पद्यों की संख्या क्रमशः ५४३ व ५४४ भी कहीं है,[2] जबकि प्रतिलिपि कार ने इन पद्यों की संख्या ५५३ दी है। असंभव नहीं कि मूल के छंदों को प्रतिलिपिकारों ने तोड़ तोड़ कर पढा हो, इसलिए भी छंद–संख्या में कुछ वृद्धि हो गई हो। अन्य कारण भी संभव है। अतः ग्रंथ–प्रमाण हमें कवि द्वारा दिया हुआ ही स्वीकार करना चाहिए। लेकिन वे पद्य कौन से हैं जो बाद में बढा दिये गये हैं, इसका निर्णय तब तक नहीं हो सकता जबतक इस रचना की दूसरी प्रति उपलब्ध न हो।

कथा का आधार

सेठ जिनदत्त की कथा जैन समाज में बहुत प्रिय रही है। इस कथा

---

१. संवत तेरहसें चउवण्णे, भादव सुदि पंचम गुरु दिण्णे।
स्वाति नखत्तु चंदु तुलहती, कवइ रल्हु पणवइ सरसुती ॥२९॥

२. गय सत्तावन छहसय माहि (५५२)
छप्पन हीणावि छहसय कही (५५३)

पर प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी आदि सभी भाषाओं में कृतियां मिलती हैं। 'अभिधान राजेन्द्र' कोश में इस कथा का उद्भव प्राकृत भाषा में निबद्ध आवश्यक कथा एवं आवश्यक चूर्णि ग्रंथों में बतलाया गया है[1]। यह कथा वहां चक्षुरिन्द्रिय के प्रसंग पर कही गयी है क्योंकि जिनदत्त पाषाण की पुतली को देखकर ही संसार की ओर प्रवृत्त हुआ था। प्राकृत भाषा में एक और रचना नेमिचन्द्र के शिष्य सुमति गणि की भी मिलती है[2]। संस्कृत भाषा में जिनदत्त चरित्र आचार्य गुणभद्र का मिलता है। यह एक उत्तम काव्य है और जिनदत्त के जीवन पर अच्छा प्रकाश डालने वाली एक सुन्दर कृति है। यह माणकचन्द्र दि० जैन ग्रंथमाला से प्रकाशित भी हो चुका है। इसके पश्चात् अपभ्रंश भाषा में 'जिणयत्त कहा' की रचना करने का श्रेय कविवर लाखू अथवा लक्ष्मण को है जिन्होंने उसे संवत् १२७५ में समाप्त की थी[3]। अपभ्रंश भाषा में रचित यह रचना जैन-समाज में अत्यधिक प्रिय रही है अतः ग्रंथ भण्डारों में इस ग्रंथ की कितनी ही प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं। इसमें ११ संधियां हैं और जिनदत्त के जीवन पर सुन्दर काव्य रचना की गई है। हमारे कवि रल्ह अथवा राजसिंह ने लाखू कवि द्वारा विरचित 'जिणयत्त कहा' अथवा 'जिणयत्त चरित' के आधार पर नवीन रचना का सर्जन किया जिसका उल्लेख उन्होंने अपने काव्य के अन्त में बड़े आभार पूर्वक किया है[4]। रल्ह कवि ने लाखू कवि द्वारा विरचित

---

१. वसन्तपुरे नगरे वसन्तपुरस्थे स्वनामख्याते श्रावके, आ. क.।
वसन्तपुरे नगरे जियसत्तू राया जिणदत्तो सेट्ठी, आव. ५ अ।
आ. चू. (तत्कथा चक्षुरिन्द्रियोदाहरणे चक्खुंदिय शब्दे तृतीय भागे-११०५ पृष्ठे काउसग्ग शब्दे ४२७ पृष्ठे च प्रकाशिता) पृष्ठ संख्या १४६२

२. देखिये जिनरत्न कोश — पृष्ठ संख्या- १३५

३. देखिये डा० कासलीवाल द्वारा संपादित- प्रशस्ति संग्रह पृष्ठ संख्या-१०१

४. मइ जोयउ जिणदत्त पुराणु, लाखु विरयउ अइस पमाणु।
देखि विसूरु रयउ फुडु एहु, हत्थालंबणु बुहयण देहु ॥५५०॥

रचना को 'जिणदत्त पुराण' के नाम से सम्बोधित किया है। रल्ह कवि के पश्चात् भी १५ वीं शताब्दी में दो विद्वानों ने जिनदत्त के जीवन पर अलग अलग कृतियां लिखी। इनमें प्रथम महापंडित रइधू हैं जो अपभ्रंश के भारी विद्वान थे तथा उस भाषा में रचना करना गौरव समझते थे। इसी शताब्दी में गुणसमुद्रसूरि ने संस्कृत गद्य में संवत् १४५४ में जिनदत्त कथा लिखी। इसके पश्चात् २० वीं शताब्दी में पन्नालाल चौधरी ने जिनदत्त चरित्र वचनिका 'एवं बख्तावर सिंह ने' जिनदत्त चरित भाषा (छन्द बद्ध) लिखा। इस प्रकार श्रेष्ठि जिनदत्त की कथा प्रायः प्रत्येक युग में लोकप्रिय रही है और जैन विद्वान उसके जीवन पर एक न एक रचना लिखते आ रहे हैं। रल्ह कवि द्वारा रचित 'जिणदत्त चरित' पूर्वापर समय के अनुसार चतुर्थ रचना है, इस दृष्टि से भी रचना का महत्व है। रल्ह की रचना के अनुसार जिनदत्त की जीवन-कथा निम्न प्रकार है :—

कथा सार

(५६ से ६५) जिनदत्त वसंतपुर के सेठ जीवदेव का इकलौता पुत्र था। उसकी माता का नाम जीवंजसा था। उस समय वसंतपुर पर चन्द्रशेखर नाम का राजा राज्य करता था। जीवदेव नगर सेठ था और उसकी संपत्ति का कोई पार नहीं था। जिनदत्त को खूब लाड प्यार से पाला गया था। १५ वर्ष की अवस्था में उसे पढ़ने के लिये उपाध्याय के पास भेजा गया। वहां उसने लक्षण ग्रंथ, छन्द शास्त्र, तर्क शास्त्र, व्याकरण, रामायण एवं महा-पुराण पढ़े। इसके पश्चात् उसे अन्य कलायें सिखलाई गईं।

(६६ से ७६) युवा होने पर जब उसने विवाह करने की कोई इच्छा प्रकट नहीं की तो सेठ को बहुत चिन्ता हुई। सेठ ने नगर के जुवारियों एवं लंपटों को बुलाया और जिनदत्त को मार्ग पर लाने का उपाय करने के लिये कहा। अब जिनदत्त जुआरियों की संगति में रहने लगा और नगरवधुओं के पास जाने लगा लेकिन फिर भी उसका मन उनकी ओर नहीं झुका।

(७५ से १०५) एक दिन वह नन्दन वन गया और वहाँ उसने एक पाषाण की पुतली को देखा और उसकी सुन्दरता की प्रशंसा करने लगा। अब वह भी ऐसी ही किसी सुंदरी से विवाह करने की इच्छा करने लगा। जुवारियों ने जिनदत्त को जब इस प्रकार स्थिति में सेठ को [illegible] तो सेठ बड़ा प्रसन्न हुआ। जुवारियों ने सेठ से अपार धन प्राप्त किया। शिल्पकार को बुलाकर सेठ ने पूछा कि यह प्रतिमा किस स्त्री की थी। शिल्पकार ने बताया कि यह चंपापुरी के नगर सेठ विमलसेठ की कन्या विमलामती की प्रतिमा थी। सेठ ने चित्रकार से अपने पुत्र जिनदत्त का चित्र उतरवाया और एक ब्राह्मण को वह चित्र देकर चंपापुर भेजा।

(१०६ से १२७) विमलसेठ उस चित्र को देखकर एवं माता पिता के सम्बन्ध में जानकारी कर विमलामती का विवाह जिनदत्त के साथ करने की स्वीकृति देदी। बसन्तपुर से बड़ी धूम धाम से बारात चम्पापुर के लिये रवाना हुई। बारात में हाथी, घोड़े, रथ, पालकी आदि सभी थे। दोनों का विवाह हो गया और बारात बसन्तपुर लौट आई। जिनदत्त और विमलामती सानन्द रहने लगे।

(१२८ से १४५) एक दिन पालकी में बैठकर जिनदत्त चैत्यालय जा रहा था कि उसकी जुवारियों से भेंट हो गयी। उन्होंने जिनदत्त को जुआ खेलने का निमन्त्रण दिया। जिनदत्त उनकी बात टाल न सका। वह जुआ खेलने लगे और जिनदत्त उसमें ११ करोड़ द्रव्य हार गया। जिनदत्त जब दांव हार कर घर जाने लगा तो जुआरियों ने उसे बिना रुपया चुकाये जाने नहीं दिया। जिनदत्त ने अपना आदमी अपने पिता के भण्डारी (मुनीम) के पास भेजा लेकिन उसने जुआ में हारे हुये रुपयों को चुकाने से मना कर दिया। आखिर उसे विमलावती की कांचली ६ करोड़ रुपयों में बेचनी पड़ी। जिनदत्त को इससे अत्यधिक दुःख हुआ। वह घर आकर विदेश जाकर धन कमाने की सोचने लगा।

(१४६ से १५८) इसी समय उसने एक चाल चली और एक झूठा पत्र अपने श्वसुर के यहाँ से मंगा लिया जिसमें उसको बुलाने के लिये लिखा

हुआ था। जिनदत्त एवं विमलामती चंपापुरी के लिये चल दिये। यह उनकी पहली विदेश-यात्रा थी। विमल सेठ ने उनका अच्छा सत्कार किया। लेकिन ४–५ दिन पश्चात् ही वह उस विमलामती को चैत्यालय में अकेली छोड़कर दशपुर के लिये रवाना हो गया। पति के वियोग में विमलामती अत्यधिक रुदन करने लगी और उसके लौटने तक वह वहीं चैत्यालय में रहने लगी।

(१५६ से १७६) जिनदत्त दशपुर नगर के प्रवेश द्वार पर पहुँचा तो वहाँ के उद्यान को देखने लगा। इतने में ही वहाँ नगर सेठ सागरदत्त आया। इधर वह बगीचा जिनदत्त के आगमन से हरा होने लगा। हरी बाड़ी को देखकर सागरदत्त प्रसन्न हो गया और उसने जिनदत्त से उस बाड़ी को सुवासित एवं फलयुक्त करने को कहा। जिनदत्त ने शीघ्र ही प्रक्षाल का जल उन पेड़ों में सिंचन किया और वे शीघ्र ही हरे एवं फलवान हो गये। अब वहाँ आम, नारंगी, छुहारा, दाख, इलायची जामुन आदि के वृक्ष लहलहाने लगे। सागरदत्त उसके इन कार्यों से बड़ा प्रभावित हुआ और उसे अपने घर ले जाकर अपना धर्म-पुत्र घोषित कर दिया।

(१७७से१८६) कुछ समय पश्चात् जिनदत्त सागरदत्त के साथ व्यापार के लिये विदेशयात्रा पर रवाना हुआ। उनके साथ नगर के अनेक व्यापारी एवं १२ हज़ार बैलों का टांडा था। वे जहाजों में सामान लादकर चले।

(१८७से२००) उन्हें समुद्र-यात्रा का ज्ञान था। वे हवा के प्रवाह को देखकर चलते थे। वेरागनगर को छोड़ कर वे कवण द्वीप में पहुँचे। वहाँ से भंभापाटन चलकर कुण्डलपुर पहुँचे और मयलद्वीप में होकर वे पाटल तिलक द्वीप में पहुँचे। शीघ्र ही वे सहजावती नगरी को छोड़कर फोफलनगरी में प्रवेश किया। फिर वहाँ के कितने ही द्वीपों को पार करते हुये सिंघल द्वीप पहुँचे। वहाँ वे अनेक वस्तुओं का क्रय-विक्रय करने लगे। वे अपनी वस्तुओं को तो महँगा बेचते एवं सस्ते भावों से वहाँ की वस्तुओं को खरीदते।

(२०१से२१६) सिंघल द्वीप का उस समय धनवाहन नाम का सम्राट था। उसके श्रीमती नाम की राजकुमारी थी जो एक भयंकर व्याधिसे पीड़ित थी। जो भी व्यक्ति रात्रि को उसका पहरा देता था, वही मृत्यु को प्राप्त हो जाता था। इस कार्य के लिये राजा ने पहरे पर भेजने के लिये प्रत्येक परिवार को अवसर बांट रक्खा था। उस दिन एक मालिन के इकलौते पुत्र की बारी थी, इसलिये वह प्रातः काल से ही रो रही थी। जिनदत्त उसके करुण विलाप को नहीं सह सका और उसके पुत्र के स्थान पर राजकुमारी के पास स्वयं जाने को तैयार हो गया।

(२१७से२३२) सायंकाल को जब वह जिनदत्त राजा की पीड़ित कन्या के पास पहरा देने गया, तो राजा उसे देखकर बड़ा दुखित हुआ और राजकुमारी की निंदा करने लगा। जिनदत्त राजकुमारी से मिला। राजकुमारी ने उसके रूप, यौवन एवं आकर्षक व्यक्तित्व को देखकर उससे वापस चले जाने की प्रार्थना की। ये बातचीत करने लगे और इसी बीच में राजकुमारी को निद्रा आगयी। बातचीत के समय जिनदत्त ने उसके मुंह में एक सर्प देख लिया। जब राजकुमारी सो गई, तो वह श्मशान में जाकर एक नर-मुंड उठा लाया और उसे राजकुमारी की खाट के नीचे रख दिया और तलवार हाथ में लेकर स्वयं वहीं छिप गया। रात्रि को राजकुमारी के मुख में से वह भयंकर काला सर्प निकला। वह नर मुंड के पास जाकर उसे डसने लगा। जिनदत्त ने जब यह देखा तो उसने सर्प को पूंछ पकड़ कर घुमाया, जिससे वह व्याकुल होगया और फिर उसे पोटली में बांध कर निःशंक सोगया।

(२३३से२३६) प्रातः होने पर राजा को जिनदत्त के जीवित रहने के समाचार मालूम पड़े तो वह तुरन्त ही कुमारी के महल में आया और सारी स्थिति से अवगत हुआ। राजा ने श्रीमती के साथ जिनदत्त का विवाह कर दिया। कुछ दिनों तक वे दोनों वहीं सुखपूर्वक रहे और जब जलयान चलने लगा तो वह भी राजा से आज्ञा लेकर श्रीमती के साथ रवाना हुआ। राजा ने विदा करते हुये उसे अपार सम्पत्ति दी।

नौ

(२४०से२४३) सागरदत्त श्रीमती के रूप एवं यौवन को देखकर कामासक्त हो गया एवं उसे प्राप्त करने का उपाय सोचने लगा। उसने एक पोटली समुद्र में गिरा दी। पोटली के गिर जाने पर वह जोर २ से रोने लगा तथा उसे प्राप्त करने के लिये हाहाकार करने लगा। जिनदत्त सागरदत्त की पीड़ा को देखकर एक रस्सी के सहारे पोटली को निकालने के लिये समुद्र में उतर गया। तब सागरदत्त ने डोरी को बीच ही में से काट दिया, जिससे जिनदत्त समुद्र में रह गया।

(२४४से२५८) श्रीमती उसे डूबा हुआ जानकर विलाप करने लगी। सागरदत्त उसे मीठी २ बातों से फुसलाने लगा। लेकिन उसके शील के प्रभाव से जलयान ही डगमगाने लगा। जलयान के अन्य व्यापारियों ने सागरदत्त को खूब फटकारा तथा सब लोग श्रीमती के हाथ पैर जोड़ने लगे। आखिर जल-यान एक द्वीप पर जा लगा। फिर वह श्रीमती सागरदत्त को छोड़कर अन्य व्यापारियों के साथ चम्पापुरी चली गई और चैत्यालय में विमलमती के साथ रहने लगी।

(२५९से२६८) समुद्र में गिरते ही जिनदत्त ने भगवान का स्मरण किया। इतने में ही उसे दो लकड़ी के टुकड़े मिल गये और उनके सहारे वह एक विद्याधर-नगरी में पहुँच गया। तट पर आते हुये देखकर पहिले तो वहाँ के चौकीदार उसे मारने के लिये दौड़े लेकिन बाद में उसकी शक्ति एवं साहस को देखकर उन्होंने उसका स्वागत किया और उसे विमान में बैठाकर विद्याधरों की नगरी रथनूपुर ले गये। वहां उसका भव्य स्वागत हुआ और वहां के राजा अशोक ने अपनी कन्या शृंगारमती का उसके साथ विवाह कर दिया। जिनदत्त को दहेज में १६ विद्याएँ मिली तथा इनके अतिरिक्त उसने और भी विद्याएँ प्राप्त की। जिनदत्त वहाँ काफी समय आनन्द से रहा तथा अन्त में प्रस्थान की तैयारी करने लगा। राजा ने उसे काफी सम्पत्ति दी तथा एक विमान दिया। वह विमान से शृंगारमती सहित चंपापुरी में आ गया।

(२९६से३१६) वहां सबसे पहिले उसने वही बाडी देखी। वे दोनों उस रात उद्यान में ही ठहर गये। पहिले जिनदत्त सो गया और बाद में शृंगारमती सो गई और जिनदत्त जागने लगा। जिनदत्त ने अपनी स्त्री को अपना कौशल दिखलाने के लिये बौना का रूप धारण किया। शृंगारमती जब जगी और उसने जिनदत्त को नहीं पाया तो वह विलाप करने लगी। वह जिनदत्त का नाम लेकर रोने लगी। इतने में ही वहां विमल सेठ आया और उसे चैत्यालय में ले गया जहां विमलमती एवं श्रीमती पहिले से जिनदत्त की प्रतीक्षा कर रही थी।

(३२०से३३३) जिनदत्त बौने का रूप धारण कर नगर में अनेक कौतूहल पूर्ण कार्य करने लगा। उसने राजा से भेंट की और अपनी स्थिति पर उससे निवेदन किया। उसने कहा कि वह भूखों मरने के कारण ब्राह्मण से बौना बन गया है। उसने राजा से उसके द्वारा किये हुये कौतुक देखने की प्रार्थना की। राजा ने उसे आज्ञा देदी। वह खेल दिखलाने लगा। वह अपनी विद्याबल से आकाश में उड़ गया और अनेक ताल धर कर ताली बजाने लगा। राजा ने प्रसन्न होकर उससे पुरस्कार मांगने के लिये कहा। तब राज-सभा के किसी सदस्य ने कहा कि यदि यह विमल सेठ की तीनों लड़कियों को जो चैत्यालय में मौन रह रही थी बुला सके तब ही इसे पुरस्कार दिया जाए। बौने ने कहा कि मानव ही नहीं वह पाषाण प्रतिमा को भी बुला सकता है। फिर उसने विद्याबल से पाषाण की शिला को भी हँसा दिया।

(३३४से३४३) राजा ने फिर उससे पुरस्कार के लिये कहा। इस पर किसी अन्य व्यक्ति ने कहा कि जब तक यह विमल सेठ की तीनों लड़कियों को न हँसा दे, तब तक उसे पुरस्कार नहीं दिया जाए। जिनदत्त ने यह भी स्वीकार कर लिया और एक २ दिन उक्त तीनों में से एक २ स्त्री को बुलाने के लिये कहा। उसके कहे अनुसार बारी २ से वे स्त्रियां आई और जिनदत्त ने उनकी सारी बातें बतलादीं। इससे राजा और भी प्रभावित हुआ।

(३४४से३६०) इसी समय राजा के महल का एक हाथी उन्मत्त हो गया और सब बंधन तोड़कर वह नगरी में स्वच्छंद फिरने लगा। चारों ओर कोलाहल मच गया। तीन दिन तक वह हाथी किसी से भी नहीं पकड़ा जा सका। लोग नगर छोड़कर भागने लगे। राजा ने घोषणा की कि जो भी वीर हाथी को वश में कर लेगा उसे वह अपनी कन्या एवं आधा राज्य देगा। बौने ने राजा की घोषणा को स्वीकार किया। बौने ने विद्या-बल से हाथी को वश में कर लिया, उसने उस पर चढ़कर खूब घुमाया और अंत में उसे ले जा कर ठाण में बांध दिया। बौने का यह चमत्कार देखकर उपस्थित जनता ने उसकी जयजयकार की।

(३६१से३८४) बौने ने राजा से राजकुमारी के साथ विवाह के लिये कहा। राजा जिन मंदिर गया और उसने अपने गुरु से सारी बात कही। गुरु ने राजा से जिनदत्त द्वारा किये गये अबतक के कार्यों का सविस्तार वर्णन किया। फिर राजा ने बौने को वास्तविक बात बताने के लियेकहा तो वह राजकुमारी के साथ विवाह करने से इन्कार करने लगा। मंत्रियों ने राजा से बौने के साथ राजकुमारी का विवाह करने के लिये मना किया।

(३८५से४२७) मंत्रियों ने बौने से फिर अपने जीवन की सत्य कथा कहने के लिये कहा, तो उसने अपनी सारी राम कहानी कहदी और कहा कि विहार (चैत्यालय) में रहने वाली तीनों स्त्रियां उसकी पत्नियां थीं। यह सुन राजाने उन स्त्रियों को बुलाने भेजा, तो वे मौन धारण कर बैठ गयीं। इस पर राजा, मंत्रीगण एवं प्रजाजन उस चैत्यालय में गये और उनसे बौने द्वारा कही हुई बात पर प्रकाश करने के लिये कहा। बौने और उन स्त्रियों में खूब वाद-विवाद हुआ। तीनों स्त्रियों ने उसे अपना पति मानने से इन्कार कर दिया तथा हृप्पा सेठ की कथा कही-जिसके विदेश जाने पर एक दूसरा धूर्त आकर हृप्पा सेठ बन गया था और उन स्त्रियो ने भी उसे अपना स्वामी मान लिया था।

(४२८से४४६) अन्त में तीनों स्त्रियों की उसने परीक्षा ली। उसकी परीक्षा में सफल होने के पश्चात् जिनदत्त ने अपना वास्तविक रूप धारण किया।

वह कामदेव के समान देह वाला हो गया। सभी उसके रूप को देखकर चकित हो गयीं। तीनों स्त्रियां उसके चरणों में पड़गई और अपनी २ कथा कहने लगी। राजा ने भी उससे क्षमा मांगी तथा अपनी राजकुमारी का विवाह उसके साथ कर दिया। राजा ने उसे अपार धन, सम्पदा, एवं हाथी घोड़े आदि वाहन दिये।

(४४७से४५६) जिनदत्त कुछ दिनों तक वहां रहने के पश्चात् सागर-दत्त से मिलने गया। उसके पापोदय से हाथ-पांव गल गये थे। जिनदत्त ने उससे अपना सारा धन ले लिया और चम्पापुर से बिदा लेकर वह अपने देश वसंतपुर को रवाना हुआ। उसने अपने साथ एक बड़ी भारी सेना ली। उसकी सेना को देखकर बड़े २ राजा कांपने लगे और इस तरह वह बड़े ठाट-बाट से से वसंतपुर के समीप पहुँच गया।

(४५७से४६४) वसंतपुर की प्रजा सेना को देखकर डर से भागने लगी तथा सारा नगर सेना से वेष्टित हो गया। खाइयां खोद कर उन्हें जल से भर दिया। चन्द्रशेखर राजा ने प्रजा को सान्त्वना दी और कहा कि जबतक उसके पास दो हाथ हैं, तबतक कोई भी शत्रु परकोटे में पैर नहीं रख सकता। चारों ओर मोर्चाबंदी होने लगी। राजा ने अपने मंत्रियों से मंत्रणा करके वास्त-विक स्थिति जानने के लिये जिनदत्त के पास दूत भेजा।

(४६५से४७४) चन्द्रशेखर का दूत जिनदत्त के दरबार में गया और उसने उसके आगे रत्नों का थाल रखकर यथायोग्य अभिवादन किया। दूत ने जिनदत्त से व्यर्थ ही प्रजा का संहार न करने एवं उचित दण्ड लेकर वापस लौटने के लिये प्रार्थना की। लेकिन जिनदत्त ने कहा कि उसे किसी प्रकार के दण्ड की आवश्यकता नहीं। वह तो नगर सेठ जीवदेव एवं उसकी पत्नी जीवंजसा को लेना चाहता है। दूत ने सेठ के पवित्र जीवन की प्रशंसा की और कहा कि संभवतः राजा ऐसे भव्य पुरुष को नहीं दे सकता। लेकिन जिनदत्त ने दूत की एक न सुनी और शीघ्र ही उन्हें समर्पित करने का आदेश दिया।

(४७५से४८६) दूत ने वापस लौटकर राजा से सारी बात कही। राजा चन्द्रशेखर ने किसी भी परिस्थिति में सेठ को देना स्वीकार नहीं किया। जब यह बात सेठ को मालूम हुई तो वह जिनदत्त को याद करने लगा और उसने अपने फूटे भाग्य को धिक्कारा। सेठ अपने ही कारण सारे नगर पर इतना संकट लेने को तैय्यार नहीं हुआ और शत्रु सेना में स्वयं जाने को तैय्यार हो गया किन्तु उसकी आँखे फड़कने लगीं एवं चित्त पुलकित हो उठा जो उसको पुत्र मिलन की मानो सूचना दे रहे थे। सेठ सेठानी कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ, पंच परमेष्ठी का स्मरण करते हुये राजा से मिलने चल दिये।

(४८७से५१२) डरते २ सेठ राजा के पास पहुँचा। जिनदत्त अपने माता पिता को देखकर प्रसन्न हो रहा था। उसने उनके मौन रहने का कारण पूछा, तो सेठ ने अपने विदेश गये हुये पुत्र के बारे में सारी बात कही। सेठानी ने कहा उसके समान उनके भी एक पुत्र था। यह सुनकर जिनदत्त उसके पैरों में गिर गया और उसकी चारों पत्नियाँ भी उसके चरणों में लिपट गयीं। माता के स्तनों से दूध की धारा बह निकली। राजा चन्द्रशेखर ने जिनदत्त की बड़े आदर के साथ अगवानी की और दोनों वसन्तपुर में राज्य करने लगे। कुछ वर्षों बाद जब चन्द्रशेखर का स्वर्गवास होगया तो जिनदत्त अकेला ही राज्य करने लगा।

(५१३से५४८) एक बार वसंतपुर में निर्ग्रन्थ मुनि का आगमन हुआ। जिनदत्त अपनी स्त्रियों के साथ उनके दर्शनार्थ गया और उनका धर्मोपदेश सुना। इसके पश्चात् उसने अपने पूर्व भवों के बारे में जानना चाहा तो उसका भी समाधान कर दिया। संसार की असारता को जानकर उसने चारों पत्नियों सहित जिन दीक्षा ले ली और तपश्चरण कर अष्टम स्वर्ग प्राप्त किया। उसकी चारों स्त्रियाँ भी मर कर स्वर्ग गयीं।

(५४९से५५३) अन्त में कवि ने जिनदत्त चरित की प्रशंसा करते हुये लिखा है कि "जो कोई भी इस काव्य को सुनेगा, सुनावेगा, लिखेगा तथा लिखवावेगा उसे धन धान्य, सम्पदा एवं पुण्य लाभ होगा"।

जैन कथा साहित्य का स्वरूप एवं विकास

जैन कवियों एवं विद्वानों ने कथा ग्रंथों के लिखने में पूर्ण रुचि ली है। इन कथा ग्रंथों का मुख्य उद्देश्य सामान्यतः किसी पुरुष-स्त्री का चरित्र संक्षेप में वर्णित कर उसके सांसारिक सुख-दुखों का कारण उसके स्वयं कृत पाप-पुण्य के परिणाम को प्रकट करना है। धर्मोपदेश के निमित्त लघु कथाओं का निर्माण श्रमण-परम्परा में बहुत ही प्राचीन काल से रहा है। इसके अतिरिक्त कथाकारों का मुख्य उद्देश्य जगत् के प्राणियों को कल्याण मार्ग की ओर प्रेरित करने का रहा है। लघु कथाओं के स्वाध्याय में साधु एवं गृहस्थ दोनों ही विशेष रुचि लेते हैं और वे उन्हें अच्छी तरह से हृदयस्थ कर लेते हैं। इसीलिये लघु एवं बृहद् दोनों ही प्रकार के कथा काव्य हमें प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी भाषा में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। कथाओं के मुख्य विषय का वर्णन करने का ढंग प्रायः इन सभी भाषाओं में एकसा रहा है।

जैन कथा साहित्य को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं।

(१) व्रत कथा साहित्य—

एक प्रकार की कथायें व्रतों के माहात्म्य प्रतिपादित करने के लिये लिखी जाती रही हैं। ये प्रायः लघु कथाओं के रूप में मिलती हैं जिनमें किसी एक घटना को लेकर किसी पात्र-विशेष के जीवन का उत्थान अथवा पतन दिखाया जाता रहा है। कथा के मध्य में किसी संकट अथवा व्याधि विशेष के निवारणार्थ व्रत को पालन करने का उपदेश दिया जाता है। व्रत की निर्विघ्न समाप्ति पर उसके सभी कष्ट दूर हो जाते हैं और तब उसके जीवन को उदा-

हरण स्वरूप रख कर पाठकों में किसी एक व्रत विशेष को पालने का उपदेश दिया जाता है। ऐसी कथाओं में अनन्तव्रत कथा, अष्टाह्निकाव्रत कथा, रोहिणीव्रत कथा दशलक्षणव्रत कथा, द्वादशव्रत कथा, रविव्रत कथा, मेघव्रत कथा, पुष्पांजलिव्रत कथा, सुगन्धदशमीव्रत कथा, मुक्तावलिव्रत कथा, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

(२) जीवन कथायें—

कुछ ऐसी लघु अथवा बृहद् कथायें हैं जिनमें किसी व्यक्ति विशेष के जीवन का वर्णन रहता है। इसके अतिरिक्त कुछ सामाजिक अथवा घटना-प्रधान कथायें भी लिखी जाती रही हैं। अठारह नाता कथा तथा रक्षाबंधन कथा कुछ ऐसी ही कथा कृतियाँ है। तीर्थंकर, आचार्य, अथवा व्यक्ति-विशेष से सम्बन्धित कथाओं में ज्येष्ठ जिनवर कथा, अकलंक देव कथा, अंजन चोर कथा, चन्दनमलयागिरि कथा, धर्म बुद्धि पाप बुद्धि कथा, नागश्री कथा, निशिभोजन कथा एवं शील कथा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ये कथायें भी जीवन के लिये प्रेरणादायक सिद्ध हुई हैं।

(३) रोमाञ्चक कथा साहित्य—

तीसरी प्रकार की वे कथायें हैं जो किसी श्रावक एवं मुनि विशेष के जीवन पर आधारित रहती हैं और उनमें नायक के जीवन का आद्योपान्त वर्णन रहता है। इनमें अधिकांश कथायें रोमाञ्चक होती हैं जिनमें नायक द्वारा आश्चर्यजनक कार्यों को सम्पन्न किया जाता है। इसके जीवन का कभी उत्थान होता है तो कभी उसका मार्ग संकटों से अवरुद्ध दिखाई देने लगता है लेकिन नायक अपनी विशिष्ट योग्यता एवं साहस से उन्हें पार करके पाठकों की प्रशंसा का पात्र बनता है और पुण्य की महिमा का यशोगान किया जाने लगता है। ऐसी कथाओं में नायक का एक से अधिक विवाह, सिंहल-यात्रा, वन में अकेले भ्रमण करके कितनी ही अलौकिक विद्याओं को प्राप्त करना, उन्मत्तगज को वश में करना, अपनी विद्याओं का प्रदर्शन करना आदि घटनायें मुख्य रूप

से वर्णित होती हैं जो पाठकों में नायक के जीवन के प्रति उत्सुकता बनाये रखती है। ऐसे रोमाञ्चक कथा-काव्यों में श्रीपाल, रत्नचूड, जिनदत्त, नागकुमार, भविष्यदत्त, करकंडु, सनत्कुमार, धन्यकुमार, रत्नशेखर, जीवन्धर, प्रद्युम्न आदि विशिष्ट महापुरुषों के जीवन पर आधारित काव्य उल्लेखनीय हैं। ये काव्य प्रायः उपर्युक्त सभी भाषाओं में मिलते हैं। इन पुण्य पुरुषों के जीवन में घटने वाली प्रमुख घटनायें निम्न प्रकार हैं :—

श्रीपाल—

सिद्धचक्र पूजा के महात्म्य को प्रकट करने के लिये श्रीपाल के जीवन का स्मरण किया जाता है। उनके जीवन में सर्व प्रथम कुष्ठ रोग पीड़ा की घटना आती है जिसके कारण उसे राज्य-भार छोड़कर जंगल की शरण लेनी पड़ती है। इसी बीच उसका राजकुमारी मैनासुन्दरी से विवाह हो जाता है पाप-पुण्य के अनुसार सुख-दुख की प्राप्ति होती है इस सिद्धान्त पर अटल रहने के कारण वह अपने पिता की कोप भाजन बनती है। मैनासुन्दरी अपनी पतिभक्ति एवं सिद्धचक्र पूजा के प्रभाव से श्रीपाल एवं उसके साथियों का कुष्ठ दूर करती है। श्रीपाल को नया जीवन मिलता है और वह यश एवं सम्पत्ति अर्जन के लिये विदेश जाता है वहाँ उसका कितनी ही राजकुमारियों के साथ विवाह होता है, लेकिन धवल सेठ के द्वारा समुद्र में गिराया जाना, अपने बाहुबल से उसे तैर कर पार करना, राजकुमारी के साथ विवाह होने के समय अपने विरोधियों के कुचक्रों से शूली का आदेश मिलना, पुनः दैवी सहायता से उससे भी बच जाना एवं राजकुमारी के साथ विवाह होना आदि घटनायें उसके जीवन में इस प्रकार आती हैं, इसमें पाठक यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि भविष्य में नायक के जीवन में कौन सी विपत्ति एवं सम्पत्ति आने वाली है। श्रीपाल के जीवन की कथा जैन समाज में बहुत प्रिय है।

रत्नचूड—

रत्नचूड कमलसेन राजा का पुत्र था। इसका जीवन भी अनेक रोमा-

रोमाञ्चक घटनाओं से भरा पड़ा है। रत्नचूड ने एक मदोन्मत्त गज का दमन किया था किन्तु वह गज के रूप में विद्याधर था अतः उसने रत्नचूड का ही अपहरण कर उसे जंगल में ला पटका। इस के पश्चात् वह नाना प्रदेशों में भ्रमण करता रहा और उसने अनेक सुन्दर राजकन्याओं से विवाह किया, अनेक विद्यायें प्राप्त की। तदनंतर राजधानी आकर उसने कितनों ही वर्षों तक राज्य सुख भोगा और अन्त में साधु जीवन अपना कर स्वर्ग लाभ लिया। रत्नचूड के जीवन पर प्राकृत भाषा में अनेक रचनायें मिलती हैं

नागकुमार—

श्रुतपंचमी व्रत के माहात्म्य को प्रगट करने के अवसर पर नागकुमार के जीवन का वर्णन किया जाता है। नागकुमार कनकपुर के राजा जयन्धर एवं रानी पृथ्वी देवी का पुत्र था। शैशव में नागों के द्वारा रक्षा किये जाने के कारण उसका नागकुमार नाम पड़ा। नाग देश में ही अनेक विद्यायें सीखकर वह युवा हुआ और वहां की सुन्दर किन्नरियों से उसने विवाह किया। नागकुमार का सौतेला भाई श्रीधर उससे विद्वेष रखता था। नागकुमार जब नगर के एक मदोन्मत्त हाथी को वश करने में सफल होगया तो श्रीधर और भी कुपित हो गया।

नागकुमार अपने पिता की सलाह मानकर कुछ समय के लिये विदेश भ्रमण के लिये चला गया। सर्व प्रथम वह मथुरा पहुंचा और वहां के राजा की कन्या को बन्दीगृह से निकाल कर काश्मीर पहुँचा जहां पर वीणा वादन में त्रिभुवनरति को पराजित करके उसके साथ विवाह किया। रम्यक वन में उसका काल गुफावासी भीमासुर से साक्षात्कार हुआ। कांचन गुफा में पहुँच कर उसने अनेक विद्यायें एवं अपार सम्पत्ति प्राप्त की। इसके पश्चात् उसकी गिरिशिखर के राजा वनराज से भेंट हुई और ऊर्जयन्त पर्वत की ओर उसकी पुत्री लक्ष्मी से उसने विवाह किया। नागकुमार वहां से ऊर्जयन्त पर्वत की ओर गया। वहां उसने सिन्ध के राजा चंडप्रद्योत से अपने मामा

गिरिनगर के राजा की रक्षा की और उसके बदले उसकी पुत्री से विवाह किया। इसके पश्चात् उसने अवंध नगर के अत्याचारी राजा सुकंठ का वध किया और उसकी पुत्री रुक्मिणी से विवाह किया। अन्त में उसने पिहितास्रव मुनि से अपनी प्रिया लक्ष्मीमती के पूर्व भव की कथा एवं श्रुतपंचमी के उपवास के फल का वर्णन सुना। श्रीधर द्वारा दीक्षा लेने के कारण उसके पिता ने नागकुमार को बुलाकर और उसे राज्य देकर स्वयं दीक्षा धारण कर ली। नागकुमार ने राज्य सुख भोग कर अन्त में साधु जीवन अपनाया और मर कर स्वर्ग प्राप्त किया। महाकवि पुष्पदंत का अपभ्रंश भाषा में निबद्ध "णायकुमार चरिउ" इस कथा की एक बहुत सुन्दर रचना है।

भविष्यदत्त—

भविष्यदत्त एक श्रेष्ठि पुत्र है। वह अपने सौतेले भाई बन्धुदत्त के साथ व्यापार के लिये विदेश जाता है वहां वह खूब धन कमाता है और विवाह भी करता है। उसका सौतेला भाई उसे बार-बार धोखा देता है और एक दिन वन में उसे अकेला छोड़कर उसकी पत्नी के साथ लौट आता है। भविष्यदत्त भी एक यक्ष की सहायता से घर लौटता है और राजा को प्रसन्न करके राज-कन्या से विवाह कर लेता है। भविष्यदत्त का पूर्वार्द्ध जीवन रोमाञ्चक और साहसिक यात्राओं एवं आश्चर्यजनक घटनाओं से भरा पड़ा है। उत्तरार्द्ध में युद्ध एवं पूर्व भवों के वर्णन की बहुलता है। भविष्यदत्त के जीवन पर कितनी ही रचनायें मिलती हैं। इन रचनाओं में धनपाल कृत "भविसयत्तकथा" अत्यधिक सुन्दर काव्य है।

करकण्डु—

मुनि कनकामर ने करकुण्डु के जीवन पर अपभ्रंश में बहुत सुन्दर काव्य लिखा है जो दश संधियों में विभक्त है। यह एक प्रेमाख्यानक कथा है जिसमें करकण्डु का मदनावली से विवाह, विद्याधर द्वारा मदनावली-हरण, सिंहलयात्रा, वहाँ की राजकुमारी रतिवेगा के साथ विवाह, मार्ग में मच्छ

वगरोंन

द्वारा आक्रमण, विद्याधरों द्वारा करकण्डु का अपहरण एवं विवाह, रतिवेगा एवं मदनावली से मिलन की घटनाओं का रोमांचक रीति से वर्णन किया गया है। बीच बीच में अवान्तर कथायें भी वर्णित हैं। करकण्डु अन्त में साधु जीवन व्यतीत कर निर्वाण प्राप्त करते हैं।

प्रद्युम्न—

प्रद्युम्न श्री कृष्ण के पुत्र थे। रुक्मिणी इनकी माता का नाम था। जन्म की छठी रात्रि को ही इन्हें धूमकेतु असुर हरण कर ले गया और अन्त में इन्हें एक शिला के नीचे दबा कर चला गया। उसी समय कालसंवर विद्याधर ने इन्हें उठा लिया और अपनी स्त्री को पुत्र रूप में पालने के लिए दे दिया। प्रद्युम्न ने युवावस्था को प्राप्त होने पर कालसंवर के शत्रु सिंहरथ को पराजित किया। प्रद्युम्न का बल एवं उसकी शक्ति देखकर अन्य राजकुमार उससे जलने लगे। जिनमन्दिर के दर्शन के बहाने से उसे वन में ले गये और उसको विपत्तियों से लड़ने के लिये अकेला छोड़ कर भाग आए। लेकिन प्रद्युम्न डरा नहीं और उनपर विजय प्राप्त कर उसने अनेकों विद्याएँ प्राप्त की। वापिस लौटने अपनी माता कंचनमाला से तीन विद्यायें चतुरता से प्राप्त की किन्तु उसके कहे अनुसार काम न करने कारण उनको माता का ही क्रोध भाजन बनना पड़ा। कालसंवर भी प्रद्युम्न को मारने की सोचने लगा लेकिन अन्त में नारद द्वारा बीच बचाव करने पर वास्तविक स्थिति का पता लगा। प्रद्युम्न द्वारिका वापस लौट आये। मार्ग में वे दुर्योधन की कन्या को बल पूर्वक छीन कर विमान द्वारा द्वारिका आए। द्वारिका पहुंचने पर सत्यभामा के पुत्र भानुकुमार को अपनी अनेकों विद्याओं से खूब छकाया। तदनंतर ब्रह्मचारी का वेश बना कर वे अपनी माता रुक्मिणी के पास पहुँचा। वहाँ उन्होंने सत्यभामा की दासियों को विकृत रूप कर दिया। इसके पश्चात् प्रद्युम्न ने मायामयी रुक्मिणी की बाँह पकड़ कर उसे श्रीकृष्ण की सभा के आगे से ले जाते हुए ललकारा। दोनों ओर की सेना आमने सामने आ डटी तथा श्रीकृष्ण एवं प्रद्युम्न में खूब घमासान युद्ध हुआ। किसी की भी हार न होने से पूर्व

नारद ने बीच में आकर प्रद्युम्न का परिचय दिया। इससे सबको बड़ी प्रसन्नता हुई और प्रद्युम्न का खूब स्वागत हुआ तथा नगर में उत्सव मनाया गया। प्रद्युम्न ने वर्षों राजसुख भोगा तथा अन्त में दीक्षा लेकर निर्वाण प्राप्त किया। महाकवि सिंह की अपभ्रंश भाषा में पज्जुण्णकहा तथा कवि सधारु कृत हिन्दी में प्रद्युम्न चरित दोनों ही सुन्दर काव्य हैं।

इस प्रकार रोमान्चक कथा काव्य लिखने की परम्परा जैनाचार्यों एवं विद्वानों में बहुत प्राचीन काल से रही है। इनके सहारे पाठक असद्गुण को छोड़कर सद्गुणों की ओर प्रवृत्त होता है। इन रोचान्चक जीवन कथाओं में बहुत सी घटनाएं समान रूप से मिलती हैं जिनका कुछ वर्णन निम्न प्रकार है —

(१) रोमान्चक कथा काव्यों में पुण्यपुरुषों, श्रेष्ठियों तथा राजकुमारों का जीवन वर्णित होता है। ये महापुरुष अपनी अलौकिक प्रतिभा के कारण किसी भी बड़ी से बड़ी विपत्ति का सामना करने में समर्थ होते हैं। इन कथाओं में धार्मिकता एवं लौकिकता का मेल कराया गया है। प्रत्येक नायक अन्त में साधु जीवन धारण करता है और मर कर स्वर्ग अथवा निर्वाण प्राप्त करता है। प्रद्युम्न, जिनदत्त, करकण्डु मर कर निर्वाण प्राप्त करते हैं, जबकि भविष्यदत्त, नागकुमार मर स्वर्ग जाते हैं। इस प्रकार ये कथायें शान्त रस में पर्यवसान्त हैं।

(२) सभी रोमान्चक कथाओं में प्रेम, विरह, मिलन का खूब वर्णन मिलता है। इससे जैन कवियों के प्रेमाख्यानक काव्य लिखने के प्रति औत्सुक्य प्रकट होता है। जिनदत्त, भविष्यदत्त, श्रीपाल, नागकुमार के जीवन में कितनी ही घटनायें घटती हैं, उनका कभी किसी पत्नी से मिलन होता है तो कभी किसीसे विरह। वास्तव में इस प्रकार की जीवन-कथाओं को १५वीं शताब्दी तक खूब महत्व दिया गया और इस तरह अनेकों कथा-ग्रंथों का निर्माण हुआ।

(३) ये काव्य युद्ध-वर्णन से भरे पड़े हैं। प्रद्युम्न के जीवन का अधिकांश भाग युद्ध में व्यतीत होता है। कभी-कभी नायक अपनी विद्याओं से युद्ध लड़ते

है। जिनमें सारी सेना एक बार मर भी जाती है, किन्तु युद्ध शान्त होने पर नायक उसे अपनी विद्या के बल से फिर जीवित कर देते हैं। वास्तव में ये कथायें वीर-रस से ओत प्रोत होती हैं।

(४) इन कथा-काव्यों में मदोन्मत हाथी पर विजय, सागर को तैर कर किसी राजकुमारी से विवाह, विद्याधर कुमारियों से विवाह तथा तथा उनसे अनेक विद्याएँ प्राप्त कर लेना, समुद्र-यात्रा, विदेश-गमन, यक्ष-गन्धर्व-विद्याधरों से युद्ध आदि ऐसी घटनायें है जिनमें एक से अधिक प्रत्येक नायक के जीवन में मिलती हैं।

(५) रोमाञ्चक कथा काव्यों के नायक एक से अधिक विवाह करते हैं, तथा वे सभी जातियों की कन्याओं को ले आते हैं। इसे मध्यकाल में बहु विवाह प्रथा प्रचलित होना जाना जाता है। नागकुमार एक सौ से भी अधिक राजकुमारियों से विवाह करता है।

(६) इन चरित-नायकों के जीवन में देवता, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर नाग आदि की पूरी सहायता मिलती है और कभी कभी विरोध भी सहना पड़ता है। जिनदत्त एवं प्रद्युम्न को विद्याधरों से अनेक विद्यायें प्राप्त हुई थी। इसी तरह नागकुमार को नागों से खूब सहायता मिली थी।

(७) चरित-नायकों के इन कथा काव्यों में पूर्व भवों का भी वर्णन मिलता है जिससे उनके पूर्व भव में किये गये पुन्यापुन्य का फल दर्शित होता है। बाद में वे व्रत अथवा साधु जीवन धारण करने की ओर प्रेरित होते हैं।

इसी प्रकार का जिनदत्त चरित भी एक रोमाञ्चक शैली का काव्य है जिसका अध्ययन प्रस्तुत किया जारहा है।

जिणदत्तचरित–एक अध्ययन

भाषा :—हिन्दी के आदिकाल में निर्मित एवं विकसित काव्यों में 'जिणदत्तचरित' का स्थान विशेषत: उल्लेखनीय है। इस कृति की रचना उस समय हुई थी जब यहां साहित्य में अपभ्रंश की प्रधानता थी। महाकवि

स्वयम्भू, पुष्पदंत, धनपाल, वीर, नयनन्दि, धवल कनकामर, लालू जयमित्र-हल, नरसेनदेव जैसे विद्वानों ने अपनी कृतियों से अपभ्रंश साहित्य को श्रीवृद्धि प्रदान कर रक्खी थी। वर्तमान भारतीय भाषाओं के साहित्य पर भी अपभ्रंश का प्रभाव बना हुआ था। विक्रमीय ग्यारहवीं से चौदहवीं शताब्दी का काल जिसे हिन्दी का आदिकाल कहा जाता है, भाषा की दृष्टि से अपभ्रंश से बहुत प्रभावित है। जिणदत्त चरित की भाषा को हम पुरानी हिन्दी के नाम से सम्बोधित कर सकते हैं। 'जिणदत्त चरित' अपभ्रंश एवं हिन्दी भाषा की एक बीच की कड़ी है। अपभ्रंश भाषा ने धीरे धीरे हिन्दी का रूप किस प्रकार लिया, यह इस काव्य से और सधारु के 'प्रद्युम्न-चरित'[1] जैसी रचनाओं से अच्छी तरह जाना जा सकता है। रचना अपभ्रंश एवं राजस्थानी बहुल शब्दों से युक्त है किन्तु हिन्दी के ठेठ शब्दों का भी उसमें प्रयोग हुआ है।

भारत पर उस समय यद्यपि मुसलमानों का शासन था लेकिन उनकी साहित्य एवं संस्कृति का उस समय तक भारतीय जीवन, साहित्य एवं संस्कृति पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा था। साहित्य में प्रायः पूर्ण रूप से भारतीयता थी। हिन्दी के काव्यों का विकास प्रायः अपभ्रंश काव्यों के अनुसरण से हुआ। १४ वीं शताब्दी तक हिन्दी साहित्य की जो रचना हुई उस पर तो अपभ्रंश का प्रभाव रहा ही, किन्तु १४ वीं के बाद लिखे गये पौराणिक एवं रोमांचक शैली के प्रबन्ध काव्यों पर भी अपभ्रंश के काव्यों का सीधा प्रभाव दिखलाई पड़ता है।

काव्य—रूप

'जिणदत्त चरित' रोमाञ्चक शैली का चरित है जिसका नायक धीरोदात्त है। वह सद्वंशोत्पन्न है, वीर है। अनेक विपत्तियों में भी नहीं

---

१. प्रद्युम्न चरित – संपादक डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल
प्रकाशक – दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी।

घबराता और उसमें सफल होकर निकलता है। अपनी सूझ-बूझ से ही वह अकिंचन होकर भी राज्य प्राप्त करता है और बर्षों तक योग्यता पूर्वक शासन चलाता है। अन्त में वह वैराग्य धारण कर स्वर्ग प्राप्त करता है। महाकाव्य की जो विशेषताएँ प्रस्तुत काव्य में मिलती हैं वे निम्न प्रकार हैं :—

(१) जिनदत्त का कथानक पुराण सम्मत लिखा गया है। कवि ने उसमें अपनी ओर से न कहीं जोड़ा है और न घटाया है।

(२) नायक एवं उससे सम्बन्धित पात्रों की पूर्व भव की कथा मुख्य कथा का एक अंग मात्र है।

(३) यह काव्य अन्त में वैराग्य मूलक एवं शान्तरस पर्यवसायी है। नायक अन्त में मुनि बनकर स्वर्ग लाभ करता है और उसकी चारों पत्नियाँ भी स्वर्ग जाती है।

(४) प्रस्तुत काव्य में अलौकिक तत्वों का समावेश हुआ है; जैसे अंजनी मूल से अपने आप को प्रच्छन्न करना, विद्याधरों से विद्याओं का प्राप्त करना, आकाश मार्ग से विमान में बैठकर जिन चैत्यालयों की वन्दना करना, अपने बाहुबल से सागर पार करना, बौना बन कर अनेक कौतुक करना तथा मदोन्मत्त हाथी को वश में करना आदि।

(५) प्रारम्भ में तीर्थंकरों की स्तुति की गयी है। सरस्वती का स्मरण एवं काव्य रचना का उद्देश्य बतलाया गया है। इसके अतिरिक्त विनम्रता का प्रदर्शन, हीनता का प्रकाशन करते हुए लोक भाषा में काव्य लिखने का हेतु बताया गया है।

इस प्रकार उक्त विशेषताओं के आधार पर 'जिणदत्त चरित' महाकाव्य कोटि में आ सकता है किन्तु इसमें वर्णनों की कमी है, शैली का चमत्कार नहीं है, और न छंद विधान में किसी प्रकार की विशिष्टता लाने का प्रयास किया गया है। इसमें यह रचना एक उदात्त व्यक्ति का चरित-काव्य ही मानी जानी चाहिए।

पुन: इसे कवि ने सर्गों में विभाजित नहीं किया है। केवल जब कथा को नया मोड़ देना होता है तो कवि यह कह उठता है कि 'एतहि अवरु कथंतरु भयउ' (१२७) अर्थात् अब कथा का प्रभाव दूसरी ओर मुड़ता है। काव्य को सर्गों में विभाजित करने की परम्परा को हिन्दी में जैन विद्वानों ने बहुत कम अपनाया है। दो-चार कवियों के अतिरिक्त किसी ने भी अपनी रचनाओं को सर्गों एवं अध्यायों में विभाजित नहीं किया। जैन कवियों ने रास, बेलि, फागु, चरित, कथा, चौपई, ब्याहलो, सतसई, संबोधन आदि के रूप में जो काव्य लिखे, वे प्राय: बिना सर्गों अथवा अध्यायों में विभाजित हुए रचे गये हैं। संभवत: इन कवियों का उद्देश्य कथा को बिना किसी व्यवधान के अपने पाठकों को सुनाने का रहा है।

नायक—नायिका

काव्य के नायक जिनदत्त हैं किन्तु नायिका का सम्मान किसको दिया जावे इस विषय में कवि मौन है। जिनदत्त एक नहीं चार विवाह करता है। चारों ही पत्नियां परिणीता हैं। किन्तु इन सबमें प्रथम पत्नी का अवश्य उल्लेखनीय स्थान है क्योंकि उसी के कारण जिनदत्त का चरित्र आगे बढ़ता है तथा दूसरी एवं तीसरी पत्नी भी उसी के आश्रय में आ कर रहती हैं। इसलिये यदि नायिका का ही स्थान किसी को अवश्य देना हो तो वह प्रथम पत्नी विमलमती को दिया जा सकता है। लेकिन प्रतिनायक का पद तो किसी भी पात्र को नहीं दिया जा सकता। यद्यपि सागरदत्त सेठ उसकी पत्नी पर आसक्त होकर उसे समुद्र में डुबो देता है लेकिन यह घटना तो उसके जीवन को एक और मोड़ पर ले जानेवाली घटना है। सागरदत्त प्रारम्भ में तो जिनदत्त का परम सहायक रहा है। इसलिये इस काव्य में कोई प्रतिनायक नहीं है। घटनाओं के वश नायक का स्वयमेव व्यक्तित्व निखरता रहता है और उसमें अन्य किसी विरोधी व्यक्ति की सहायता की आवश्यकता नहीं होती।

रस

जिणदत्त चरित शांत रस का महाकाव्य है। यद्यपि काव्य में कहीं कहीं

शृंगार, वीर, वीभत्स रसों का भी वर्णन हुआ है किन्तु काव्य का मुख्य रस शान्तरस ही है। जिनदत्त वणिक-पुत्र है। विवाह होने के पश्चात् वह व्यापार के लिये देशाटन को निकल जाता है और उसमें अपार सम्पत्ति अर्जन कर वापस स्वदेश लौट आता है। राजा चन्द्रशेखर और उसकी सेनाओं में जो युद्ध की आशंका होती है वह केवल आशंका मात्र बन कर ही रह जाती है। हां इतना अवश्य है कि जिनदत्त भी अपने ऐश्वर्य एवं विद्याओं के बल पर चन्द्रशेखर की उपस्थिति में आधा राज्य और उसकी मृत्यु के पश्चात् संपूर्ण राज्य का एक मात्र स्वामी बन जाता है। लेकिन इस परिवर्तन में खून की एक धारा भी नहीं बहती तथा न चन्द्रशेखर और न जिनदत्त को हथियार उठाने की आवश्यकता पड़ती है। अन्त में वह वैराग्य धारण कर स्वर्ग लाभ करता है।

शृंगार रस का वर्णन विमलमती के सौन्दर्य-वर्णन करने के प्रसंग में हुआ है। कवि ने विमलमती की सुन्दरता का अच्छे एवं अलंकृत शब्दों में वर्णन किया है। उस का वर्णन करते हुये कवि कहता है कि वह अनिंद्य सुन्दरी थी[1]। हंस के समान उसकी गति थी। वह क्रीडा करती हुई, सरोवर तट पर बैठी हुई और जल से खेलती हुई रूपराशि लगती थी। उसकी पिण्डलियों में सभी वर्ण शोभित थे मानो वे कंधु की पिंडलिया हो। कदली के समान उसकी जांघें थीं तथा उसकी कटि में समा जाने वाली थी। वह मानों कामदेव का छत्र थी। उसका शरीर चंपा के समान था। वह पीन स्तनों वाली थी। उसकी उदर की पेशियां एवं कटितल फैले हुये थे। चन्द्रमा के समान उसका मुख था। उसके नेत्र दीर्घ थे तथा वह मृगनयनी थी। उसके शरीर से

सोजि सुन्दरी रायरा पुत्तार।
ललिय हंस गइ कीलमारा सरवर वइठी।
खेलंती जल पयउ रूप रासि मइ दिठिय॥

किरणें फूटती थी। उसकी भौंहें कामदेव के धनुष के समान थी। उसकी चाल मस्ती को लिये हुये थी एवं उसकी एक झलक पाकर ही कुमुनि भी पिघल जाते थे।

सहिय समाणिय सहो भणिय, इम जंपइ गुतधारी।
तासु रूव गुण वण्णियउ, कइ रल्हु सविचार ॥९०॥
मुंदड़िय सहु कसु सोहइ पाउ, चालत हंसु देउ तस भाउ।
जाणू थाणु विहितहि घणे, तहि ऊपरि नेउर वाजणे ॥९१॥
लवई नम्हु सोहइ पिंडरी, जणु छहिं ते कुंभू पिंडरी।
जंघ जुयल कदली ऊथरइ, तासु लंक मूठिहि माइयइ॥९२॥
जणु हइ छति अणंगहु तणी, महइ जु रंग रेह तहि घणी।
नीले चिहुर स उज्जल काय, अमरु मुहाइ दीसहि काय ॥९३॥
चंपावण्णी सोहइ देह, गल कंदलह तिण्णि जसु रेह।
पीणत्थणि ओव्वण मयसार, उर पोटी कडियल विस्थार ॥९४॥
हाथ सरिस सोहहि आंगुली, णह सु त दिपहि कुंद की कली।
मुख थल जंनु काटि जणु ठाणें, वण्णि सु रेख कविन्हु ते कहे ॥९५॥
इलोणी अरु माठी लीय, हरु सु पट्टिया सोहय गीव।
काणि कुंडल इकु सोहनु मणी, नाक थाणु जणु सूवा तणी ॥९६॥
मुह मंडलु जोवइ ससि वयणु, दीह चखु नावइ मियणयणि।
जड़ि केही वर चाले किरण, जणु रि डसणी हीरा मणि किरण॥९७॥
मउह ममण धणु खंचिय धरी, दिपइ लिलाट तिलक कंचुरी।
सिरह मांग मोत्तिय भरि भलिइ, अवरु पीठ तलि विणी रुलई ॥९८॥
नाद विनोद कथा आगली, गहिरी रयण जडी कंचुली।
इकु तहि अथि देह की किरणी, अवर रल्हु पहिरइ आभरण॥९९॥
जिम तणु वाहइ दिठि पसारि, काम वाण वसु घालइ मारि
तिह की रूपु न वणणइ जाइ, देखि सरीर मयणु अकुलाइ ॥१००॥
माल्हंती विलासगइ चलइ, दरसन देखि कुमुणिवर ढलइ।

वीर रस का वर्णन जिनदत्त के स्वदेश लौटने के समय हुआ है। उसके अतुल वैभव, परिजन, सेवक एवं योद्धाओं को देखकर चन्द्रशेखर राजा उसे आक्रमण कारी राजा मानकर उनका सामना करने के लिये युद्ध की तैय्यारी करने लगता है। इसी प्रसंग को लेकर कवि ने कुछ पद्य लिखे हैं जिन्हें वीर-रस से युक्त कहा जा सकता है। जिनदत्त की सेना में दश लाख घुड़-सवार, छह हजार हाथी एवं असंख्य ऊंट थे। पैदल एवं धनुषधारी दश करोड़ थे जब उसकी सेना ने अभियान किया तो धूल के उड़ने से सूर्य का दिखना बन्द होगया और जब निशानों को जोड़कर चोट मारी गई तो उसकी ध्वनि से बहुत से नागरिक एवं राजा देश छोड़ कर भाग गये। किसी राजा ने भी उसका सामना करने का साहस नहीं किया। जब वह बसंतपुर के पास पहुँचा तो वहाँ की सारी प्रजा भागकर किले में चली गई। चारों ओर की परिखा को जल से भर दिया गया। राजा चन्द्रशेखर ने दरवाजे की रक्षा का भार स्वयं सम्हाल लिया। चारों दिशाओं में सुभट खड़े हो गये[1]

---

१. लए तुरंग मोल दह लाख भइगल छ सहस करहु असंख।
सहस बत्तीस जोडणि.........., चाउरंगु बलु वनु दीन पयाणु ॥४५१॥
पाइक धाणुक हुइ दह कोडि, पयइल चलउ रायसिहु जोडि।
छत्तधारी बुसि गिरि जिन्हु पाहि, ते असंख रावत दल माहि॥४५२॥
जिणदत्त चलतहि कंपइ धरणि, उत्थइ धूलि न सूझइ तरणि।
हाकि निसाण जोडि जणु हणे, अपनइ देश पलाणे घणे ॥४५३॥
कउणइ गरहिउ उटवहि थान, कें (उणइ) राय दिखालहि घाट।
दूसहु राउ ण को अंगवइ, नामु कहइ जइनी चक्कवइ ॥४५४॥
भाजइ नयर देस विमल......, पर चक्क भउ नसि आसिकुल सहहि।
चाले कटक किए बहु रोल, अरि मंडल भणि हल्ल कलोल ॥४५५॥
ठा ठा करत जोडि नीसरइ, जाइलि मगध देस पइसरहि।
परिजा भाजि गई जहि राउ, वेढिउ सो बसंतपुर ठाउ ॥४५६॥
परिजा भाजी, शहह महंत, लागी पउलि निऊ भेजंत।
मयउ ढोकुलि अरु गोफणी, रचे मारु कहु सीसे घणी ॥४५७॥

जिनदत्त के चरित में साहस और वीरता के स्थल हैं; देशाटन के लिये निकल पड़ना, सागरदत्त की गिरी हुई पोटली के लिये उसका समुद्र में कूद पड़ना, तथा अन्य अनेक उदाहरण इस संबंध में दिये जा सकते हैं। कवि ने इन प्रसंगो में भाव चित्रों को प्रस्तुत करने का प्रयास अवश्य बहुत कम किया है। जिनदत्त ने जो कौतुक दिखाए हैं, वे अद्भुत रस की सृष्टि करते हैं। कुछ अन्य रसों का भी यत्र तत्र समावेश हुआ है ।

छन्द

काव्य का मुख्य छन्द चउपई है किन्तु वस्तु बन्धछन्द का भी खूब प्रयोग हुआ है। काव्य के ५५३ पद्यों में से ५५३ चउपई छन्द एवं वस्तु बन्ध हैं लेकिन कितनी चौपई छन्द के बाद में वस्तुबन्ध छन्द प्रयोग होगा इस का कोई निश्चित सिद्धान्त कवि की दृष्टि में नहीं था। वस्तुबन्ध तथा चौपई छन्द का प्रयोग उसकी इच्छानुसार हुआ है। काव्य में दोहे छन्द का भी प्रयोग हुआ है।

समग्र रूप से रचना चउपई-बन्ध काव्य रूप में प्रस्तुत की गई है, जिससे यह प्रकट है कि उसका मुख्य छन्द चउपई है, केवल एक रसता निवारण के लिये उनमें कुछ अन्य छन्दों का समावेश भी कर दिया गया है।

वर्णन और उल्लेख

प्रस्तुत काव्य में जिन वस्तु व्यापारों का वर्णन हुआ उन्हे हम निम्न श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं:—

(१) देश एवं नगर वर्णन--

इस काव्य में मगधदेश, (३१) वसन्तनगर (४०-४२), चंपापुरी (८६-८८), दशपुर (१६०), वेरणानगर (१६६), कुण्डलपुर (१८६), भंभापाटन (१९६) मदनद्वीप, पाटल द्वीप (१९६), सिंहलद्वीप २००-२०१), रथनुपुर (२५८) आदि देशों, नगरों एवं द्वीपों का वर्णन एवं उल्लेख हुआ है।

सबसे विस्तृत वर्णन मगध देश एवं वसन्तपुर का है जो हमारे नायक का जन्म स्थान था। यह वर्णन परम्परा-मुक्त है। कवि ने कहा है कि उस समय का वह सबसे सुखी एवं वैभवशाली नगर था, जहाँ घर२ में आम के पेड थे, जहाँ केला, दाख एवं छुहारा के पेड फलों से लदे रहते थे। अतिथियों का स्वागत सत्तू से किया जाता था। दुष्टों के लिए दण्ड व्यवस्था थी लेकिन वहाँ चोर-चरट कहीं भी दिखलाई नहीं देते थे। वह नगर मानों साकेतपुर था। वह धनधान्य से पूर्ण एवं ऊँचे ऊँचे महलों वाला था। सभी जातियों के लोग उसमें बसते थे। कवि ने उसे स्वर्ग का एक टुकड़ा ही कहा है[1]। इसी तरह

---

१. सवदरण पाउ यत्थ जहि ठाउ, मगह देसु तहि कहियउ गाउ।
पामरि घरसिए अनासहि चडी, जगु चड छूटि सग ते पड़ी॥३१॥
गिरगुराहु देसु तण्यों व्योहार, घरि घरि सफल अंबसाहार।
करहि राजु सकुटंबउ लोइ, परतह दुखी न दीसइ कोइ॥३२॥
पहिया पंथ न भूखे जाहि, केला दाख छुहारी खाहि।
गामि गामि छेते सतूकार, पहियह कूरु देहि अनिवारु॥३३॥
गामि गामि वाड़ी अंबराइ, जइसे पाटण तैसे ठाइ।
धम्मु विषे गरु भोयरा देहि, दाम विसाहि न कोई लेहि॥३४॥
गांकरु कूड दंड तहि चरइ, अपुराइ सुखि परजा व्यवहरइ।
चोर नु चरडु आंखि देखिये, अरु परणारि जराणि पेखियइ॥३५॥
मगह देसु भीतरि सुहि सारु, वासव सुरह अहिउ सो चारु।
नगरु कला कंचरा मन्दर विभूर, मंदर तुंग रहिय कय सूर॥३६॥

वणिक्कु नंमरा वइद बाभीठ॥
बालइ बेसा यरुउ मंदरा, निनारी त्रिहारहं।
नागु बाहु नारी वुरु नहु विहारक्ष जीवरखहं॥
सरु विहारि चारिठिया सुहु विडहु वणिधार।
नह वसंतपुरि रल्ह कइ जहि चउबीस नकार॥३७॥

चम्पापुरी और रयनुपुर नगरों का वर्णन हुआ है। रयनुपुर के राजा की ८४ स्त्रियों से प्राचीन काल के देशों का पता चलता है [1]।

सूर सामीय साहु सोतियहि ।
सरि सरवर सावयहं सब्बल अत्थि सारंग साहणा सिऊ ।
सोहा सहियणाहं सिखी संत सहीयण समाणाहं ।।
दंसण सीमा सत्थवंह सत्थ सवण सुहसार ।
सुब्बस सील बसंतपुर इहि चउमीस सकार ।।
मोह मच्छरु माणु मायारु ।
मउ मरी मारणु मरविणु मलिणु मलणु जहि कोवि सीसइ ।
महु मंस मयरासहि उलहि मच्छिदु मउरउण दीसइ ।।
मूढु मुसण मंगलु मखरु जहि ण मसइ जल मीणु ।
भणइ रल्हु सु बसंतपुर बीस मकार विहीणु ।।३६।।
राज-थाणु किमु करि वण्णियइ, पच्चासु सगु खंड जाणियइ ।
वसइ बसंतु णयरु सो घणउ, चंदसिहरु राजा तहं तणिउ ।।४०।।
चंदसेखर राजा के भवण, दिपहि त माणिक मोती रयण ।
सयलु अंतेउरु रूपनिवासु, बीस बीस सवण्हु पवासु ।।४१।।
बसहि त सयल लोय सुविचार, कंचणमइ तिन्हु कियए विहार ।
पर कहु मीचु ण वंछइ कोइ, जीव दया पालइ सब कोइ ।।४२।।
कोली माली पालहि दया, पटवा जीवकहु इंछहि मया ।
पारधी जीव ण घालहि घाउ, दया धम्मु कउ सबही भाउ ।।४३।।
बामण खत्री अवरति चर्म, ते सब पालक सरावग धर्म्म ।
मारण णाइ दियइ कलमली, जिणवरु णवहि छत्तीसउ कुली ।।४४।।

× × ×

१. तहि असोक विज्जाहर राउ, असोकसिरी राणि कहु भाउ ।
णं सुरेन्द्र जो थापिउ सुरहं, गरुव णरेंद सेवज सु करहं ।।२६८।।
साहण साहण न मुणउ अंतु, करहि राजु मेइणि विलसंत ।

सामाजिक रीतिरिवाज—

'जिनदत्त चरित' के अध्ययन से प्राचीन सामाजिक रीति-रिवाजों का भी थोड़ा आभास मिलता है। विवाह सम्बन्ध निश्चित करने के लिये ब्राह्मण जाया करते थे[1]। वे ही लड़की को देखकर सम्बन्ध निश्चित कर दिया करते

अठैठह नगरासी [illegible]रि, तिन्हु के नाम कहु कवि जान ।।२६९।।
कानडि गूजरि अरु मरहटी, लाडि चोडि दक्षिण सोरठी ।
पूरबिणी कणवजि बंगालि, मंगाली तिलंग सुरतारि ।।२७०।।
दवडी गउडी करणा मरणी, रूपादे कंचणादे धणी ।
उपमादे भामादे नारि, अभाभउ सुतमउ रूव मुरारि ।।२७१।।
चित्तरेहु सहिवर सो रेख, किसरेख जणु सोवन रेख ।
गुणगा सुरगा नयरस देइ, भोगमती गुणमती भणेइ ।।२७२।।
उरभादे रंभादे कांति, विहसणादे अछइ विलसंति ।
सुमयादेवि रूवसुन्दरी, पदमावती मयणसुन्दरी ।।२७३।।
मारोगा कन्हादे राणि, सावलदे सुहगदे जाणि ।
रेहु सुमई सुय पदवणि, भोगविलासनि हंसागमणि ।।२७४।।
हरसणिदे सुखसेणावलि, लारादे कहु रहह सभालि ।
मंदोवरि अरु चंद्रामती, हीरादे राणी रेवती ।।२७५।।
सारंगदे अरु चंद्रावयणि, वीरमदे राणी भावती ।
गंगादे राणि गजगमणि, कमलादे अरु हंसागमणि ।।२७६।।
मुक्तादेवि रूव आगली, चित्तिणि हंसिणी अरु पद्मिनि ।
सोमवती वरंगत ही घणी .... ।।२७७।।
अजनी बाला पोला तिरी, पियसुंदरी सुमइज मनपुरी ।
मोरवती रामा अधिकार, भोगवती कइलास कुमारि ।।२७८।।
श्रीवसंतमाला सोभाष, हरइ चित्त कामिणी काइय ।
सव्वइ दानि दारिद्रु चालहि, सव्वइ असोइराय बालही ।।२७९।।

× × ×

१. विप्पु एक कउ आइसु भयउ, सो पड़ लइ चंपापुरि गयउ ।
भेटिउ विमलमती सा थाउ, देइ असीस पड छोडि दिखाउ ।।१०५।।

थे। वे कभी-कभी अपने साथ लड़के का चित्र भी ले जाते थे। बारात खूब सज-धज के साथ निकलती थी[1]। बारात की खातिर भी खूब की जाती थी। विवाह में ज्यौनार होती थी। विवाह मण्डप में होता था जहां चौक पूरा जाता था। स्त्रियां माङ्गलिक गीत गाती थीं। दहेज देने की प्रथा तब भी खूब थी। जिनदत्त को चारों विवाहों में इतना अधिक दहेज मिला कि उससे सम्हाले न सम्हाला गया[2]। पुत्र जन्म पर खूब खुशियां मनायी जाती थी। गरीबों अनाथों और अपाहिजों को उस अवसर पर खूब दान दिया जाता था। जिनदत्त के जन्म पर उसके पिता ने दो करोड़ का दान दिया था[3]। भविष्यवाणियों पर विश्वास किया जाता था। राजा महाराजा कभी २ अपनी कन्याओं का विवाह भी इन्हीं भविष्यवाणियों के आधार पर कर दिया करते थे। समाज में बहु विवाह की प्रथा थी। राजागण तो अनेक विवाह करते ही थे, बड़े-बड़े सेठ साहूकार एवं व्यापारी भी चार-चार पांच-पांच विवाह तक कर लिया करते थे और इन्हें कोई बुरा भी नहीं बतलाता था। जिनदत्त ने चार विवाह किये और तब भी उसका भारी स्वागत हुआ। जिस समय को ध्यान में रखते हुए कथा

---

१. पंच सबद बाजेवि तुरंतु, बहु परियणु चाले सु वरातु ॥१२०॥
एकति जाहि सुखासण चडे, एकतु वाखर भीडे तुरे।
एकतु साजित सिगरी घरी, एकणु साजि पलाणी करी ॥१२१॥
एकति डाडी डोला जाहि, एकति हस्त चडे विगसाहि।
एकति जाहि विवाहणु वइठ, मनु मिलि चंपापुरीहि पइठ ॥१२२॥
चंपापुरि कोलाहलु भयो, आगइ होनि विमलु आइयो।

+ + + +

२. राय सोय पुणु नीकउ कीयउ, काडइ चूड करि मंडिय धीय।
अरु मनु चिंतिउ दिन्नु भिमाणु, तहि दियउ रयण अपमाणु ॥२६५॥

× × × ×

३. देहि तंबोल त फोफल पाण, दीणे चीर पटोले पाण।
पूत वेधाए नाहीं खोरि, दीने गेठि दाम दुइ कोडि ॥६१॥

की रचना की गई है उस समय सामाजिक बन्धन कम ही था। जिनदत्त के विवाह अपनी ही जाति तक सीमित न रह कर अन्य जातियों में भी हुए थे।

नगर में जुआरी होते थे एवं वेश्यायें होती थीं। कभी २ भद्र व्यक्ति भी अपने लड़कों को चतुर एवं गार्हस्थ जीवन में उतारने के लिये ऐसे स्थानों में भेजा करते थे। जिनदत्त को कुछ दिनों तक ऐसे व्यक्तियों की छाया में रखा गया था। ऐसे ही लोगों का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है :—

बार बार वेसा घरि जाहि, अरु जूवा खेलत न अघाहि।
चोरी करत न आलसु करइ, गांठ काटि अंतगालइ धरइ॥
जिन कै दव्व गइय तिन्हु दिठि, सो जगु कियउ आपुणो मुठि।
गंजगु कूडू मारि जिसु सही, तिणि सहु सेठि बात सहु कही॥

समाज में जुआ खेलने की प्रथा थी और उसे समाज विरोधी नहीं समझा जाता था। उनके बड़े बड़े केन्द्र थे, जहां भोले भाले एवं नवसिखिये व्यक्ति फँस जाया करते थे। जिनदत्त भी एक बार में ११ करोड का दांव हार गया था[1]। हारे हुए पैसो को दिये बिना जुवारियों से मुक्ति मिलना सम्भव नहीं था।

विद्याध्ययन की प्रथा थी किन्तु कभी-कभी १४-१५ वर्ष होने के बाद उसे उपाध्याय के पास भेजते थे। शिक्षक को उपाध्याय कहते थे। वहाँ उसे लक्षण ग्रंथ, छंद शास्त्र, न्याय शास्त्र, व्याकरण, रामायण, महाभारत, भरत का नाटय शास्त्र, ज्योतिष, तंत्र एवं मंत्र शास्त्र आदि की शिक्षा देते थे। विद्याध्ययन के पश्चात् उसे शस्त्र चलाना भी सिखाते थे जिससे वह समय आने पर अपनी आत्म रक्षा भी कर सके।

समाज में जातियों एवं उप जातियों की संख्या पर्याप्त थी। कवि ने

---

१. खेलत भई जिणदत्तहि हारि, जूवारिन्हु जीति पचारि।
भणहि रहहु हमु नाहीं छोडि, हारिउ दव्वु एगारह कोडि॥१२०॥

अपने काव्य में २४ प्रकार की 'वकार' एवं २४ प्रकार की 'सकार' नाम वाली जातियों के नाम गिनायें है जो उस समय वसंतपुर में रहती थी। उस नगर की एक और विशेषता यह थी कि २० प्रकार की 'मकार' वाली जातियाँ वहाँ नहीं थी जिन से उस नगर का वातावरण सदैव शांत एवं पवित्र रहता था।

प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन

काव्य में प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन भी यत्र तत्र मिलता है। कवि को पेड़ पौधों एवं फल-पुष्पों से अधिक प्रेम था इसलिये उसने नगर-वर्णन के साथ उनका भी वर्णन किया है। सागरदत्त सेठ के उद्यान में विविध पौधे थे। अशोक एवं केवड़ा के वृक्ष थे। नारियल एवं आम के वृक्ष थे। नारंगी, छुहारा, दाख, पिंडखजूर, सुपारी, जायफल, इलायची, लौंग आदि कितने ही फलों के नाम गिनाये हैं पुष्पों में मरुआ, मालती, चम्पा, रायचम्पा, मुचकुन्द, मोलसिरि, जपापुष्प, पाडल, कठ पाडल, गुडहल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार का वर्णन हिन्दी की बहुत कम रचनाओं में मिलता है। सधारु कवि ने भी आगे चलकर प्रद्युम्नचरित (सं. १४११) में भी इसी तरह का अथवा इससे भी विशद वर्णन किया है। परवर्ती अपभ्रंश काव्यों में भी ऐसे वर्णनों की प्रमुखता है।

रल्ह कवि ने इन वृक्षों पौधों एवं लताओं के नाम उनकी विशेषता सहित गिनाये हैं। कवि के शब्दों में ऐसा ही एक वर्णन देखिये:—

जो असोक करि थविकउ संगु, अन पर परिलहि दीसइ भंगु।
जो छुउ कसिर रहिउ केवडउ, सिचिउ खीर भयो रूवडउ ॥१६९॥
जे नालियर कोपु करि ठिए, तिन्हइ हार पटोले किए।
जे छे सूकि रहे सहकार, तिन्हु अंकमाल दिवाए बाल ॥१७०॥
नारिंगु जंबु छुहारी दाख, पिंडखजूर फोफिली असंख।
जातीफल इलायची लवंग, करणा भरणा कीए नवरंग ॥१७१॥

काथु कपित्थ बेर पिंगली, हरड बहेड खिरी आम्बली ।
सिरीखंड अगर मलीदी धूप, एरहि नारि तहि ठाइ सरूप ॥१७२॥
जाई जुहि बेल सेवंती, दवणो मरुवउ अरु मालती ।
चंपउ राइचंपउ मचकुंद, कूजउ मउलसिरी जासिउंदु ॥१७३॥

इसी तरह जब चंपापुरी में मदोन्मत्त हाथी अपने बंधन तोडकर राज-पथ पर विचरण करने लगा, उस समय का भी कवि ने अच्छा वर्णन किया है। कवि ने कहा कि वह मद विह्वल हाथी अंकुश को नहीं मान कर, खम्भ को उखाड़ कर सांकल के टुकड़े२ कर दिये [illegible] भूमि को भयंकर रूप से खोद रहे थे। उसको कई २ वीर पकड़े हुये थे। उसकी भयंकर चीत्कार थी। भ्रमरों की पंक्ति उसके पास मंडरा रही थी। लोग उसे साक्षात् काल ही समझने लगे थे। लोग दोनों दूर जा चुके थे। इसी वर्णन का अंश देखिये:—

मय भिभलु गउ अंकुस मोडी खंभु उपाडि दंतु सलि तोडि ।
सांकल तोडि करि चक चूनि, गयउ महापतु घर की पूतु ।
गयउ महावत्थु एमरो जित्थ,, गज भूडउ मऊ अखंड तित्थु ।
हुउ उबरिउ जुन खूटउ कालु, नउ सूडिउ तोडिनु भालु ॥

इस प्रकार के वर्णनों से ज्ञात होता है कि कवि में वर्णन करने की यथेष्ट क्षमता थी, यद्यपि उसने उसका उपयोग सीमित ही परिमाण में किया है।

रोमाञ्चक तत्व

काव्य में रोमाञ्चक कार्यों का विस्तृत वर्णन मिलता है। सर्व प्रथम जिनदत्त ने अजनीमूल जड़ी के सहारे अपने आप को प्रच्छन्न कर लिया। जब वह समुद्र तैर कर रथनूपुर पहुँचा तो उसका विद्याधर कुमारी से विवाह हुआ और दहेज में सोलह विद्याएँ प्राप्त हुई। इनमें जलगामिनी, बहुरूपिणी,

जलसोखणी, जलस्तंभिनी, हृदयालोकिनी, अग्निस्तंभिनी, सर्वसिद्धि विधाता-रिणी, पातालगामिनी, मोहिनी, अंजणी, रत्नवर्षिणी, शुभदर्शिनी, वज्रणी आदि विद्याओं के नाम उल्लेखनीय हैं। जिनदत्त ने वहाँ तिमिरदृष्टि विद्या भणीबंध एवं सर्वौषध विद्याएँ भी प्राप्त की थी। विद्याबल से ही उसने विमान बनाया और अकृत्रिम चैत्यालयों की वन्दना की [1]। चम्पापुर पहुँच कर वहाँ राज दरबार में बौने के रूप में जो उसने अपनी विद्याओं का प्रदर्शन किया और मदोन्मत्त हाथी को वश में किया वह सब उसकी प्राप्त विद्याओं के आधार पर ही था। जैन काव्य एवं पुराणों में इसी तरह की विद्याओं का बहुत वर्णन मिलता है। जैन काव्यों के नायक प्रायः ऐसी विद्याएँ प्राप्त करते हैं और फिर उनके सहारे कितने ही अलौकिक कार्य करते हैं।

विदेश यात्रा

कवि के समय में भारत व्यापार के लिए अच्छा माना जाता था। व्यापारी लोग समूह बनाकर तथा बैलों पर सामान लाद कर एक देश से दूसरे देश एवं एक नगर से दूसरे नगर तक जाया करते थे। कभी नावों से यात्रा करते तो कभी जहाज में चढ़ कर व्यापार के लिये जाते। इस व्यापारिक यात्रा के समय एक प्रमुख चुन लिया जाता था और उसी के आदेशानुसार सारी व्यवस्था चलती थी। जिनदत्त जब व्यापार के लिए निकला तो रचना के अनुसार उसके संघ में १२ हजार बैल थे एवं अनेक वणिक-पुत्र थे। सिंहल द्वीप उस समय व्यापार के लिये मुख्य आकर्षण का केन्द्र स्थान था। वहाँ जवाहरात का खूब व्यापार होता था। लेन देन वस्तुओं में अधिक होता था। सिक्कों का चलन कम ही था। ऐसे अवसरों पर व्यापारी खूब मुनाफा कमाते थे। नाविक एवं जहाज के कप्तान जलजंतुओं का पूरा पता लगा लिया

---

१. आयउ जगमर्गतु सो तित्थु, जीवदेव नंदणु हुइ जित्थु।
सिज्जा चवइ निसुणि जिणदत्त, वंदि अकिट्टमि जिणमलचत्तु॥

करते थे। वे अपने साथ मुद्‌गर एवं लोहे की सांकल भी रखा करते थे। समुद्र में बड़े बड़े मगर रहते थे, उनसे बचने का उपाय भी वे लोग भली प्रकार जानते थे। व्यापारिक यात्रा से वापिस लौटने पर उनका राजा एवं प्रजा द्वारा बड़ा स्वागत-सत्कार किया जाता था। उन्हें उचित रीति से सम्मानित करने की भी प्रथा थी।

इस प्रकार जिणदत्त हिन्दी के आदिकाल की एक उत्कृष्ट रचना है आशा है उसको हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा।

ग्रंथ सम्पादन

'जिणदत्त चरित' की पर्याप्त खोज करने के पश्चात् भी कोई दूसरी प्रति उपलब्ध नहीं हो सकी। इस कारण इसका सम्पादन एक ही प्रति के आधार पर किया गया है और इसी कारण से इसके पाठ-भेद आदि नहीं दिये जा सके। फिर भी हमें संतोष है कि ऐसे प्राचीनतम हिन्दी काव्य का सम्पादन एवं प्रकाशन हो सका है। मूल प्रति प्रारम्भ में काफी स्पष्ट लिखी हुई है लेकिन अन्त के कुछ पृष्ठ प्रतिलिपिकार ने सम्भवतः जल्दी में लिखे हैं। इसलिये उसने प्रारम्भ के समान आगे प्रत्येक पद्य के आगे संख्या भी नहीं दी है। फिर भी प्रति सामान्यतः शुद्ध एवं स्पष्ट है। पाठकों की सुविधा के लिये मूल ग्रंथ का हिन्दी अर्थ भी दे दिया गया है तथा पद्यों के नीचे महत्वपूर्ण शब्दों के अर्थ एवं उनकी उत्पत्ति तथा अन्त में विस्तृत शब्दकोश अर्थ सहित दिया गया है। हिन्दी शब्दकोश के विद्वानों को इस काव्य में कितने ही नये शब्द मिलेंगे जिनका संभवतः अभी तक अन्य काव्यों में उपयोग नहीं हुआ है।

जिणदत्त चरित के समान राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों में और भी महत्वपूर्ण काव्य उपलब्ध हो सकेंगे ऐसा हमारा विश्वास है इसलिये इस दिशा में विशेष प्रयत्न की आवश्यकता है।

आभार :—

हम श्रीमहावीर क्षेत्र कमेटी एवं उसके अध्यक्ष महोदय कर्नल डा० राजमलजी कासलीवाल तथा मंत्री श्री गेंदीलालजी साह एडवोकेट के आभारी हैं जिन्होंने इस को अपने साहित्यशोध विभाग से प्रकाशित कराया है। क्षेत्र के साहित्यशोध विभाग की ओर से प्राचीन हिन्दी रचनाओं के प्रकाश में लाने का जो महत्वपूर्ण काम हो रहा है उसके लिये सारा हिन्दी जगत उनका कृतज्ञ है। क्षेत्र के साहित्य शोध विभाग के अन्य विद्वान् श्री अनूपचंद न्यायतीर्थ, सुगनचंद जैन एवं प्रेमचंद रांवका के भी हम आभारी हैं जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अपना महत्वपूर्ण सहयोग दिया है। श्री दि० जैन मन्दिर पाटोदी जयपुर के शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री नाथूलालजी बज के भी हम कृतज्ञ हैं जो अपने शास्त्र भण्डार की हस्तलिखित प्रति देकर इस काव्य के प्रकाशन में सहायक बने हैं। अन्त में हम श्री पं० चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ के प्रति पूर्ण आभार प्रदर्शित करते हैं जिनकी सतत प्रेरणा ही इस ग्रन्थ के प्रकाशन में महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है।

माताप्रसाद गुप्त
कस्तूरचंद कासलीवाल

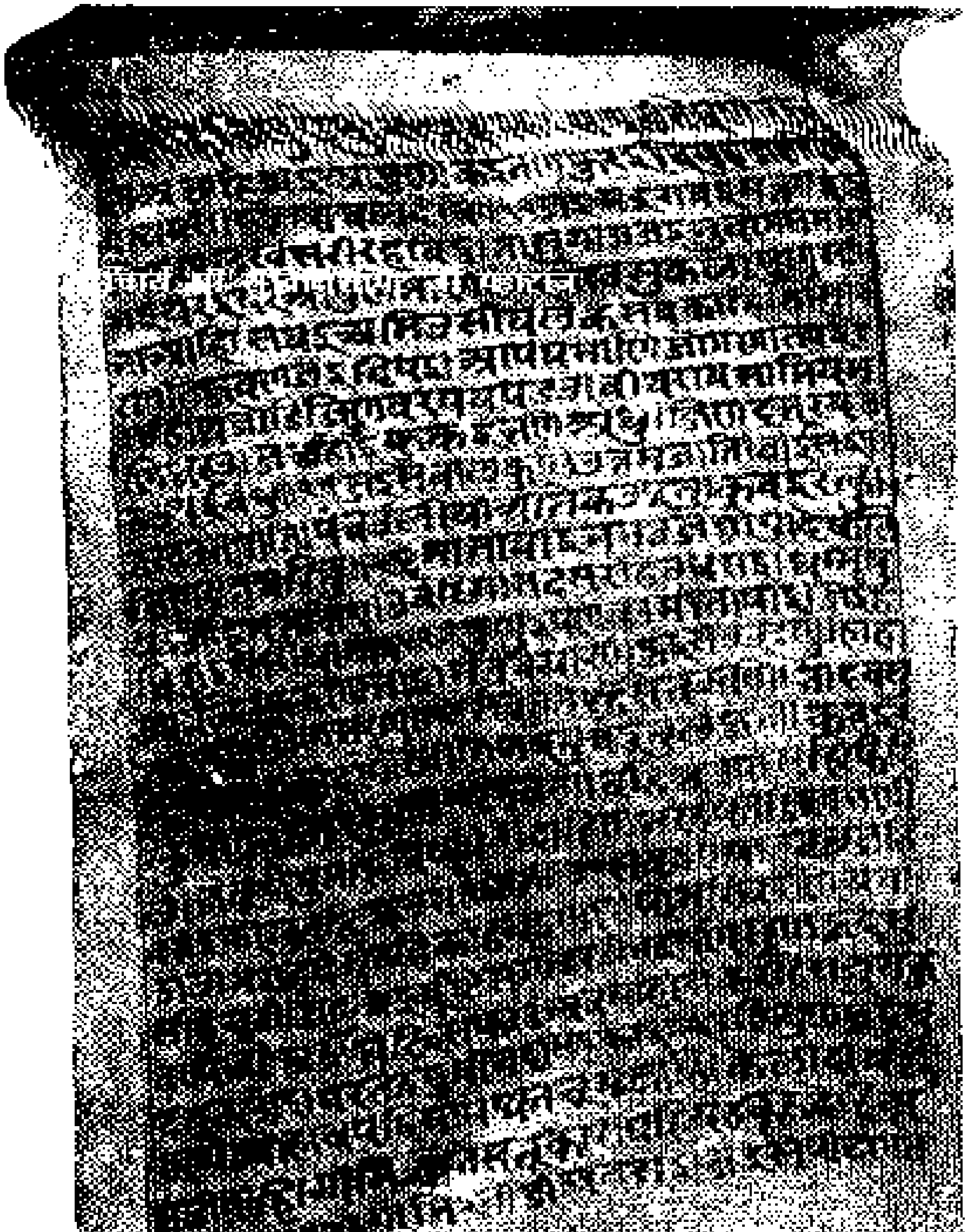

जिणदत्त चरित की पाण्डुलिपि का एक चित्र

जिणदत्त चरित

(स्तुति - खण्ड)

(वस्तुबंध)

[१]

णविवि जिणवर आसि जे वित्त ।

रिसहाइ धम्मुद्धरण, णविवि तं जि गय कालि होसहि ।
सह सत्थहि खिति पुणु, ताहं णविवि जं कम्मसोहहि ।।

णाहिणरेसरु सुउ रिसहु, वरिसिउ धम्म पवाहु ।
सो जय कारणि रल्हु कइ, आइ-णणाहु जगणाहु ।।

अर्थ :—धर्म का उद्धार करने वाले जो ऋषभादि वर्तमान तीर्थंकर हैं, उन्हें नमस्कार करके तथा जो तीर्थंकर हो गये हैं और जो भविष्य में होंगे, उन्हें नमस्कार करके तथा उनके साथ (संघ) में पृथ्वी तल पर जो कर्मों का शोषण करने वाले सिद्ध हुए, उन्हें नमस्कार करके नाभि नरेश के सुत जिन ऋषभदेव ने धर्म-प्रवाह की वर्षा की रल्ह कवि ऐसे जय के कारण स्वरूप जगत् के नाथ आदिनाथ (को नमस्कार करता है) ।

आसि – अस् – होना । वित्त : (वि० प्रसिद्ध, विख्यात) अथवा वृत्त : वि० उत्पन्न, संजात, अतीत । रिसहु – ऋषभ । सोहहि-सोह – शोधय । सुउ – सुत । कइ – कवि । आइ-णणाहु – आदिनाथ ।

[२]

संजमु नेमु धम्मु तसु जाणु, जो णिसुणइ जिणदत्त पुराणु ।
संपत्ति पुत्त श्रवरु जसु होइ, महियलि दुखु न देखइ कोइ ॥

अर्थ :—जो इस जिनदत्त पुराण को सुनता है (जीवन में) संयम, नियम और धर्म उसको (प्राप्त हुआ) जानो। उसको वैभव, सन्तान तथा यश (का लाभ) होता है तथा वह पृथ्वी पर कोई भी दुःख नहीं देखता है।

संजमु पु॰ (संयम) – हिंसादि पाप कर्मों से निवृत्ति - दश धर्मों में से एक धर्म। नेमु – नियम धर्म, व्रत उपवास आदि।

[३]

जय जगणाहु रिसीस जिणंद, णावहि अजिय गय गणहरविंद ।
जिणु, संभव अहिणंदण देउ, सुमइणाहु पणवउं गय लेउ ॥

अर्थ :—जगत् प्रभु ऋषभ जिनेन्द्र की जय हो तथा गणधरों द्वारा पूजित अजितनाथ के चरणों में नमस्कार हो। जिनेन्द्र संभवनाथ, अभिनन्दनदेव, सुमतिनाथ को प्रणाम करता हूँ जो गत लेप (निष्पाप) हुये हैं।

रिसीस – ऋषभेश, ऋषभदेव स्वामी। गणहरविंद – गणधरवृंद। गय लेउ – गतलेप–चला गया है पाप जिसका।

[४]

पउमप्पहु सामिय दुहहरण, जिण सुपासु जग असरण सरण ।
चंदप्पहु समचित्त सहाउ, पुप्फयंतु सिवपुरि कउ राउ ॥

अर्थ :—पद्मप्रभ स्वामी दुःखों का हरण करने वाले हैं तथा सुपार्श्वनाथ

जिनेन्द्र अनाथों को शरण देने वाले हैं। चन्द्रप्रभ स्वामी शान्त चित्त एवं शान्त स्वभाव वाले हैं तथा पुष्पदंत मोक्ष नगरी के राजा हैं।

पउमप्पहु – पद्मप्रभ। सामिय – स्वामी। सहाउ – स्वभाव। सिवपुरि – शिवपुरी–मोक्षनगरी।

[५]

जिण सीयलु अरु सीयल वयणु, तुहु सेयंस जयत्तय सरणु।
वासुपुज्ज अरुणोह सरीर, जय जय विमल अतुल बलवीर॥

अर्थ :—और शीतलनाथ जिनेंद्र शीतल वचन वाले हैं तथा हे श्रेयांसनाथ, तुम तीन-जगत के शरणभूत हो। वासपूज्य स्वामी, तुम लाल रंग के शरीर वाले हो तथा अतुल बल के धारक हे विमलनाथ तुम्हारी जय हो।

सीयलु – शीतल। जगत्तय – जगत्रय।

[६]

जिणु अनंतु तिहुवण जगसरणु[1], धम्मु धम्म उद्धरणु समत्थु।
जय पहु संतिणाह दुह हरण, जय जय कुंथु जीव दय करण॥

अर्थ :—अनन्तनाथ जिनेंद्र जो तीनों लोकों तथा जगत के स्वामी हैं, धर्मनाथ जो धर्म का उद्धार करने में समर्थ हैं, शान्तिनाथ जो जगत के नाथ हैं तथा दुःखों का हरण करने वाले हैं तथा जीवों पर दया करने वाले कुंथनाथ स्वामी की जय हो।

तिहुवण – त्रिभुवन। धम्मु – धर्मनाथ। समत्थु – समर्थ। पहु – प्रभु।

१. मूलपाठ 'जगणाहु' है।

[७]

अर परिकम्म वप्पु जिह हरिउ, मल्लिणाह सुर णियरें नमिउ ।
मुणिसुव्वउ जिण गुण को रासि, णमि[1] जिणवरु खल दोसह णासि ।।

अर्थ :—अरहनाथ जिन्होंने कर्म शत्रु के दर्प का हरण किया है, देवताओं के द्वारा पूजित मल्लिनाथ को नमस्कार हो, मुनिसुव्रत जिनेन्द्र जो गुणों को राशि हैं तथा नमि जिनेन्द्र निश्चय ही दोषों को नाश करने वाले हैं।

णियर — निकर-समूह । १. मूलपाठ 'णवि' है ।

[८]

समद विजय सुतु णेमि जिणंदु, पासणाह पय परसइ इंदु ।
धर सिर लाइ राइसिंहु कहइ, बहुफलु वीरणाहु जो णवइ ।।

अर्थ :—समुद्रविजय के पुत्र जिनेंद्र नेमिनाथ तथा पार्श्वनाथ जिनके चरणों का स्पर्श इन्द्र करता है (इन सभी को नमस्कार है)। कवि राजसिंह (रल्ह) साष्टांग नमस्कार करके कहता है कि सबसे अधिक फल उसे होता है जो भगवान् वीरनाथ (महावीर) को नमस्कार करता है।

परसइ — स्पृश-स्पर्श करना ।

[९]

चउवीसइ सामिय दुह हरण, चउवीसह मुक्के जर मरण ।
चउवीसहु मोक्खहु कउ ठाउ, जिण चउवीस नमउ धरि भाउ ।।

अर्थ :—चौबीसों स्वामी (तीर्थंकर) दुःखों के हर्ता हैं, सभी चौबीस जरा एवं मरण से मुक्त हो चुके हैं। सभी चौबीस मोक्ष के निवासी हैं इसलिये सभी चौबीस तीर्थंकरों को भाव धारण कर (भाव पूर्वक) नमस्कार करता हूं।

मुक्के — मुक्—मुच्—छूटना, मुक्त होना । ठाउ — स्थान ।

[१०]

चक्केसरि रोहिणि जयसारु, जालामालिणि अरु खेतपालु ।
अंबिमाइ तुम नवऊं सभाइ, पदमावती कइ लागउ पाइ ॥

अर्थ :—देवी चक्रेश्वरी, रोहिणी, ज्वालामालिनी तथा क्षेत्रपाल (देव) की जय हो। माता अम्बिका को भी भावपूर्वक नमस्कार करता हूँ तथा पद्मावती देवी के पांव लगता हूँ।

सभाइ – स + भाव–भावपूर्वक ।

[११]

जे चउवीस जक्ख[1] जक्खिणी, ते पणमउ सामिणि आपुणि ।
कुमइ कुबुधि देवि महु हरहु, चउविह संघह रख्या करहु ॥

अर्थ :—जो चौबीस यक्ष यक्षिणियां हैं, (तथा जो) स्वयं ही (जिन शासन) की स्वामिनी हैं उन्हें नमस्कार करता हूँ। हे देवियों, मेरी विकृत मति एवं विकृत बुद्धि का हरण करो तथा चतुर्विध संघ की रक्षा करो।

जक्ख – यक्ष। कुमइ – कुमति। सामिणी – स्वामिनी। रख्या – रक्षा। चउविहसंघह – चतुर्विध संघ–मुनि, आर्यिका, श्रावक श्राविका इन चारों का संघ कहलाता है। १. 'जख' मूलपाठ है।

[१२]

इंद वहुण जम णेरिउ जाणु, वरुणु वाय धणदुवि ईसाणु ।
पणमउं पोमिणिवइ धरणिदु, रोहिणीकंतु जयउ णहिचंदु ॥

अर्थ :—इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत, वरुण, वायु, कुबेर तथा ईशान तथा पद्मावती देवी के पति धरणेन्द्र को नमस्कार करता हूँ तथा रोहिणी देवी के स्वामी चन्द्रदेव की जय हो।

इस पद्य में कवि ने दशों दिशाओं के दश दिग्पालों को नमस्कार किया है।

इंद – इन्द्र। दहण – अग्नि। जम – यम। णेरिउ – नैऋत। वरुणु – जल। वाय – वायु, पवन। धणदु – धनद-कुबेर। ईशाणु – ईशान। पोमिणिवइ पद्मिनी – (पद्मावती)। धरणिंदु – धरणेंद्र। चंदु – सोम।

१. इन्द्रो वह्नि : पितृपति, नैऋतो वरुणोमरुत्।
कुबेर ईश : पतय : पूर्वादीनामनुक्रमात्॥ अमरकोश।

[१३]

सूर सोम मंगल दुह डहउ, बुह, बिहप्पइ सुह बिच्छरउ।
सुक्क राहु सनि केउ¹ गरिट्ठ, ए गह नव जिण आगम सिठ॥

अर्थ :—रवि, सोम, मंगल दुःखों को भस्म करें। बुध एवं बृहस्पति सुख का विस्तार करें। शुक्र, शनि, राहु और केतु विशिष्ट ग्रह हैं, ये सभी नव ग्रह जिनागम में प्रसिद्ध हैं।

सूर – सूर्य। दुह – दुख। डहे – दह-दग्ध करना। बुह – बुध। बिहप्पइ – बृहस्पति। सुह – सुख। बिच्छरउ – विस्तृ–फैलाना। सुक्क – शुक्र। केउ – केतु। गहे – ग्रह। गरिठ – गरिष्ठ-विशिष्ट। सिठ – शिष्ट-प्रतिष्ठित। १. 'कारउ' मूल पाठ है।

(शारदा स्तवन)

[१४]

जहि संभव जिणवर मुह कमल, सप्तभंग वाणी जसु अमल।
आगम खंध तरक वर खाणि, सारद सइ अत्थ पय खाणि॥

अर्थ :—जो (शारदा) जिनेन्द्र भगवान के मुख से प्रकट हुई है, जिसकी सप्तभंगमय वाणी है, जो आगम, छंद एवं तर्क से युक्त है, ऐसी वह शारदा शब्द, अर्थ एवं पद की खान है।

संभव – जन्म। सप्तभंग-स्याद्वाद के सात सिद्धान्त (१) स्यात् अस्ति (२) स्यात् नास्ति (३) स्यात् अस्ति-नास्ति (४) स्यात् अवक्तव्य (५) स्यात् अस्ति अवक्तव्य (६) स्यात् नास्ति अवक्तव्य (७) स्यात् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य। सारद – शारदा। तक्क – तर्क। सद्द – शब्द। अरथ – अर्थ। पय – पद।

[१५]

गुणणिहि वहु विज्जागमसार, पुट्ठि मराल सहइ अविचार।
छंद बहुत्तरि कला भावती, सुकइ रल्ह पणवइ सरसुती॥

अर्थ :—जो गुणों की निधि एवं विद्या तथा आगम की सार-स्वरूपा है, जो स्वभावतः हंस की पीठ पर सुशोभित है जिसे छंद एवं बहत्तर कलायें प्रिय है, ऐसी सरस्वती को रल्ह कवि नमस्कार करता है।

गुणणिहि – गुणनिधि। विज्जागम – विद्या और आगम। पुट्ठि – पृष्ठ-पीठ।

[१६]

करि थुइ सुकइ ठणवइ तुहु[1] पाइ, परसणी तुह सारद माइ।
महु पसाउ स्वामिनि करि तेम, जिणदत्त चरितु रचउ हउ जेम।

अर्थ :—कवि स्तुति करके तुम्हारे चरणों में नमस्कार करता है। हे शारदा माता! आप प्रसन्न होओ। हे स्वामिनि, मुझ पर अपनी कृपा उस प्रकार करो जिस प्रकार मैं जिनदत्त चरित की रचना कर सकूं।

थुइ – स्तुति। पसाउ – प्रसाद-कृपा। १. नहु–मूलपाठ।

(शारदा का प्रकट होना)

[१७]

सुणिवि वयण सारद यौ कहै, मेरउ अन्त न कोई लहै ।
किमइ काजु आराहहि मोहि, मांगि मांगि संतुठी तोहि ॥

अर्थ :—प्रार्थना को सुनकर शारदा यों कहने लगी "मेरा पार कोई नही पा सकता है । किस कार्य के लिये तू मेरी आराधना करता है ? मैं तुझ पर संतुष्ट हुई । तू मांग, मांग ।"

आराह – आराध्-आराधना करना । संतुट्ठ – संतुष्ट ।

[१८]

भणइ सुकइ करि सुधउ भाउ, जा निरु अम्हहं कियउ पसाउ ।
तह पसाइ णाण घवरु लहउ, ता जिणदत्त चरित हउ कहउ ॥

अर्थ :—कवि शुद्ध भाव करके कहता है—निश्चित रूप से यदि तुमने मुझ पर प्रसाद किया है तो तुम्हारे प्रसाद से अपार ज्ञान प्राप्त करूं, जिससे मैं जिणदत्त-चरित को कह सकूं ।

भाउ – भाव । निरु – निश्चित रूप से । णाण – ज्ञान । घवरु – गह्वर, भारी, गम्भीर, अपार ।

(शारदा का वरदान)

[१९]

सा भारती गुसाइणि देवि, तूठी साणंदे पभणेवि ।
सुकइ कहा तू कहण समत्थु, मुहु सिरि रल्हं दिण्णु मइ हत्थु ॥

अर्थ :—वह स्वामिनि भारती (शारदा) देवी प्रसन्न होकर आनन्द के

साथ कहने लगी, "हे सुकवि तू कथा कहने में समर्थ है। हे रल्ह, तेरे शिर पर मैंने अपना हाथ रख दिया है।

गुसाइणि – गोस्वामिनी-स्वामिनी। पभणि – प्र+भण-कहना। समत्थु – समर्थ। हत्थु – हस्त, हाथ।

(कवि द्वारा लघुता प्रदर्शन)

[२०]

हउ भखउ जिणदत्त पुराणु, पढिउ न लक्खण छंद बखाणु।
अक्खर[1] मत्त हीण जइ होइ, महु जिण दोसु देइ कवि कोइ॥

अर्थ :—मैं जिनदत्त पुराण को कह रहा हूँ। मैंने काव्य के लक्षण एवं छंदों का बखान (वर्णन) नहीं पढ़ा है। इसलिये यदि कहीं अक्षर एवं मात्रा की हीनता हो तो मुझे कोई भी कवि दोष न देवें।

भख – अक्ख-आ+ख्या-कहना। अक्खर – अक्षर। मत्त – मात्रा। जइ – यदि। १. अग्वर–मूलपाठ।

[२१]

हीण बुधि किम करउ कवित्तु, रंजि ण सकउ विबुह जण चित्त।
धम्म कथा पयडंतह दोसु, दुज्जण सयण करहि जिणु रोसु॥

अर्थ :—मैं हीन बुद्धि हूँ कविता किस प्रकार करूं? (क्योंकि) मैं विद्वानों के चित्त को प्रसन्न भी नहीं कर सकता हूं। धर्मकथा को प्रकट (प्रतिपादित) करने में दोष होते ही हैं; इसलिये दुर्जन एवं सज्जन (दोनों से ही प्रार्थना है कि वे) रोष न करें।

पयड् – प्र+कटय्–प्रकट करना।

[२२]

भुवण कईस अतीते घणे, बहुले अत्थहि ठाइ आपुणे ।
कइत्तणु फुरइ विबुह जण पेखि, पाय पसारउ आंचल देखि ।।

अर्थ :—भुवन (जगत) में बहुत से कवीश्वर (महाकवि) हुए हैं और बहुत से अपने स्थानों पर विद्यमान हैं। कवित्व विबुध जनों (विद्वानों) को देखकर स्फुरित होता है। (और मैं सीमित बुद्धि का हूँ)। अतः अपने अंचल—वस्त्र (अपनी सामर्थ्य) को देखकर ही मैं पैर पसार रहा (काव्य रचना कर रहा) हूँ।

भुवन — जगत्। कईस — कवीश—महाकवि। अत्थहि — स्था—बैठना। कइत्तणु — कवित्व। पेखि — प्र+ईक्ष्—देखना।

[२३]

जइ अइरावइ मत्त गइंदु, जोयण लक्खु सरीरहु विंदु ।
तासु गाज जइ भुवण समाण, गहयर इयर आपुणे माण ।।

अर्थ :—यद्यपि ऐरावत मस्त गजेन्द्र है, उसका शरीर एक लाख योजन प्रमाण जाना जाता है और उसकी गर्जना भुवन में व्याप्त है तो भी इतर गज अपने मान (सामर्थ्य) के अनुरूप गर्जते ही हैं।

अइ — यदि। अइरावइ — ऐरावत। गइंद — गजेन्द्र। जोयण — योजन। विंद — विद्—जानना। इयर — इतर। माण — मान—सामर्थ्य।

[२४]

चंदसु कला पुणु सोहि ण आहि, सवइ अमिउ सीयलक सच काहि ।
तासु किरण तिहुवण जइ दिपइ, आप पमाण जोगणा तपइ ।।

अर्थ :—चन्द्रमा षोडश कला पूर्ण कहा जाता है, वह संपूर्ण रूप से अमृतमय है और सबके लिए शीतल (होता) है। यदि उसकी किरणें तीनों भुवनों को प्रदीप्त (प्रकाशित) करती हैं, (तो भी) अपनी शक्ति के प्रमाण से (सामर्थ्य भर) जुगुनू तपता (चमकता) ही है।

पुण्णु – पूर्ण । अमिउ – अमृत । सीयल – शीतल । तिहुवण – त्रिभुवन । पमाण – प्रमाण । जोगणा – जुगुनू-खद्योत ।

[२५]

हाथ जोडि जिणवर पय पडउ, वीयराग सामिय मणि धरउ ।
जात्य होइ कुकइत्तणे बंधु, जिणदत्त रयउ चउपई बंधु ॥

अर्थ :—हाथ जोड़ कर मैं जिनेन्द्र भगवान के चरणों में पड़ता हूँ तथा वीतराग स्वामी को मन में धारण करता हूँ, जिससे कुकवित्व बंधा हो जाए, और मैं जिनदत्त (की कथा) चउपई बंध (काव्य रूप) में रच सकूं ।

पय – पद । वीयराग – वीतराग । सामिय – स्वामी । कुकइतणा – कुकवित्व । रयउ – रच्–रचना करना ।

(कवि परिचय)

[२६]

जइसवाल कुलि उत्तम जाति, बाईसइ पाडल उतपाति ।
पंचऊलीया आते कउ पूतु, कवइ रल्हु जिणदत्त चरितु ॥

अर्थ :—जैसवाल नामक उत्तम जाति के बाइसवें पाटल गोत्र में मेरी उत्पत्ति हुई है। पंचऊलीया आते का जो पुत्र है ऐसा कवि रल्हु जिनदत्त चरित की रचना कर रहा है।

अन्तिम छंदों में कवि ने अपने को 'अमई' का पुत्र बताया है कदाचित यहां भी 'आते' के स्थान पर पाठ 'अमई' होना चाहिए। संभवत: अमई—अमि—आते हुआ है।

पंचऊल — पञ्चकुल। कइ — कवि।

[२७]

माता पाइ नमउ जं जोगु, देखालियउ जेहि मतलोगु।
उवरि मास दस रहिउ धराइ, धम्म बुधि हुइ सिरीया माइ॥

अर्थ:—माता के चरणों में यथायोग्य नमस्कार करता हूँ जिसने मुझे मृत्युलोक दिखाया; तथा जिसने अपने उदर में दश मास तक रखा, ऐसी धर्म बुद्धि वाली सिरिया मेरी माता थी अथवा धर्म बुद्धि में मेरी माता सिरिया (श्रीमती—जिसका उल्लेख कथा में हुआ है) के समान हुई।

पाइ — पाद—चरण। मतलोगु — मृत्युलोक। उवर — उदर—पेट।

[२८]

पुणु पुणु पणवउ माता पाइ, जेइ हउ पालिउ करुणा भाइ।
न उवयारण हुइसउ उरणु, हा हा माइ मझु जिण सरणु॥

अर्थ:—मैं बार बार माता के चरणों में नमस्कार करता हूँ जिसने दया भाव से मुझे पाला है। मैं उसके उपकार से उऋण नहीं हो सकूंगा। हे माता मेरे तो जिनेन्द्र भगवान ही शरण हैं।

उवयार — उपकार।

(रचनाकाल)

[२९]

संवत तेरहसैं चउवण्णे, भादव सुदि पंचम गुरु दिण्णे ।
स्वाति नखत्तु चंदु तुलहती, कवइ रल्हु पणवइ सरसुती ॥

अर्थ :—संवत् १३५४ की भाद्रपद शुक्ला पंचमी बृहस्पतिवार को जब चन्द्र स्वाति नक्षत्र में था और तुला राशि थी, कवि रल्ह सरस्वती को नमस्कार करता है ।

तुल – तुला ।

(कथा का प्रारम्भ)

[३०]

लवणोवहि चउपासहि फिरिउ, जंबूदीपु मज्झि विप्फुरिउ ।
दाहिण भरहखेस जिण भणी, वहइ कालु तहि अउसप्पिणी ॥

अर्थ :—लवणोदधि समुद्र जिसके चारों ओर फिरा हुआ है, ऐसे जम्बूद्वीप के मध्य में विस्फुरित दक्षिण दिशा में भरत क्षेत्र है जहां अवसर्पिणी काल चल रहा है ।

लवणोवहि – लवणोदधि । भरहखेत – भरत क्षेत्र । विप्फुरिउ – विस्फुरित । अवसप्पिणी – अवसर्पिणी ।

(मगध देश का वर्णन)

[३१]

सवइण पाउ वरथ जहि ठाउ, मगह देसु तहि कहियउ णाइ ।
पामरि घरंगि अवासहि वही, जणु चइ छूटि सग्ग ते पडी ॥

अर्थ :—जहां पर समस्त वस्तुएँ पाई जाती हैं ऐसे उस देश का नाम मगध कहा जाता है। पामरों (नीच मनुष्यों) की स्त्रियां (उस देश में) महलों पर चढ़ी हुई ऐसी लगती हैं मानों वे छोड़ी आकर स्वर्ग से छूट पड़ी हों।

मगहु — मगध। णाउ — नाम। पामरि — नीच।
अवास — आवास—प्रासाद। चडु — चट्य—त्यक्त—छोड़ा हुआ।
१. सग—मूलपाठ।

[३२]

निसुणहु देसु तणौ ववहारु, घरि घरि सफल अंबसाहारु।
करहि राजु सकुटंबउ लोइ, परतहु दुखी न दीसइ कोइ॥

अर्थ :—अब उस देश का व्यवहार सुनो जहां पर घर घर में फल सहित सहकार आम के वृक्ष थे। लोग सकुटंब राज्य जैसा सुख भोगते थे तथा प्रत्यक्ष में कोई दुखी नहीं दिखाई देता था।

अंब — आम। साहार — सहकार—एक जाति का आम।
परतहु — प्रत्यक्ष।

[३३]

पहिया पंथ न भूले जाहि, केला दाख छुहारी खाहि।
गामि गामि देखें सतूकार, पहियह कूरु देहि अनिवार॥

अर्थ :—जहां पर पथिक मार्ग में भूले नहीं जाते थे तथा केला, दाख, छुहारा खाते थे। जहां पर गांव गांव में सत्तु के भोजनालय थे जो पथिकों को देखते ही अनिवार्य रूप से (सत्तुओं के) कूट (ढेर) खाने के लिये देते थे।

पहिय — पथिक। कूरु — कूट—ढेर। सत्तूकार — सत्तु का आलय—सत्तूघर (सत्तू—भूने हुए यव आदि का चूर्ण जो पानी में सानकर मीठा व नमकीन बना कर खाता जाता है)।

[२४]

गामि गामि वाडी अंबराइ, जइसे पाटण तैसे ठाइ ।
धम्मु विधे णर भोयणु देहि, दाम विसाहि न कोई लेहि ।।

अर्थ :—जहां पर गांव गांव में बगीचे एवं अमराइयां थीं तथा जैसे नगर थे वैसे ही वे स्थान (ग्राम) थे। धर्म-कार्यों में (वहां के) नर (लोग) भोजन (आहारदान) देते थे तथा बेची हुई वस्तु का दाम नहीं लेते थे अथवा दाम देकर कोई वस्तुएँ नहीं लेते थे।

वाडी – वाटिका–बगीचा। अम्बराइ – आम्रराजि–आम की बगीची। भोयणु – भोजन। विसाहि – विसाहिय–विसाधित–बेची हुई वस्तु। पाटण – पत्तन–नगर।

[२५]

गांकरु कूड दंड तहि चरइ, प्रजुणइ सुखि परजा व्यवहरइ ।
चोर न चरडु आंखि देखिये, अरु परणारि जणणि पेखियइ ।।

अर्थ :—जहां जो अपराधी और कूट [दुष्ट] होते थे उनके लिये दंड चलता था और प्रजा अपने व्यवहार [दैनिक जीवन] में सुखी थी। चोर चरट कहीं भी नहीं दिखायी देते थे तथा पर स्त्री माता के समान देखी जाती थी।

गांकरु – अपराधी। कूड – कूट–कुटिल, दुष्ट। चरडु – चरट–लुटेरों का एक प्रकार। पेख – प्र+ईक्ष्–देखना।

[२६]

मगह देसु भीतरि सुहि सारु, वासव सुरह अहिउ सो चारु ।
धण कण कंचण सव्व वियूर, मंदर तुग पिहिय कय सूर ।।

अर्थ :—मगध देश भीतर से भी सुखी और सारवान (संपन्न) था। यह इन्द्र का नाक स्वर्ग था अथवा सुरथ का साकेतपुर था। वह धन धान्य एवं स्वर्ण से पूरित था तथा उसके सूर्य को ढकने वाले ऊंचे मंदिर (पर्वत) के सदृश महल थे।

सुहि – सुखिन–सुखी। सारु – सारवान–संपन्न। सुरह – सुरथ–साकेतपुर का एक राजा। पिहिय – पिहिअ–पिहित–ढका हुआ।

(विभिन्न जातियों के नाम)

वस्तुबंध

[४७]

वणिकु बंभण वइस बासीठ ॥
कालइ भेसा बरुड बंदरा बिबारी बिहारहं ।
खाणु वाह बारी बुरु बहु बिहारछ जीवरखहं ॥
वरु बिहारि वारिठिया सुह बिढह [1]वणियार ।
तह वसंतपुरि रल्ह कइ खहि चउवीस बकार ॥

अर्थ :—वणिक, ब्राह्मण, वैश्य, असीठ, बढ़ई, बेश्या, वरुड, बंदरा, बिबारी, बिहार, खाणु, वाह, बारी, बुरु, बहु, बिहारछ, बरख, बरु, बिहारी, वारिठिया, सुह, बिढह, वणियार रल्ह कवि कहता है कि ये चौबीस प्रकार की बकार के नाम वाली जातियाँ वहां बसंतपुर में रहती थी।

१. खणियार–मूलपाठ।

[४८]

सूर सामीय साहु सोतियहि ।
सरि सरवर सावयहं सब्बल अथिय सारंग साहणा सिऊ ।
सोहा सहियणहं सिरिव संत सहियण समाणहं ॥

सेसए सीमा सत्थवइ, सत्थ सवए सुहसार ।
सुव्वस सील वसंतपुर, इहि चउवीस सकार ॥

अर्थ :—सकार के नाम वाली निम्न चौवीस जातियां बसंतपुर में निवास करती थी :—

सूर, सामी (स्वामी), साहु, सोंतिय (श्रोत्रिय), सोर, सरवर, सावय (श्रावक), सव्वल, सारंग, साहण, सिक, सोहा, सहियरण, सिरि (श्री), संत, सहिगण, समाण, सीमा, सत्थवइ (सार्थपति), सत्थ (सार्थ), सवए, सुहसार (सुखसार), सुव्वस, सील, (शील) ।

[२१]

मोह मह्लर माणु मायाउ ।

मउ मरि मारणु मरविणु, मलिणु मलणु जहि कोवि सीसइं ।
महु मंस ममरासहि उतहि, मंछिदु मउरउण दीसइं ॥

मूड मुसए मंगलु मखल, जहि ण मसइ जल मीणु ।
भरणइ रल्ह सु वसंतपुर, वीस मकार विहीणु ॥

अर्थ :—रल्ह कवि कहता है कि बसंतपुर में, मोह, मत्सर, मान, माया, मद, मरी (एक रोग), मारण, मरविण, मलिण (मालिन्य), मलन (मर्दन), मधु, मांस, मदिरा, मछिन्दु (मछन्द), मउरउण (मुकुट बिना), मूढ, मुसण, मंगल, मखर तथा मीन सहित जल ये बीस मकार नहीं थे ।

नोट :—इस छंद के पाठ में कुछ भूल लगती है चरण २ का 'जहि कोवि सीसइं' चरण ३ के 'मउरउण दीसइं' के साथ आना चाहिए ।

(वसंतपुर नगर वर्णन)

चौपई

[४०]

राज-थाणु किमु करि वण्णियइ, पच्चक्खु सग्गु खंड जाणियइ ।
वसइ वसंतु णयरु सो घणउ, चंदसिहरु राजा तहं तणउ ।।

अर्थ :—राजा के स्थान (राजधानी) का किस प्रकार वर्णन किया जाय ? उसे तो प्रत्यक्ष स्वर्ग का टुकड़ा ही जानो। वह वसंतपुर नगर घना बसा हुआ था और उसका चन्द्रशेखर नाम का राजा था।

थाणु – स्थान । पच्चक्खु – प्रत्यक्ष । सग्गु – स्वर्ग । चंदसिहरु – चन्द्रशेखर ।

[४१]

चंदसेखर राजा के भवण, दिपहिं त माणिक मोती रयण ।
सयलु अंतेउरु रूपनिवासु, बीस बीस सवण्हु अवासु ।।

अर्थ :—चन्द्रशेखर राजा के महल से माणिक मोती एवं रत्न चमकते थे (अथवा, वे महल माणिक, मोती एवं रत्नों से चमकते थे)। उसका समस्त अन्तःपुर रूप का निवास था तथा सबके लिये बीस बीस आवास (महल) थे।

रयण – रत्न । सयलु – सकल, समस्त । अंतेउरु – अन्तःपुर । सवण्हु – सबके लिये–स्वर्ण ।

[४२]

वसहि त सयल लोय सुविचार, करण मइ तिन्हु कियए विहार ।
पर कहु मीचु ण वंछइ कोइ, जीव दया पालइ सब कोइ ।।

अर्थ :—सभी लोग प्रेम से रहते थे। उन्होंने अपने विहार (जिन मन्दिर) स्वर्ण-मय बना लिये थे। वहां दूसरे की मृत्यु की वांछा कोई नहीं करते थे तथा सभी जीव दया का पालन करते थे।

सुपियार – सु+प्रिय+तर–अत्यन्त प्रिय। मीचु – मृत्यु।

[५३]

कोली माली पालहि दया, पटवा जीवकहु ईसहि मया।
पारधी जीव ण घालहि घाउ, दयर धम्मु कउ सबही भाउ॥

अर्थ :—कोली और माली (तक) भी जहां दया धर्म का पालन करते थे। पटवा एवं सपेरा भी दयावान थे। वधिक जीवों पर कोई भी घात नहीं करते थे। (इस प्रकार) सभी का दया धर्म का भाव था।

कोली – कौलिक–सूती वस्त्र बुनने वाले। पटवा – पट+वाय–रेशमी वस्त्र बुनने वाला। जीवक – सपेरा। पारधी – पापर्धि–वधिक।

[५४]

बाभरण खत्री अवरति चर्म, ते सब पालक सरावग धम्मं।
मारण णाइ दियइ कलमली, जिणवरु णर्वहि छत्तीसउ कुली॥

अर्थ :—ब्राह्मण तथा क्षत्रिय चर्म (के प्रयोग) से विरत थे और वे सभी श्रावक धर्म का पालन करते थे। मारने (हिंसा करने) का नाम उनको कष्ट देता था और छत्तीसों जातियां जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करती थी।

अवरति – अवरत–अपरक्त–विरक्त।

(वस्तु बंध)

[४५]

सुवण्णु रंजणु धम्मु गुण वाणि ।

परिवारहं सोहियउ सेइ, दाणु जिणणाहु पुज्जइ ।
सयल जीव करुणा करइ, जीवदेव तहि सेठि छज्जइ ।।

घरणि सुहाइ तासु घरि, जीवंजस सुविसाल ।
दाण कित्ति तिन्हु रल्ह कह, भमिय पुहमि असराल ।।

अर्थ :—वह सभी सवर्णों (उच्च जातियों) का प्रिय था तथा उसकी वाणी धर्म एवं गुणों से युक्त थी। वह अपने परिवार के साथ शोभित था, जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता था तथा दान देता था। सब जीवों पर करुणा (दया) करता था, ऐसा वहां जीवदेव नाम का सेठ शोभित होता था। उसके घर में सुन्दर गृहिणी (धर्म-पत्नी) 'जीवंजसा' नाम की थी जो बहुत सुन्दर थी। 'रल्ह कवि' कहता है कि उनकी दान देने की प्रशंसा सम्पूर्ण पृथ्वी तल पर निरंतर फैल रही थी।

असराल – निरन्तर। सुवण्णु – सवर्ण – उच्च जातियाँ।
सयल – सकल। छज्जइ – शोभित होना। भमिय – फैलना।

[४६]

जणहमु पीडि करावइ बेठि, जीउदेव तहि निवसइ सेठि ।
जीवंजसा नामें तसु घरणि, रूव सुरेख हंस-गइ-गमणि ।।

अर्थ :—दुखित जनों की पीड़ा को दूर कर बैठने (विश्राम लेने) वाला जीवदेव नाम का सेठ वहां रहता था। उसकी स्त्री का नाम जीवंजसा था जो रूपवती, शुभ रेखाओं से मंडित तथा हंस की चाल चलने वाली थी।

[४७]

अइसउ सेठि वसइ तहि नगरी, तिहि समु अयउ न होसइ अवरु ।
धण कण परियणु सयण संकुल, पर घरि नाही एक्कइ पुतु ।।

अर्थ :—ऐसा सेठ उस नगरी में रहता था, उसके समान न तो कोई हुआ और न दूसरा होगा । वह धन-धान्य एवं सब परिजनों से युक्त था केवल उसके घर में पुत्र नहीं था ।

अवरु – अपरु-दूसरा । परियणु – परिजन ।

[४८]

सेठिणी भणइ सेठ णिसुणोहि, पुत्तह विणु कुलु बूड तोहि ।
दाण धरमु संपइ सबु दीज, पुणु ऋष पास जाइ तपु लीज ।।

अर्थ :—सेठानी सेठ से कहने लगी "हे सेठ सुनो बिना पुत्र के तुम्हारा वंश डूब (समाप्त हो) जावेगा । दान, धर्म में सब संपत्ति दे दीजिये तथा फिर ऋषि के पास जाकर तप (व्रत) ले लीजिये ।

पुत्त – पुत्र । संपइ – संपत्ति ।

[४९]

कियउ मंतु परियणु बइसारि, कहइ वयणु सुहयरु ऊसारि ।
पुतह विनु कुल बूडइ मोहि, कि किज्जइ बुह पूछउ तोहि ।।

अर्थ :—अपने परिजनों को बैठाकर उसने मंत्रणा की तथा यह सुखकर वचन (मुख से) निकाल कर कहा—"बिना पुत्र के मेरा कुल डूब रहा है । क्या करना चाहिए, यह हे बुद्धिमानों, मैं आपसे पूछता हूं ।"

मंतु – मंत्र-मंत्रणा । सुहयरु – सुखकर । ऊसारि – उच्चारण कर । बुह – बुह-बुध ।

[५०]

थवइ श्रवण जिणवर वंदियइ, अणु दिणु सेठि अप्पु णिंदियइ ।
परह पसंसु करइ जो भव्वु, देइ दाण मणि परि हरि गव्वु ।।

अर्थ :—वह सेठ श्रमण भगवान का नाम लेने और जिनेन्द्र की वंदना करने लगा तथा प्रतिदिन वह अपनी निन्दा करने लगा। जो भव्य दूसरों की प्रशंसा करता है तथा मन से गर्व को दूर कर दान देता है।

थव – कहना। श्रवण – श्रमण–भगवान। परह–दूसरे की। पसंसु – प्रशंसा।

[५१]

जीवदया जो अह निसि करइ, पंचाणुव्वइ निम्मल धरइ ।
गुणवय तिण्णि सिक्खवय चारि, मुत्ति स्वयंवर आवइ नारि ।।

अर्थ :—जो रात-दिन जीव दया पालन करता है, निर्मल पंचाणुव्रत को धारण करता है, तीन गुणव्रतों और चार शिक्षाव्रतों को (जीवन में उतारता है) मुक्ति-नारी स्वयं आकर उसका वरण करती है।

अह निसि – अहःनिशि। पंचाणुव्वइ – पंचाणुव्रत।[1]
निम्मल – निर्मल। गुणवय – गुणव्रत।[2]
तिण्णि – तीन। सिक्खवय – शिक्षाव्रत।[3]

[1]अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत एवं परिग्रह परिमाणाणुव्रत ये पांच अणुव्रत कहलाते हैं।

[2]दिग्व्रत, देशव्रत एवं अनर्थदण्डव्रत–ये तीन गुणव्रत हैं।

[3]सामयिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण एवं अतिथि संविभाग–ये चार शिक्षाव्रत हैं।

[५२–५४]

तिहि खणि पभइ जीवदो सेठि, हउ आराहउ णिरु परमेठि ।
सयल चराचर जाणइ भेउ, वीयराउ महु जयउ¹ अजेउ ।।

जल चंदण अक्खय वर फुल्ल, चरु दीवइ अछुइ सहय अमुल्ल ।
अगर धूव कारण णिरु लयउ, फल समूह जे जिणवर गयउ ।।

जिणवर बिंबु जोइ मणु तुठ, चिर संचिउ कलिमलु गउ तुठ ।
अठविह पुय करइ ययवंतु, णियमणु भावइ देउ अरहंतु ।।

अर्थ :—उस क्षण जीवदेव सेठ कहने लगा अब मैं निश्चितरूप से परमेष्ठि की आराधना करता हूं (करूंगा) क्योंकि वे ही सकल चराचर का भेद जानते हैं (अतः) मैं उन अजित वीतराग भगवान का जप करता (बोलता) हूं। ।।५२।।

एक थाल में जल, चंदन, अक्षत, उत्तम पुष्प एवं बिना स्पर्श किये हुये अमूल्य (निर्मल) नैवेद्य एवं दीपक उसने लिये तथा अगर धूप (दशांग धूप) और उसी कारण (उद्देश्य) से फलों के समूह को लिया और वह मन्दिर में गया ।।५३।।

जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के दर्शन कर उसका मन पूर्ण संतुष्ट हो गया तथा चिरकाल से संचित पापमल त्रुटित (नष्ट) हो गये। वह भगवान की अष्ट विधि से पूजा करने लगा तथा अपने मनमें अर्हन्त् देव का ध्यान करने लगा ।।५४।।

खणि – खण-क्षण। परमेठि – परमेष्ठि। अक्खय – अक्षत। णिरु – निश्चितरूप से। चरु – नैवेद्य। दीवइ – दीपक। तुठ – त्रुटित–टूटा। भावइ – ध्यावइ – ध्यान करना, चिंतन करना।

१. जयउ–मूलपाठ।

[५५–५६]

सत्थु पुज्जि गुरु पूज्जिउ झत्ति, मुणिवर पाइ पडी तिहु पत्ति ।
मुहु आणोहि सामिय जिणसुत्त, महु होइ इह मुणिवरु भणु पुत्तु ।।

हाथु देखि मुनि बोलइ ताहि, जिण सेठिणि हियडइ विलखाहि ।
लखण बत्तीस कला संजुत्तु, कुल मंडणु तुव होसइ पुत्तु ।।

अर्थ :—शास्त्र की पूजा करके शीघ्र ही उसने गुरु की पूजा की तथा (तदनन्तर) उसकी पत्नी मुनि के पांव पड़ गई। (उसने कहा) हे स्वामी आप जिनसूत्रों (आगमों) को जानने वाले हो। मुझे पुत्र हो, हे मुनिवर, (आप) यह कह (आशीष) दें [अथवा, क्या मुझे पुत्र होगा, हे मुनिवर, आप यह बताएँ] ।।५५।।

हाथ देखकर मुनि उस समय बोले "हे सेठानी हृदय में दुखित मत हो। बत्तीस लक्षणों एवं कला से युक्त एवं कुल की शोभा वाला पुत्र तुम्हारे होगा ।।५६।।

सत्थु – शास्त्र। पत्ति – पत्ती–पत्नी–भार्या। झत्ति – झटिति–झट–शीघ्र।

[५७–५८]

सेठिणि सगुणु गाठि बांधियउ, णिय घर जाइ महोछउ कीयउ ।
भाँसिउ मुणिवरु कहिउ गुणंगु, तूठी सेठिणि माइ ण अंग ।।

पुणु अल्हाही बोलइ सोय, रिसि भासियउ न फूठिउ होय ।
णिरु आणंदिउ बोलइ साहु, पिय होसइ मणु चिंति उछाहु ।।

अर्थ :—सेठानी ने उस शकुन (शुभ सूचना) की गांठ बांध ली और अपने घर जाकर महोत्सव किया। गुणों के धारी मुनिवर ने मुझ से (इस प्रकार) कहा है "इससे प्रसन्न सेठानी अपने अंगों में समा नहीं रही थी ।।५७।।

फिर प्रसन्न होकर कहने लगी "ऋषि का कहा हुआ कभी झूठा नहीं होता है। सेठ भी निश्चित रूप से आनन्दित होकर बोला-प्रिय (अच्छा हो) होगा ऐसा मनमें सोचकर उछाह करो। ।।५८।।

णिय – निज। महोछउ – महोत्सव। मोसिउ – मुझसे। णिरु – निश्चित रूप से। पिव – पितृ–पिता–प्रिय।

[५९–६०]

(पुत्र जन्म)

राजु करत दिन केते गये, सेठिणि गब्भु मास दुइ भए।
आइ भए पूरे दस मास, पुत्तु जम्मु भौ पूरिय आस।।

जीवदेउ धरि मंगलु भयउ, घर घर कुटंब बधाऊ गयउ।
गावहिं गीतु नाइका सउकु, चउरो पूरिउ मोतिन्ह चउकु।।

अर्थ:—राज करते हुये (सुख भोगते हुये) कितने ही दिन बीत गये। कालान्तर में सेठाणी को गर्भ रहा जो दो मास का हो गया फिर दस मास पूरे हो गये। पुत्र का जन्म हुआ और सबकी आशा पूरी हुई ।।५९।।

जीवदेव के घर जब पुत्र उत्पन्न हुआ तो उसके कुटुम्बियों द्वारा घर-घर में बधावा भाया गया। स्त्रियां उत्साहपूर्वक गीत गाने लगी तथा उन्होंने मोतियों के चौक पूरे ।।६०।।

गब्भु – गर्भ। नाइका – नायिका–स्त्री। सउकु – स+उत्क–उत्साहपूर्वक।

[६१–६२]

देहि तंबोल त फोफल पारा, दीसै चीर पटोले पारा।
पुत्त बधाए नाहरे फोरि, दीने सेठि दाम दुइ कोडि।।

वाढइ पुत्तु कला जिमु चंद, जाइ विहार कियउ आणंद ।
जिणवरु पूज मुणिहु पयी पडइ, रिषि जिनदत्त नाउ तिस धरइ ।।

अर्थ:—सेठ ताम्बूल, सुपारी तथा पान (बीड़े) देने लगा। उसने सूती एवं रेशमी वस्त्र दान में दिये। पुत्र (जन्म) के बधावे में कोई खोरि (कसर-कमी) नहीं रखी। सेठ ने दो करोड़ द्राम (मुद्रा) दान में दिये ।।६१।।

चन्द्रमा की कला के समान पुत्र बढ़ने लगा तथा जिन मन्दिर जाकर उसने आनन्दोत्सव मनाया। जिनेन्द्र भगवान की पूजा करके वह मुनि के चरणों में पड़ा तथा ऋषि (मुनि) ने उसका नाम जिनदत्त रखा।

फोफल – पुगफल–सुपारी। पटोल – पट्टफूल–रेशमी वस्त्र।

[६३–६४]

बरष दिवस वाढइ जे तवउ, दिन दिन बिरध करइ ते तडउ ।
बरष पंच दस को सो उछाहु, विज्जा पढण उवझाउरि जाइ ।।

ओंकारु लयउ मणु जाणि, लखणु छंदु तवक परिवाणि ।
मुणि व्याकरण विरंति कउ जाणु, भरहु रमायणु महापुराणु ।।

अर्थ:—वर्ष और दिन ज्यों-ज्यों व्यतीत होने लगे वे उसमें उतनी ही वृद्धि लाने लगे। जब उसकी १५ वर्ष की अवस्था हुई तो विद्या पढ़ने के लिये वह उपाध्याय कुल (विद्यालय) जाने लगा।

सर्व प्रथम उसने 'ओंकार' शब्द को मनमें जाना। फिर लक्षण शास्त्र, छंद शास्त्र तथा तर्क शास्त्र को प्रमाणित किया (पढ़ा)। व्याकरण जानकर वैराग्य का विषय उसने जाना और इस प्रकार भरत (नाट्य शास्त्र) रामायण तथा महापुराण का (ज्ञान प्राप्त किया)।

उंछाह – उच्छ्राय–ऊँचाई, अवस्था। विज्जा – विद्या।

उवझाउरि — उपाध्याय कुल-विद्यालय। लक्खणु — लक्षण। तक्क — तर्क। मुणु — जानना। विरति — वैराग्य-अध्यात्म।

[६५-६६-६७]

सिखत पढ़त सीखिउ अणवरातु, जोतिसु तंत मंतु सब सारु।
छुरी सयलु अरु खंडागरु, सीखी सयलु कला बहत्तरु॥

भउ जुवाणु मइ सुद्धि सहाउ, लजालु वउ धम्मु कउ भाउ।
सीलवंत कुल मज्जादि जिया, विसयह उपरि भाव न धरइ॥

देखिउ पूत तणउ विवहारु, भणइ सेठि कुलु बूडण हारु।
पूत विषय मनु लग्गु ण तोहि, कैसैं वंस विद्धि हुई मोहि॥

अर्थ :—निरन्तर पढ़ कर ज्योतिष, तंत्र शास्त्र और मंत्र का सब सार सीख लिया। सभी प्रकार से छुरी और तलवार चलाना (आदि) सभी ७२ कलायें उसने सीख ली ॥६५॥

वह युवा हुआ किन्तु वह स्वभाव से शुद्ध मति का था, इस अवस्था में भी वह लज्जाशील था तथा उसे धर्म का भाव था। वह शीलवंत कुल की मर्यादा के भीतर आचरण करने वाला था तथा विषयों पर ध्यान नहीं देता था ॥६६॥

पुत्र का (ऐसा) व्यवहार देखकर सेठ कहने लगा "(मेरा) कुल (इसके कारण) डूबने वाला है। (पुत्र से, उसने कहा,) हे पुत्र तुम्हारा मन विषयों में लग नहीं रहा है, अतः मेरे वंश की वृद्धि कैसे होगी" ॥६७॥

अणवरातु — निरंतर। तंत — तंत्र। मंतु — मंत्र। — खंडागरु— तलवार।

जुवाणु — युवा। मइ — मति। लजालु — लज्जाशील। वउ — वपुष्-शरीर अवस्था। वंसविद्धि — वंश वृद्धि।

[६८]

(वस्तु बंध)

कवडु जिणि कै वसइ णिय चित्ति ।
जगु ज हुडहि आरडहिं, गांठि मुठि तकंते जोवहिं ।
जुवारिउ लज्ज विणु, विसय भत्त न विरत्ति सोवहिं ।।

जिन्ह परद्दव्वहं मनु ठविणु, अरु वंछहि परनारि ।
तिन्हु हक्कारि वि सेठि निरु, कहिय वत्त बय सारि ।।

अर्थ :—जिनके चित्त में नित्य कपट बसता है, तथा जो दुनियां को गाली देते हैं (बुरा भला कहते) तथा शोरगुल मचाते हैं, तथा जो (दूसरों की) गांठ और मुट्ठी ताकते हुये देखते रहते हैं। जुआरी जन जो निर्लज्ज होकर विषयों के भक्त होते हैं और जिन्हें वैराग्य अच्छा नहीं लगता है जिनका मन सदैव दूसरों के द्रव्य में स्थित रहता है तथा जो दूसरों की स्त्री की वांछा करते रहते हैं ऐसे व्यक्तियों को सेठ ने बुलाने एवं बैठाकर (अपनी) बात करने का निश्चय किया।

कवड – कपट। हड ∠ हंड ∠ भण्ड – बुरा कहना, गाली देना। आरड् ∠ आ+रट् – चिल्लाना, शोर करना। हक्कारि – बुलाना। भत्त ∠ भक्त। निरु – निश्चित रूप से। विरत्ति – वैराग्य।

[६९—७०]

तवहिं सेठि मंतु परिठविउ, जुवारीन्हकुं हक्कारउ गयउ ।
मउ भट जो न करहिं बहु काए, ते सहु सेठि बुलाए जाए ।।

बार बार वेसा घरि जाहिं, अरु जूवा खेलत न अघाहिं ।
चोरी करत न आलसु करइ, गांठ काटि अंतरालइ धरइ ।।

अर्थ :—तब सेठ ने मंत्र (विचार) परिस्थापित (निर्धारित) करने हेतु जुवारियों को बुलाया। नट तथा भट जो बहुत कानि (लज्जा) नहीं करते थे उन सबको भी सेठ ने जान बूझकर बुलाया ॥६९॥

जो बार बार वेश्या के घर जाते थे तथा जुआ खेलते हुये तृप्त नहीं होते थे, जो चोरी करने में आलस्य नहीं करते तथा (दूसरों की) गांठ काट करके अपने घर के भीतर धरते थे ॥७०॥

[७१—७२]

जिनु के वत्थ गइय तिण्हु दिठि, सो जणु कियउ आपुणी मुठि।
गंजणु कूड़ु मारि जिणु सही, तिण्ह सहु सेठि बात सहु कही ॥

अहो वीर तुम्ह एसउ करहु, बूडिउ कुल मेरउ उद्धरहु।
जो जिणदत्त विषय मनु लावै, निश्चय लाख दामु सो पावै ॥

अर्थ :—जिनकी दूसरों के धन पर दृष्टि जाती थी उनको उसने अपनी मुट्ठी में कर लिया। जिनका कार्य तिरस्कार करना (कपट करना) एवं मारना (इस प्रकार का) सभी कुछ था, उनसे भी सेठ ने वे सभी बातें कहीं ॥७१॥

"अरे वीरो तुम इस तरह करो कि मेरे डूबे हुए वंश को उबार लो। जो जिनदत्त का मन विषयों की ओर लगा देगा, वह निश्चित रूप से एक लाख दाम पावेगा ॥७२॥

गंजण ∠ गञ्जन — अपमान, तिरस्कार।
दाम ∠ द्रम्म — एक सोने का सिक्का।

[७३—७४]

जुवारिउ हंसि बोलइ बोलु, तुम्हि तौ धरिउ हमारौ तोलु।
जइयहु रमइ नयर मर नारि, तउ तुम पाछैं लकहु सवारि ॥

राजा सेठि सु जंपइ ताहि, मइ समु ललियउ अउर न आहि ।
मइ लीला रसु वंछइ जाहि, तउ हमु उत्तरु दीबउ ताहि ।।

अर्थ :—जुआरियों ने हँस करके यह बात कही "तुम ने तो हमको टटोल लिया (हमारा मूल्य आंक लिया)। यदि वह (जिनदत्त) नगर–नारियों (वेश्याओं) के साथ रमने लगे, तो (उसके) पीछे तुम उसे (अपने लक्ष्य के अनुसार) ठीक कर सकोगे ?"

राज–सेठ ने उनसे कहा कि मेरे समान लज्जित दूसरा कोई नहीं है इससे अधिक क्या कहूँ। वह जिनदत्त लीला रस (भोग विलास) में जब इच्छा करने लगे, तब हमें उसका उत्तर देना (विवाहादि के विषय में उसके विचार बताना)।

जइ ∠ यदि । नयर ∠ नगर ।
ललियउ ∠ व्रीडित – लज्जित, शरमिन्दा ।

[७५–७६]

चले वीर जिणदत्त हकारि, नवजोवरणी दिखालहि नारि ।
कवरणइ वीर अवर मनु लाव, पुणु वलहि नु एक्कइ भाव ।।

कवरणइ वीर जुवा रस रमइ, कवरणइ लेइ वेसा घरि वसइ ।
लइ ठावउ पुणु तिय महि कियउ, तोवि ए तासु वेधियउ हियउ ।।

अर्थ :—वे वीर जिनदत्त को बुला कर ले चले तथा उन्होंने नव युवतियों को दिखलाया। किसी वीर ने उसका मन किसी अन्य प्रसंग में लगाया लेकिन जिनदत्त का मन एक में भी नहीं लगा ।।७५।।

कोई वीर उसे जुए के रस में रमाने लगा तथा कोई उसे वेश्या के घर में ले जाकर रहने लगा। किसी ने उसे ले जाकर स्त्रियों के बीच में खड़ा कर दिया, तब भी उसका हृदय (उनसे) विह्वल न हुआ।

हकारि ∠ आ+कारय् – बुलाना ।
वेसा ∠ वेश्या । थक्का ∠ थक्क – अवसर, प्रस्ताव-समय ।

[77–78]

एत्थंतरि ते कहा कराहि, णंदण वण चैत्यालइ जाहि ।
बइसि वीयन्ह वंदण ठई, उह की दिठि सिलाडेहि गई ॥

दीठी पाहुणमय पूतली, गय जिणदत्त दिठि भिभली ।
बहु लाखण्ण गढी सुतधारि, भूले देखि अचेयण नारि ॥

अर्थ :—इसके पश्चात वे क्या करते हैं कि नंदन वन के चैत्यालयों में जाते हैं । वहां पर बैठकर उन वीरों ने भगवान की वंदना की । इसके पश्चात् उसकी दृष्टि (चैत्यालय) के ललाट पर गई ।

जब एक पाषाणमय (पाषाण निर्मित) पुतली दिखाई पड़ी तो जिनदत्त की विह्वल दृष्टि उस पर जा लगी । वह सूत्रधार (शिल्पकार) के द्वारा अति सुन्दर गढ़ी गई थी । उस अचेतन स्त्री (पुतली) को देखकर वह जिनदत्त अपने आप को भूल गया ।

एत्थतरि : इत्थंतर – इसके बाद । दिठि ∠ दृष्टि ।
पाहुणमय – पाषाणमय । गय – गत ।

[79–80]

भूलिवि पडिउ ताहि मुख देखि, इह परि आहि रूप की रेख ।
काम बाण तसु बेधिउ हियउ, धार तुषारिन्हु मंचलु कउ लयउ ॥

बाहुरि वीर ति देखहि आइ, सइ जिणदत्त उछंग चडाइ ।
देखि पूतली विभिउ एहु, सेठिणि भणिउ बधाउ देहु ॥

अर्थ :—उसका मुख देखकर वह अपने आपको भूल गया और कहने लगा हो न हो यह रूप की सीमा है। उसके हृदय को जब मदन बाण ने बींध दिया तो उसने दौड़ कर जुवारियों का आंचल पकड़ लिया।

उन वीरों ने उसे बाहर आकर देखा और जिनदत्त को गोद में उठा लिया। "पुतली को देखकर वह विस्मित हो गया है इसलिये सेठानी से कह कर बधावा दें" ॥८०॥

उछंग — उत्संग—गोद।

[८१]

तंखरा वीर पहूते तहा, निय मंदिरह् सेठि हो जहा।
कुवरह लखरा परखि किन लेहु, हम कहु सेठि बधाऊ देहु ॥

अर्थ —उसी क्षण वे वीर वहां पहुंचे जहाँ सेठ अपने मन्दिर में था। (उन्होंने कहा) हे सेठ, कुमार के लक्षणों को क्यों न परख लो? हमको भी हे सेठ, (अब) बधाई (पुरस्कार) दो।

तंखिरा ✓ तत्क्षरा।

[८२—८३]

तबहि सेठि तूठउ सतभाउ, लाख दामु तिन्ह दियउ पसाउ।
दइ तंबोल घरह् पठाइ, अंग दाहु जिरणदत्त, भरगाइ ॥

रिगसुरिग पुत्तु तुहि कहउ विचारि पुतली रूपमा जाराहि नारि।
जइ र विवाहहि रूपहि रासि, अवसि मरउ सौहि घरि वासि ॥

अर्थ :—यह सुनकर सेठ बहुत सन्तुष्ट हुआ और प्रसन्न होकर लाख दाम उन्हें पुरस्कार-स्वरूप दिये। उन्हें (तदनन्तर) पान देकर घर विदा किया और अपने शरीर के दाह (चिन्ता) को जिनदत्त से कहा ॥८२॥

"हे पुत्र, सुनो। मैं तुम्हें विचार कर कहता हूं। जिस नारी को तुम पुतली के रूप में जानते हो, यदि वह रूप की राशि विद्याधरी भी हो, तो ऐसी स्त्री को तुम्हारे घर में दासी के रूप में लाऊंगा ॥८३॥

तंबोल ∠ ताम्बूल—पान। विजाहरि ∠ विद्याधरी।

[८४–८५]

सुत्तधारि सद्दयउ हकराइ, किसुं कइ रूप घरी तैं नारि।
कहिहि देसु मइ वहियउ म्हाइ, कर कंकरण तुम देउ पसाउ ॥
निसुरणहि सेठि कहउ फुड तोहि, बारह बरस भमत भये मोहि।
फिरत देस महु चित्त पइठु, नयरी एक भली मइ दिठु ॥

अर्थ :—उसने सूत्रधार को बुलवा लिया और उससे पूछा "तूने किस स्त्री के रूप को यह (पुतली) गढ़ी है? उसका देश मुझसे कहो, मैं व्यथित हूं। मैं तुम्हें प्रसाद के रूप में कर कंकरण दूंगा।

(यह सुनकर वह कहने लगा) "हे सेठ, सुनो, मैं तुमसे स्पष्ट कहता हूँ कि जब मुझे बारह वर्ष देशों में फिरते हुए हो गए। देशों में भटकते हुए मैंने ऐसी एक भली नगरी देखी और वह मेरे हृदय में प्रविष्ट हो गयी"।

वहिय — व्यथित। फुड — स्फुट—स्पष्ट।

[८६–८७]

चंपापुरी नयरी सा भरणी, धरण करण कंचरण सोहइ घरणी।
खंड दंड एक सोवन घडी, मंदिर दिपहि पदारथ जडी ॥
घरि घरि कूवा वाइ विहार, कंचरण मइ जिन कीए पगार।
उत्तम लोक वसहि सा भरी, जणु कइलास इंद की पुरी ॥

अर्थ :—वह चंपापुरी नगरी कहलाती थी जो धन-धान्य एवं कंचन से

खूब सुशोभित थी, जहां एक स्वर्ण-निर्मित अण्ड दण्ड नाम की गद्दी है तथा रत्नों से जड़े हुए महल दीप्त रहते हैं ॥८६॥

जहाँ घर घर में कुवा, बावड़ी एवं विहार बगीचा है जिनके प्राकार स्वर्ण के बने हैं। उत्तम लोग उसमें भरे रहते हैं और (वह ऐसी लगती है) मानों इन्द्र की पुरी कैलाश हो ॥८७॥

वाइ – वापी–बावड़ी।

[८८–८६]

वंदियणि जणु के हु देहि पु राउ, नीतवंतु गुणपाल सु राउ।
सयल सरुव अंतेउर नारि, करहि राजु ते नयर मझारि ॥
विमल सेठ विमला सेठिणी, तहि कीरति महि मंडल घणी।
विमलामती नंदनि सा किसी, रूप विसेषइ जिह उरवसी ॥

अर्थ :—वंदी जनों को जो [अपनी कीर्ति से] उत्साह प्रदान करता है उस नगरी का [चम्पापुरी का] राजा गुणपाल है जो नीतिवान है। उसके अन्तःपुर की समस्त स्त्रियां रूपवती हैं ऐसा राजा नगर में राज्य करता है ॥८८॥

उसी नगर में विमल सेठ और विमला सेठानी है जिनकी कीर्त्ति मही मण्डल में घनी है। विमलामती नाम की उनके जो लड़की है वह मानों रूप की विशेषता में उर्वशी है।

नीव – नीति।

[६०]

वस्तु बंध

सोजि सुंदरी रायंस पुत्तार।
मंतिय हंस गइ कोलमाण सरवरु बंइठी।
खेलंती जल पयड रूवरासि मइ दिठिन ॥

सहिय समारिणय तहो भरिणय इम जंपइ सुत्तधारो ।
तासु रूव गुण वण्णियउ कइ रल्ह सुविचार ।।

अर्थ :—इस सुन्दरी नयनाभिराम [आंखों की पुतली के समान] हंस गति लिये हुई, क्रीड़ा करती हुई, सरोवर [के तट] पर बैठी हुई और जल से खेलती हुई, प्रकट रूप राशि को मैंने देखा। उसकी सखियां और समवयस्काएँ भी उसके अनुरूप थी, ऐसा सूत्रधार ने कहा। "[तदन्तर] रल्ह कवि कहता है कि वह विचार करके उसके रूप और गुण का वर्णन करने लगा।

णयणपुत्तार – आंख की पुतली। कीलमरण – क्रीडमाण। पयड – प्रकट। सहिय – सखिन्। समारिणय – समान+इक–समवयस्का।

[९१–९२]

सुंदडिय सहु कसु सोहइ पाउ, चालत हंसु [1] देउ तसु भाउ ।
जाणू थाणु तिहिलहि घणी, तहि ऊपरि नेउर वाजणी ।।
सबई वण्णु सोहइ पिंडरी, जणु छहि ते कुंथु पिंडरी ।
जंघ जुयल कदली ऊपरइ, तासु लंक [2] मूठिहि माइयइ ।।

अर्थ :—छल्लों से युक्त उसके पैर सुशोभित थे। उसकी चाल हंस की चाल का भाव प्रगट करती थी। घुटनों के नीचे के स्थान टिकोणे बहुत घने थे और उन पर बजने वाली नेवरियां थी।

उसकी पिण्डलियों में सभी वर्ण शोभित थे, मानों वे कुंथु (मनुष्य विशेष) की पिण्डलियां हों। उनके ऊपर कदली के (तने के) समान उसकी युगल जांघें थीं और उसकी कटि मुट्ठी में समा (आ) जावे ऐसी क्षीण थी।

कुंथु – एक पौराणिक राजा, मनुष्य विशेष।

१. हंसु – मूलपाठ। २. लोक – मूलपाठ।

[९३–९४]

जणु हुइ छत्ति अणंगहु तणी, सहइ जु रंग रेह तहि घणी ।
नीले चिहुर स उज्जल काल, अवरु सुहाइ दीसहि काल ।।
चंपावण्णी सोहइ देह, गल कंदलह तिण्णि जसु रेह ।
पीणत्थणि जोव्वण मयसार, उर पोटी कडियल वित्थार ।।

अर्थ :—वह (कटि) मानो कामदेव का छत्र थी और समग्र रंग तथा घनी रेखाएँ उसमें थीं । उज्वल एवं नील वर्ण की रोमावलि थी जो अत्यन्त सुन्दर एवं सुशोभित थी ।

उसका चंपा पुष्प के रंग का शरीर शोभित हो रहा था उसके उदर में तीन रेखाएँ पड़ती थीं । वह पीन (उन्नत) स्तनों वाली थी तथा (उसके स्तन) यौवन-मद से युक्त थे । उसके उदर की पेशियाँ कटिस्थल तक फैली हुयी थी ।

चिहुर ∠ चिकुर – केश – रोमावलि । पोटी ∠ पोट्टि – उदर पेशी ।

[९५–९६]

हाथ सरिस सोहहि आगुली, णह सु त दिपहि कुंद की कली ।
भुव बल जंतु काटि जणु ठाणें, वण्णि सु रेख कविन्हु ते कहे ।।
इलोणी अरु माठी लीय, हय सु पट्टिया सोहय गीव ।
कारिण कुंडल इकु सोवनु मणी, नाक थाणु जणु सुवा तणी ।।

अर्थ :—हाथों के समान ही उसकी अंगुलियाँ सुशोभित थी । उनके नख कुंद–कलिकाओं के समान चमकते थे । उसकी बलशाली भुजाएँ थीं जो मानो (सिंह जैसे) उस स्थान पर जंतु को काटकर लगाई हों । ऐसा उसकी सुन्दर रेखाओं का वर्णन कवियों ने किया है ।।९५।।

लावण्यपूर्ण और माठित (सुडौल) वह बालिका थी और एक हलकी पट्टि उसकी ग्रीवा में थी। कानों में स्वर्ण के एक-एक कुण्डल थे। तथा नाक मानों सुए (तोते) की जैसी थी।

माठी — माठित—र्दमित। छोत्र — बालक, बालिका।

[९७—९८]

मुह मंडलु जोवइ ससि वयणु, दीह चखु नावइ मियणयणि।
जहि के हो वप चाले किरण, जणु रि दसणी हीरा मणि खिरण॥
भउह ममण धणु खंचिय धरी, दिपइ लिलाट तिलक कंचुरी।
सिरह मांग [1] मोतिय भरि चलइ, अवरु पीठ तलि विणी रुलई॥

अर्थ :—चन्द्रमा के वदन के समान उसका मुख मण्डल दीखता था। वह मृग नयनी अपने दीर्घ नेत्रों को नीचे किये हुए थी। उसके शरीर से किसी न किसी प्रकार की किरणें (दीप्ति) निकलती रहती थी। उसके दांत हीरामणि की कांति के समान थे।

उसकी भौंहें ऐसी थी मानो कामदेव ने धनुष चढ़ा रखा हो। उसके ललाट का तिलक तथा हार (?) चमक रहे थे। सिर की मांग में मोतियों को भरकर वह चल रही थी और उसकी पीठ के नीचे तक वेणी हिल रही थी।"

कंचुरी — कंचुली—हार।

[९९—१००]

नाद विनोद कथा आगली, पहिरी [2] रयण जडी कंचुली।
इकु तहि अस्थि देह की किरणी, [3] अवर रलह पहिरइ आभरण॥
जिसु तणु बाहइ दिठि पसारि, काम बाण तसु घालइ मारि।
तिह को रूपु न वण्णइ जाइ, देखि सरीर मयणु अकुलाइ॥

१. मोग—मूलपाठ। २ मूलपाठ — पटि। ३ मूलपाठ — किरणि।

अर्थ :—"वह संगीत विनोद एवं कला में बढ़ी-चढ़ी थी तथा उसने रत्न-जटित कंचुकी पहिन रखी थी; एक तो उसके शरीर की ही किरणें थीं, फिर रल्ह कवि कहता है उसने (ऊपर से) आभूषण पहिन रखे थे ॥९९॥

जिसको भी वह एक बार दृष्टि फैला कर देखती थी उसे वह काम के बाणों से मार डालती थी। उसके रूप-सौन्दर्य का वर्णन नहीं किया जा सकता है; (क्योंकि) उसके शरीर को देखकर स्वयं कामदेव भी आकुल हो उठता था।

[१०१-१०२]

माल्हंती विलासगइ चलइ, दरसन देखि कुमुणिवर ढलइ ।
अइसी विमलमइ गुण आगली, धम्म बुधि सो भइ साभली ॥
हंस गमणि सा पदमणि आणि, सरवर दिठि सखी सिहु न्हाति ।
रूप देखि सुर विंभउ करइ, नरसुर लोइ सयलु पटतरइ[1] ॥

अर्थ :—वह लीलापूर्वक एवं विलास गति से चलती थी और उसका दर्शन (रूप) देखकर कुमुनि पिघल जाते थे। इस प्रकार की वह गुणों में बढ़ी-चढ़ी विमलमती (नाम की) थी जिसकी भली बुद्धि धर्म की ओर थी ॥१०१॥

वह हंस की सी चाल चलने वाली मानों पद्मिनी थी और वह अपनी सखियों के साथ नहाते हुये सरोवर में दिखाई पड़ी। उसका रूप देखकर देवता भी विस्मय (आश्चर्य) करते थे और समस्त लोग नरलोक एवं सुरलोक में (उससे) तुलना करते थे ॥१०२॥

[१०३-१०४]

सुखधार कछ भयउ पसाउ, दीन्यौं लाख दाम कौ डाउ ।
पाट पटोले दीने आण, दिढ मंनु किउ चित्तु परवाणि ॥

१. पटतरे – मूलपाठ ।

चित्तकार तहु लइयउ बुलाइ, पूत रूपु पडि लिखु निकुताइ ।
लिखलहू कहिउ सरीरह ठवणु, भणइ सेठि लइ आइ हे कवणु ।।

अर्थ :—उस सूत्रधार को सेठ ने प्रसाद (पारितोषिक) दिया, एवं एक लाख द्रव्य का उसने ढाउ (उपहार) दिया, उसे उस ज्ञानी ने रेशमी कपड़े दिये तथा अपने चित्त को प्रमाण (स्थिर) करके उसने (एक) दृढ़ विचार किया।

उसी समय उसने चित्रकार को बुलाया (तथा कहा)—मेरे पुत्र के रूप का चित्र बिना किसी कुताही (कमी-कसर) के लिखो। जब (चित्रकार ने) कहा कि शरीर का उसने चित्र उतार लिया है, तब सेठ (अपने स्वजनों से) कहने लगा "इसे कौन ले जावेगा।"

दाम – द्रव्य, एक सोने का सिक्का। पाट – पट्ट–रेशम। पटोल – पट्टकूल–रेशमी वस्त्र। ठवण – स्थापना–चित्र, प्रतिकृति।

[१०५–१०६]

विप्पु एक कउ आइसु भयउ, सो पडु लइ चंपापुरि गयउ ।
भेटिउ विमलमती सा बाल, देइ आसीस पडु छोडि दिखाल ।।
विमलमती पडु दीठउ जाम, गय बिहलंघल सधर पडि ताम ।
हार डोर जसु सोहहि अंग, चंदन सिंचि लई उछंग ।।

अर्थ:—एक विप्र को आज्ञा हुई; वह पट (चित्र) लेकर चंपापुरी गया। उस बाला विमलमती से उसने भेंट की तथा आशीर्वाद देकर चित्रपट को खोल कर उसने दिखलाया।

विमलमती ने जब चित्रपट देखा तो वह विह्वलाङ्ग होकर धरा पर गिर पड़ी। उसके शरीर में हार व माला सुशोभित हो रहे थे। उसे चंदन से सींच कर सचेत कराया गया।

पड – पट–चित्रपट। बिहलंघल –विह्वलाङ्ग–व्याकुल शरीर वाली।

[१०७–१०८]

कि यहु ब्रह्मा कि यहु विष्णु, कि यहु संकरु कि महुमहणु ।
कि यहु रूव मयण की खानि, किसु की कला चरी तइ आणि ॥
निसुनहि सेठि कहउ हउ विचरु, कहियइ सो वसंतपुर नयरु ।
वसइ जीवदेउ कुटुंब संजुत्त, तिहि जिणदत्त मनोहरु पुत्तु ॥

अर्थ :—(जब सेठ ने यह चित्र देखा तो उसने कहा) "क्या यह ब्रह्मा है अथवा यह विष्णु है ? अथवा शंकर है अथवा मधुसूदन कृष्ण है अथवा यह रूप एवं काम (लावण्य) की खान है ? यह किसकी कला है जिसे हे दूत ! तू ले आया है ? ॥१०७॥

उस ब्राह्मण ने कहा, "हे सेठ सुनो मैं तुमसे विवरण के साथ कहता हूं; उसे वसंतपुर नगर कहते हैं । उस नगर में जीवदेव सेठ सकुटुम्ब रहता है, उसका यह सुन्दर पुत्र जिनदत्त है ।" ॥१०८॥

महुमहणु – मधुमथन–विष्णु, उपेन्द्र । रूव – रूप । तइ – तत्र, तदा–वहां, उस समय । चरी – चरीय–चरक–चर, दूत ।

[१०९–१११]

इहां हो तउ गयउ सुतधार, जाइ कही विमलामति नारि ।
तसहि बुलाइ सेठि मंतु[1] कीय, पट्टय चरण तुहारी धीय ॥
णिय परियणु सवु लइ हकारि, पूछइ सेठि मंतु वइसारि ।
परियणु भणइ विमल अस कीज, विमलमति जिणदत्तहि दीज ॥
अहो कुटंब तुम्ह नीकउ कियउ, इसचर बोल हम विगसइ हियउ ।
धीय रूवडी कहा सो कीज, सा पर अवस सजण घरि दीज ॥

अर्थ :—(पुनः उसने कहा) "जब यहां से होकर सूत्रधार गया था,

१. मनु–मूलपाठ ।

उसने विमलमती नारी की बात (बसंतपुर) जाकर कही थी। तब सेठ ने (सेठानी को) बुला कर मंत्रणा की कि तुम्हारी लड़की को वरण करने के लिये वे (मुझे) भेजें ॥१०९॥

यह सुनकर सेठ ने अपने परिजनों को बुला लिया और उन्हें बिठाकर उसने मंत्रणा पूछी। परिजनों ने कहा "हे विमल, ऐसा (ही) करो; विमलमती को जिनदत्त को दे दो ॥११०॥

सेठ ने कहा, "हे कुटुम्बियों, तुमने अच्छा किया, तुम्हारे इस श्रेष्ठ वचन से हमारा हृदय विकसित हो रहा है। दुहिता रूपवती हो तो क्या किया जाय? हो न हो उसे अवश्य किसी सज्जन के घर दे दिया जाए" ॥१११॥

[११२–११३]

चवइ सेठि सुव देण्ण सभाइ, नीकौ लगनु विवाहहु आइ।
धीय रूप पुणु पट्ट लिहाइ, कापरु पहिरि विप्पु घर जाइ ॥
विप्पहि जाइ भेटियउ साहु, सेठि जीवदेउ हरसिउ चाहु।
तुमह काजु हम कियउ जु बहुत्त, धण्ण सुलखणु तुहारउ पूतु ॥

अर्थ :—तब सेठ (प्रस्ताव स्वीकार करते हुये) दैन्य स्वभाव से कहने लगा "अच्छी लगन में आकर ब्याह करनो।" फिर (उसकी) लड़की का रूप एक पट्ट पर लिखा कर और कपड़े पहन कर वह ब्राह्मण (वापस) घर गया ॥११२॥

(घर) जाकर ब्राह्मण ने सेठ से भेंट की। सेठ जीवदेव उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। ब्राह्मण ने कहा "मैंने तुम्हारा कार्य बहुत (प्रकार से) किया। तुम्हारा सुलक्षण पुत्र धन्य है ॥११३॥

देण्ण /_ दइण्ण — दैन्य।

विवाह वर्णन

[११४-११५]

तबहि सेठि चितियउ तुरंतु, चित्त महिल्लादिउ पूछइ संतु ।
आवत जात न लागो वार, तिन्हु के खेमु कुसल परिवार ।।
तिन्हु कहु खेमु कुसलु सबु काहु, अरु आये हमु रोपि विवाहु ।।
बाभणु भणइ बेणि करि जोडि, अवरु लिखतु किन देखहु छोरि ।।

अर्थ :—तब सेठ ने (उसे) शीघ्र देखा और मन में प्रसन्न होकर शांत भाव से पूछने लगा, "तुम्हें आने जाने में कोई देर नहीं लगी । क्या उनके परिवार में कुशल क्षेम है" ? ।।११४।।

"उनके यहां सब किसी की कुशल क्षेम है और मैं विवाह निश्चित कर आया हूँ ।" यह कह कर ब्राह्मण ने दोनों हाथ जोड़े और कहने लगा "इसके अतिरिक्त (जो कुछ ऊपर का समाचार है वह) इस लेख को खोल कर क्यों नहीं देखते हो ? ।।११५।।

[११६-११७]

तउ जिणदत्तह लइय हकारि, पूछइ सेठि बात बइसारि ।
निसुणि पूत हउ अक्खउ तोहि, इकु लिख लेख वाचि किन मोहि ।।
भगति जुहारु कुटंब कुसलात, अरु लइ लिखी लगुण की बात ।
अति रूवडी नयण सुतारि, दीठी लिखी विमलमति नारि ।।

अर्थ :—फिर उसने जिणदत्त को बुलाया तथा (पासमें) बिठला कर बह बात पूछने लगा पुत्र ! सुनो मैं तुमसे एक बात कहता हूँ, निश्चित रूप से इस लेख को पढ़ कर मुझे क्यों न सुना दो" ।।११६।।

(पुत्र ने पढ़ कर कहा,) पत्र में भक्ति, जुहार और (अपने) कुटुम्ब की कुशल-क्षेम लिखी है तथा उसमें लग्न (विवाह) की बात भी लिखी

हुई है। (इसके अनन्तर) उसने अत्यधिक रूपवती तथा सुन्दर तारिकाओं के नेत्रवाली विमलमती नारी को (पट्ट पर) लिखा (चित्रांकित) देखा ॥११७॥

[११८–११९]

पुणु जइ देखइ नारि गुणंग, काम बाण धाइय सव्वंग ॥
अतुल महाबल साहुर धीर, गउ बिहलंघल तासु शरीर ॥
भणइ सेठि हमु दुहइ सोगु, करहु विवाह हंसइ जिण लोगु ।
जे र विजाहरि रूवहि रासि, अवसि करमि तोहि घरि दासि ॥

अर्थ:—जब उसने गुण सम्पन्ना उस स्त्री (विमलमती) को देखा तो उसके सर्वांग को काम बाण ने बेध दिया। वह अतुल महा बलवान एवं धीर साहूकार था किन्तु (उस नारी के चित्र को देखते ही) वह शरीर से विह्वलाङ्ग हो गया।

सेठ ने कहा "(हे पुत्र, तुम्हारी इस दशा से) हमें तो दुःख होगा। तुम विवाह करो, जिससे लोग हंसी नहीं करें। यदि वह विद्याधरी तथा रूप की राशि है तो भी उसे अवश्य ही तेरे घर की दासी बनाऊंगा" ॥११९॥

साहुर ∠ साहार ∠ साधुकार ∠ साहूकार–महाजन।

[१२०–१२१]

तवहि सेठि घरि उछउ कियउ, सहु परियणु न्योते आइयो ।
पंच सबद बाजेवि तुरंतु, बहु परियणु चाले सु बरातु[1] ॥
एकति जाहि सुखासण चडे, एकतु वाखर भीडे तुरे ।
एकनु साजित सिगरी धरी, एकणु साजि पलाणी करी ॥

अर्थ :—तब सेठ ने अपने घर में उत्सव किया। (उसमें) सभी परिजनों

१. वरात – मूलपाठ।

ने निमन्त्रण पाकर भाग लिया। शीघ्र ही पांच प्रकार के बाजे बजने लगे तथा बहुत से परिजन बारात में चले ॥१२०॥

कोई बराती सुखासण (पालकी) पर चढ़े जा रहे थे तथा कोई घोड़ों पर काठी रख करके चले। कोई शीघ्र जाने वाले वाहनों पर चले और किसी ने ऊँटों पर पलाण सजाया।

उच्छउ — उत्सव। परियणु — परिजन। सुखासण — एक प्रकार की पालकी।

[१२२-१२३]

एकति डाडी डोला जाहि, एकति हस्ति चडे बिगसाहि ॥
एकति जाहि विवाहणु बइठ, सबु मिलि चंपापुरिहि पइठ ॥
चंपापुरि कोलाहलु भयो, आगइ होनि विमलु आइयो ।
मिलिउ लोगु भउ हल्ल कल्लोलु, उपर परते देहि तबोलु ॥

अर्थ :—कोई डांडी के डोले में चल पड़े। कोई हाथी पर चढ़े हुए प्रसन्न हो रहे थे। कोई विमानों में बैठ कर जा रहे थे और वे इस प्रकार सब मिलकर चम्पापुरी की ओर चले ॥१२२॥

चंपापुरी में कोलाहल मच गया। विमल सेठ अगवानी के लिये आगे आया। लोग जब आपस में मिले तो शोरगुल एवं प्रसन्नता छा गयी और वे एक-दूसरे को तांबूल देने लगे ॥१२३॥

डोला — दोल। हल्ला —हल्ला। तबोल — ताम्बूल—पान।

[१२४-१२५]

भरणइ विमलु तुम्हि अैसो करहु, कुमर बरात सबु जेंवण चलहु ।
उठहु सुहड जेंवहु जिवणार, पुनि तौ होइ लगुण की बार ॥

चउरी रचीय हरिए वास, अरु तह थापे पुण्ण कलास ।
गावहि गीतु नाइका सउकु, चउरी पूरिउ मोती चउकु ।।

अर्थ :—विमल सेठ (परिजनों से) कहने लगा, आप ऐसा करें कुमार एवं बरात (को लेकर) सब जीमने चलें । हे सुभटो, उठो और जीमणवार जीमो क्योंकि फिर लग्न का समय हो जावेगा ।।१२४।।

हरे बाँस की चँवरी (वेदिका) बनायी गयी और वहां पुण्य कलश स्थापित किए गए । स्त्रियाँ उत्साहपूर्वक गीत गाने लगी तथा उन्होंने चंवरी के बीच मोतियों का चौक पूरा ।।१२५ ।।

जेंवरण — जीमन । सुहड — सुभट । लगुण — लग्न । पुण्ण — पुण्य, पवित्र । नाइका — नायिका—स्त्रियां । सउका — स + उत्क — उत्साहपूर्वक ।

| १२६—१२७ |

भयो बिवाहु विमल कसु किण्ण, अगनिउ दाम[1] दाइजी दिण्ण ।
समधी विमलमती बिलखाइ, लइ बिवाहु बसंतपुर जाइ ।।
घरह आइ ते कहा कराइ, चउदिवि अवास भोग विलसाइ ।
राज करत दिनु केतकु गयो, एतहि अवरु कथंतरु भयो ।।

अर्थ :—विवाह सम्पन्न हुआ तथा विमल सेठ ने दहेज में अगणित द्रव्य दिया । उसने कुमारी विमलमती को बिलखते हुए विदा किया अथवा समधी (ब्याही) बिलखती हुई विमलमती को लेकर विवाह के पश्चात् बसन्तपुर के लिए रवाना हो गये ।।१२६।।

घर जाकर उन दोनों ने क्या किया । वे अपने महल में रह कर भोग भोगने लगे । इस प्रकार राज्य करते हुए (आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए) कितने ही दिन व्यतीत हो गये । इसके पश्चात् कथा का प्रवाह दूसरी ओर मुड़ा ।

१. मूलपाठ — दाम ।

कसु – कीदृश । दास (दाम) – द्रव्य–सोने का सिक्का–सेवक । समद् – विदा करना ।

[१२८–१२९]

चडइ सुखासण जात बिहार, भई भेट लंपटह जुवार ।
आइ कुमारी बोलियो बोलु, अहो जिनदत्त इकु खेलहि खेलु ॥
णं णं कार करत बइसरइ, सूनौ दाउ जुवारिउ धरइ ।
पवरण मनावी पूर हुवा, आप आपु कू भासहि तिया ॥

अर्थ :—एक दिन पालकी में बैठ कर चैत्यालय को जाते हुए जुवारियों एवं दुराचारियों से (जिनदत्त की) भेंट हो गयी। उन्होंने (जिनदत्त को देखकर) कुमारी आ रही है, इस प्रकार वचन कहे और फिर कहा "अहो जिनदत्त (आओ) हम एक खेल खेलें" ॥१२८॥

मना करते रहने पर भी वह वहाँ बैठ गया। और तब जुवारियों ने एक सूना दाव लगाया। (पासा) खेलने पर उनकी इच्छा पूरी हुई तथा वे अपने-अपने को तीन अंकों वाला कहने लगे ॥१२९॥

तिया – पांसे की वह ढलान जिसमें प्राप्त अंक ३ के हों।

द्यूत क्रीडा

[१३०–१३१]

खेलत भई जिणदत्तहि हारि, जूवारिन्हु जीति पचारि ।
भणइ रल्हु हमु नाहीं खोडि, हारिउ दव्वु एगारह कोडि ॥
हारि दव्वु घरि चाहइ जाणि, जुवारीन्ह कु दीनी आण ।
हम विणु दीने जइ घर जाहु, तौ तुम्ह जीवदेव वध करहु ॥

अर्थ :—खेलते-खेलते जिनदत्त की हार होती गयी और (अन्त में)

जुआरियों ने ललकार कर उससे दाव जीत लिया। रल्ह कवि कहता है कि जुवारियों ने कहा, कि हमारा इसमें कोई दोष नहीं है" और इस प्रकार जिनदत्त ग्यारह करोड़ द्रव्य वहां हार गया ॥१३०॥

हारने के पश्चात् जब जिनदत्त ने घर जाना चाहा तो जुवारियों ने उसे सौगंध दिला दी और कहा कि यदि हमें बिना दिये घर जाओगे तो तुम जीवदेव का वध करोगे ॥१३१॥

पच्चारि – प्रचारय्–ललकारना। मूलपाठ–करउ

[१३२–१३३]

सो जिणदत्त धरगोटिउ तहां, पठवउ जण ज भंडारी पहां।
काहवि तेरा कही यह बात, देहु पदारथ जाहु तुरंत॥
भंडारिउ कोपिउ पभणेइ, जूवा हारे को धणु देइ।
देइ सेठि स रु देखहु मांगि, मइ भंडारहं दिलाइबी आगि॥

अर्थ :—उसके पश्चात् जिनदत्त तो वहीं रुक गया और उसने एक आदमी अपने भंडारी के पास भेजा। उसने वहां जाकर सारी बात कही और कहा कि शीघ्र ही बहु-मूल्य रत्नादि दो जिससे वह जावे ॥१३२॥

भंडारी कोपित होकर कहने लगा कि जुए में हारने वाले को कौन धन देता है? यदि सेठ देवे तो उससे मांग करके देखलो। मैं (तो) भण्डार को अग्नि में नष्ट नहीं होने दूंगा ॥१३३॥

[१३४–१३५]

जणु उठि गयउ विमलमति पास, जिणदत्तह लइ पठिउ उपासु।
णिसुणि बात निय मणि आकुली, आफी रयण जडित काचुली॥
माणिक रतन पदारथ जडी, विचि विचि हीरा सोने घडी।
टए पासि मुसाहल जोडि, लइ हुइ मोलि सु णव धन कोडि॥

अर्थ :—यह व्यक्ति फिर विमलमती के पास उठ कर चला गया और कहा कि "जिनदत्त को उपास करना पड़ गया है।" यह बात सुन कर वह अपने मन में व्याकुल हुई तथा उसने अपनी रत्न-जड़ित कंचुकी उसे दे दी ॥१३४॥

वह कंचुकी माणिक्य एवं रत्नों आदि पदार्थों से जड़ी हुई थी तथा बीच-बीच में हीरे एवं सोने से घड़ी हुई थी। इसमें पास-पास में मोती जड़े हुए थे। तथा वह नौ कोटि द्रव्य में अंकित की गयी थी ॥१३५॥

[१३६–१३७]

जणु लइ गयउ कांचुली तहां, छइ जिणदत्त अघोट्टिउ जहां।
हारिवि दव्व कांचुली आपि, तुणु घर आइवि पडिउ संतापु ॥
पडिउ संतापु भयइ बिललाइ, बापु विढंती कुपुरिषु खाइ।
मो समु अवरु कुपूत न भयो, तात अर्थ मइ ह...णु लयो ॥

वह व्यक्ति कंचुकी लेकर उसी स्थान पर गया जहाँ पर जिनदत्त रुका हुआ था। जिनदत्त हारे हुये द्रव्य (के रूप) में कंचुकी अर्पित कर घर चला गया और फिर वहाँ संताप करने लगा ॥१३६॥

वह दुखित होकर विलाप करने लगा और कहने लगा कि पिता की कमाई (इस प्रकार) कु पुरुष ही खाता है। मेरे समान दूसरा कौन कुपुत्र होगा जिसने पिता के धन को इस तरह हारने के लिये लिया हो ॥१३७॥

अघोट्टिउ – अगोटना, रोकना, छिपाना। आप् – अर्पय्–अर्पित करना। बापु – पिता। विढंती – कमाई हुई पूंजी।

[१३८–१३९]

धीर वीर जे पुरिस गहीर, विढवहि अर्थ जाहि पर तीर।
तिनह अर्थ जिणु भुवेवा करहि, ते पुरिस किम जाम ति मरहि ॥

उद्दिमु करहि जे साहसु करहि, धीरे होइ दिसंतर फिरइ ।
विढइ लच्छि जे पुरवहि आस, जाए गुणिए थहि दस मास ॥

अर्थ :—जो पुरुष धीर, वीर एवं गम्भीर होते हैं वे परदेश जाकर धन कमाते हैं । जो धन कमा करके उसकी वृद्धि नहीं करते हैं वे पुरुष क्यों नहीं जन्म ग्रहण करते ही मर जाते हैं ॥१३८॥

जो साहस करके पुरुषार्थ करते हैं तथा धीरतापूर्वक देशान्तरों में फिरते हैं, तथा जो लक्ष्मी कमा कर आशा पूर्ण करते हैं ऐसे ही लोगों को दस मास तक माता के गर्भ में रह कर उत्पन्न होना उचित मानना चाहिए ॥१३९॥

[१४०–१४१]

ना विढवहि न दिसंतर फिरइ, दान धरमु उपगार नु करहि ।
दिहि न किसहिं पातकी लोणु, बइठे राखहि घर के कोणु ॥
गालत घर बैठे सु खियाहि, पाणिउ पियहि बार चउ खाहि ।
आसु पराई करइ सू मुयउ, सोभित न पूतु गरभ ही मुयउ ॥

अर्थः—जो न धन कमाते हैं और न किसी देशान्तर में जाते हैं तथा न दान, धर्म एवं परोपकार करते हैं । ऐसे पापी किसी को नमक भी नहीं देते हैं, और वे केवल घर के कोने में बैठ कर रखवाली करते हैं ॥१४०॥

बैठे बैठे घर को नष्ट करते हैं और क्षय को प्राप्त होते हैं । उनका कार्य केवल पानी पीना तथा चार २ बार खाते रहना है । जो दूसरों की आशा करते हैं वे मरे हुये हैं । ऐसा पुत्र (भी) शोभित नहीं होता, वह भी मानों गर्भ में ही मर गया हो ॥१४१॥

दिसंतर – देशान्तर । उपगार – उपकार । लोणु – लवण, नमक । बार चउ – चार बार ।

[१४२-१४३]

एते खणि जइ आयो पुत्र, कवण पूत तुम्ह पडिउ संतापु ।
संप (इ) पूत सुपत्तह दीज, जूवा हारि होणि न हु कीज ।।
जूवा हारिवि खोवहि दव्वु, तिन्ह कहु पूत हसइ जणु सव्वु ।
वडइ सखंदि लछि पाइयइ, सा किमु पुत्तु अपहि लायइइ ।।

अर्थ :—उसी क्षण जब उसका पिता आया, तो उसने कहा "हे पुत्र, तुम कौन से दुख में पड़े हो ? संपत्ति को सुपात्र को देना चाहिए किन्तु अब जुए में हार कर चिन्ता न करनी चाहिए ।।१४२।।

जुए में हार कर जो द्रव्य खोता है, हे पुत्र ! उस पर सभी जन हँसते हैं । बड़ी कठिनाई से लक्ष्मी पाई जाती है उसे हे पुत्र ! किस प्रकार कुमार्ग में लगाया जाय ? ।।१४३।।

जइ – यदा – जब । पूत्र – पितृ – पिता । सुपत्त – सुपात्र । होणि – चिन्ता । खखंदि – कठिनता । अपह – अपथ – कुमार्ग ।

[१४४-१४५]

दीजइ होण दीण कहु पूत, धम्मु काजि वेचियइ बहूत ।
कैइ बालकहु दीज, अउर वछ संपय कहु कीज ।।
इसु समझाइ जिवायौ जाम, जिणदत्त भयौ परहस ताम ।
देखि रलहु तिस कोथि उपाउ, घर छाडण को करै उपाउ ।।

अर्थ :—"हे पुत्र ! हीनों (अपंगों) एवं दीनों को देना चाहिए और धर्म कार्य के लिए बहुत कुछ (यदि आवश्यक हो तो) बेच भी डालना चाहिए । तथा (चाहे उसे) किसी बालक को दे दिया जावे किन्तु हे वत्स ! संपत्ति का और क्या किया जावे" ।।१४४।।

इस प्रकार अपने पुत्र को समझा कर जब उसने उसे जिमाया उस

समय जिनदत्त प्रसन्न हो गया। (किन्तु) रल्ह कवि कहता है वह अवसर देख कर घर छोड़ने का कोई उपाय करने लगा ॥१४५॥

[१४६-१४७]

भूठउ लेखि सुसर कहु लिखइ, फुरिण बुलाइ जरण एकहु कहइ ।
कहिउ सेठिस्यों जाइवि तेरण, हौं जिरणदत्तहि आयउ लेरण ॥
तउ जिरणदत्तहि लेइ हकारि, पूछइ मंतु सेठि बइसारि ।
जइयहु पूत तउ इसउ कीज, नातरु घर पठइ जणु बीज ॥

अर्थ :—(तदनन्तर उसने) अपने श्वसुर का एक भूंठा लेख (पत्र) लिखा और एक व्यक्ति को बुला कर कहा, "सेठ के पास जा कर यह कहो कि मैं जिरणदत्त को लेने आया हूँ ॥१४६॥

फिर सेठ ने जिनदत्त को बुलाया और अपने पास बैठा कर मंत्रणा की और पूछा "यदि पुत्र, जाना है तो ऐसा करो, नहीं तो इस व्यक्ति को घर भिजवा दो" ॥१४७॥

[१४८-१४९]

तौ जिरणदत्त भरणइ कर जोडि, हम कहु तात देहु जिरण खोडि ।
आपु मतै हौं कैसे चलौ, जो तुम पिता कहहु सो करौ ॥
पिता मतइ जिरणदत्त चलाइ, संबल बहुलकु देइ अघाइ ।
विमलामती चली तिह ठाइ, सासु सुसरु कइ लागइ पाइ ॥

अर्थ :—तब जिनदत्त हाथ जोड़ कर बोला "पिताजी हमें कुछ दोष न दो। मैं अपने मतानुसार कैसे चलूंगा ? जो आप हे पिता कहेंगे मैं वही करूंगा" ॥१४८॥

पिता से आज्ञा लेकर जिनदत्त चला गया उसके साथ मार्ग के लिये बहुत

सा सामान बांध दिया गया। विमलामती भी सास श्वसुर के पांव लग कर उसी स्थान को चली ॥१४९॥

[१५०–१५१]

मरणे पंचदश गोहिरिण चले, बेगि मज्झि चंपापुरि मिले।
भरणइ विमल तुम्ह नीकउ कियउ, आरिण मिदाइय म्हारिय धीयउ[1] ॥
दिन दोइ चारि तिहा ठा रहइ, पुरणु उवाउ चलिवे कौ करइ।
सो जिएादत्त विमलमति कंतु, नंदरणवणु चल्लिउ विग्रसंतु ॥

अर्थ :—(जिनदत्त के) साथ में पन्द्रह आदमी और चले और शीघ्र ही चंपापुर आकर उन्होंने पड़ाव किया। विमल सेठ ने उससे कहा "तुमने अच्छा किया जो यहां लाकर मेरी लड़की से भेंट करादी" ॥१५०॥

दो चार दिन तो वहां वह ठहरा लेकिन फिर चलने का उपाय करने लगा। वह विमलमती का पति जिनदत्त विकसित होता हुआ नदनवन को चला ॥१५१॥

गोहिरिण – साथी। उवाउ – उपाय

१. धीयो–मूल पाठ

[१५२–१५३]

देखित वासुपूज्ज कौ भवणु, पंचमि ताहि करायौ न्हवणु।
अंजणु मूलु लई तं ओइ, भयौ परछन्नु न देखइ कोइ ॥
पुरिणउ असीस देइ सोघणी, फूलह माझि हुंति अंजणी।
सिरह असीस आभड़ो जाम, विमलामती न देखइ ताम ॥

अर्थ :—(उस नंदनवन में) वासुपूज्य स्वामी का मन्दिर देख कर जिनदत्त ने पंचामृत अभिषेक कराया। उसने अंजनी मूल (एक प्रकार की

जड़ी) को देखकर लिया—(उसकी सहायता से) वह प्रच्छन्न हो जाता और उसे कोई न देख पाता था ।।१५२।।

फिर उसने (सभी को) खूब आशीर्वाद दिया तथा वह फूलों के मध्य होने वाली पराग (रूप) हो गया । जब (विमलमती) के शिर पर (हाथ रख कर) उसने आशीष दी, तो विमलमती भी उसे नहीं देख सकी ।।१५३।।

पंचमि – पंचामृत

वस्तु बंध

[१५४]

पुणुवि सिर कंधिउ अंजणीया ।
झत्ति पछण्ण भयउ, सिग्घु गयउ दसपुरि पहुतिउ ।
ता रविमयउ विमलमई, जा न कंतु निय नयणु दिठियऊ ।।
छंडि इकल्ली जिणभुवणि, गउ पहु कारणि कवण ।
पिय विऊय हुय रल्ह कइ, रोवइ हंसागमणि ।।

अर्थ :—जिनदत्त ने फिर सिर पर अंजनी रख ली जिससे वह झट प्रच्छन्न हो गया और शीघ्र ही दशपुर पहुँच गया । जब उसने अपने स्वामी को अपनी आंखों से न देखा तब विमलमती (रोने) लगी । "मुझे जिन मंदिर में अकेली छोड़ कर मेरा स्वामी किस कारण से चला गया" रल्ह कवि कहता है कि पति से विमुक्ता होकर वह हंसगामिनी रोने लगी ।

झत्ति – झटिति, झट, शीघ्र । सिग्घु – शीघ्र । विऊय – विमुक्त ।

अर्द्ध नाराच

[१५५–१५६]

हंसागवणी चंदावइणी, करइ पलाव ।
मोहो लागइ देखत पेखत, कत गयउ नाह ।।

धाव धूपइ हियडा कोपइ, मणुअ रडइ ।
हा हा दइया काहोभइया, पिउ पिउ पिउ कराइ ॥
आयउ मरणु णाही सरणु, साइ कहा कराऊं ।
कंठारोहणु वालि हुवासणु, झंपा देइ मराऊं ॥
काठउ दीयउ कंसे जीवउ, पिय विणु तोंहि ।
हाइ वाइ गुसइ सहि, छाडि कहि गयउ कंत मोहि ॥

अर्थ :—वह हंसगामिनी और चन्द्रवदनी (विमलमती) प्रलाप करने लगी। "मेरे आगे से देखते देखते, हे नाथ, आप कहाँ चले गये।" वह दौड़ धूप करती है। उसका हृदय कुपित हो रहा है तथा मन रुदन कर रहा है। हा हा देव, क्या हो गया ? (इस प्रकार रटते हुए) वह पिउ, पिउ करने लगी ॥१५५॥

"(अब) मेरी मृत्यु आ गयी है, किसी का शरण नहीं है, अब क्या उपाय करूं ? कंठ अवरुद्ध हो रहा है, क्या अग्नि जला कर और उसमें कूद कर मरजाऊं ? तुमने कष्ट दिया है हे पति ! तुम्हारे बिना कैसे जीऊं ? हाय मेरे स्वामी कहां छोड़ कर चले गये ॥१५६॥

काठ — कट्ठ — कष्ट । साइ — साति — उपाय ।

[१५७]

चौदिसि जोवइ धाहहि रोवइ, कहा कियो करतार ।
वेलि चडंती पडिवयंती, गउ सामी अंतराल ॥
भई स दुखी काला मुखी, सासू सुसरे माइ ।
जिणदत्त गुसाईऊ अप्पाणउ, साथउ चल्यो इवाहि गवाइ ॥
तसु को कंतू सो जिणदंतू, तिसको सुनहु विचार ।
एकल्लउ गहयउ सो जु, भयउ वसपुर वारि ॥

अर्थ :—चारों दिशाओं में वह देखती है तथा धाड़ मार कर रोती है,

परमात्मा, तूने यह क्या किया ? चढ़ती लता को गिराकर स्वामी अंतराल (बीच) में ही चले गये। अत्यधिक दुखित हुई तथा सास श्वसुर एवं माता (के सामने) वह मलिन मुख वाली हो गई। जिनदत्त गुसांई को जो अपने स्वामी थे, उन्हें मैं इस प्रकार गवां चली। अब उसका स्वामी जो जिनदत्त थे उसके बारे में सुनिये। वह जो अकेला गया था वह दशपुर के द्वार पर जा पहुँचा ॥१५७॥

चौपई

[१५८—१६०]

विमलमति जिणहर निरु रहई, पिय विजोय जो कट्ठइ सहई।
इंद्रिय दमइ सीलु पालेइ, णमोयार णिय चित्त गुणेइ॥
जीवदेव नंदनु नियकंतु, जिणवर वंदइ परिहरि संतु।
जुवा खेले परिहसु भयो, मिसि संधात······दसपुरु गयो॥
दसपुर पाटण कइ पइसार, वाडी देखतु भई अवार।
वृष असोक कंद··दि गऊ जहां, खणु इकु नींद विलंब्यो तहां॥

अर्थ :—विमलमती निश्चित रूप से जिन मन्दिर में रहने लगी। पति के वियोग में वह कष्ट सहन करने लगी। इन्द्रियों का दमन और शील-व्रत का पालन करने लगी तथा सदैव णमोकार मंत्र का चित्त में स्मरण करने लगी ॥१५८॥

जीवदेव का पुत्र मेरा पति है। मन्दिर की वंदना करते समय मुझे छोड़ कर चला गया है। जुआ खेलने से (उसका) जो परिहास हुआ उसी चोट के कारण वह दशपुर चला गया है ॥१५९॥

[उधर जिनदत्त को] दशपुर नगर के प्रवेश द्वार पर उसके बगीचे देखते २ बड़ा समय हो गया। वह अशोक वृक्ष की ओट में गया, वहाँ उसने एक क्षण (थोड़ी देर) नींद में विश्राम किया ॥१६०॥

[१६१–१६२]

चडिउ सुखासणु सायरदत्तु, आयउ जहिं सोइ जिणदत्तु ।
जण ए (कइ) पूछियउ उठाइ, अहो वीर तू सोअहि काइ ।।
णियमणि वीर राइ पयपाइ, सो जिणदत्तु भणइ बिहसाइ ।
हउं तहु अछउ निठाले ठाण, तुम्ह तौ आए कारण कवण ।।

अर्थ :—(इतने में ही) सुखासन (पालकी) पर बैठ कर वहां सागरदत्त आया, जहाँ वह जिनदत्त सो रहा था । (उसके) एक जन (सेवक) ने उसको उठा कर पूछा "हे वीर ! तू क्यों सो रहा है ।।१६१।।

अपने मन में वीर का राज पद प्राप्त करके वह जिनदत्त हंस करके बोला "मैं तो निठल्ली स्थिति का हूँ; तुम यहां किस कारण आये हो ?" ।।१६२।।

[१६३–१६४]

हाथि जोडि तौ नाइकु भणइ, हूं आयो वाडी पेखणइं ।
तउ जिणदत्त भणइ वियसाइ, पुर की वाडी दीसइ काइ ।।
कारणु स कौन केम यह गही, मुणिउ न सूकि जेमु यहरही ।
धणु परियणु मो घरह बहुतु, पर पंथो घर नाही पूतु ।।

अर्थ :—हाथ जोड़ कर तब नायक (सागरदत्त) ने कहा "मैं वाड़ी (बगीचा) देखने के लिये आया हूँ ।" जिनदत्त तब विकसित हो (हंसकर) कर कहने लगा "तुम्हें पुर की वाड़ी में क्या दिख रहा है ?" ।।१६३।।

कौन (क्या) कारण है ? किस प्रकार यह आह्लाद है ? यह सूखी वाडी कैसे हरी हो गई यह मैं नहीं जान पाया । मेरे घर में धन और परिजन तो बहुत हैं–किन्तु हे पथिक ! पुत्र नहीं है ।।१६४।।

वियस – विकस् – विकास करना ।

[१६५-१६६]

सेठ जिणदत्त बात हसि कहइ, हउ जाणउ ...... हि सूकी रहइ ।
तोहि निपुंसकु जंपइ लोगु, ताहि अमरउ रहिउ करि सोगु ॥
भणइ वीरु जइ कहिउ करेहि, वाडी सयल भुगति जइ देहि ।
फूलहि अंब नींब कचनार, सहले करि अफिउ सहकार ॥

अर्थ :—फिर जिनदत्त हंस करके बात करने लगा, मैं तो सूखी (बाड़ी) ही जानता हूं । लोग तुम्हें नपुंसक कहते हैं और इसीलिये यह आम्र वाटिका शोक कर रही है ॥१६५॥

पुनः उस वीर (जिनदत्त) ने कहा "यदि आप मेरा कहना करें तो संपूर्ण बाड़ी भुक्ति (भोजन फल) देने लगे; आम, नींबू, कचनार के पेड़ों पर फूल आ जावे तथा मैं सहकार को सफल (फलयुक्त) करके अर्पित करूं" ॥१६६॥

अमरउ (अमराउ) — आम्रराजि — आम्र वाटिका

उद्यान-वर्णन

[१६७-१६८]

जइ तू वाडी करहि सुवास, तौ जिणदत्त हूं तेरउ दास ।
करहि संत जइ अरवइ तोहि, निहचै राजु करहि घरि मोहि ॥
जो वाडी हुई थी मइल, अठविह पूज रई तहि सयल ।
पुष्प खिडे जे उकटे गए, जिण गंधोवद सिंचण लिए ॥

अर्थ :—सेठ ने कहा "यदि तू बाड़ी को सुवासित कर दे तो हे जिनदत्त ! मैं तेरा दास हो जाऊं । यदि तुझे (कुछ) आता हो, तो (मेरा यह अनिष्ट) शांत कर और मेरे घर में तू निश्चय राज्य कर ॥१६७॥

जो वाड़ी मलिन हो गयी थी वहां सब सब ने अष्ट प्रकार से पूजा

की। पुष्प के जो विटप (वृक्ष) पहिले उकठ (सूख) गये थे, उनका जिन भगवान के गंधोदक से वह सिंचन करने लगा ॥१६८॥

[१६९-१७०]

जो असोक करि थक्किउ सोगु, अन पर परितहि दीनउ भोगु।
को छुद्द कसिर रहिउ केवडउ, सिंचिउ नीर भयो रूवडउ॥
जे नालियर सोषु करि ठिए, तिन्हइं हार पचोले किए।
जे थे सूकि रहे सहकार, तिन्हु अंकवाल दिवाए वार॥

अर्थ :—जो अशोक वृक्ष पहिले शोक कर (से) थक रहा था, उस पर (गंधोदक) पड़ते ही भोग में रखने योग्य हो गया। जो केवड़े का पौधा पहिले कृश हो रहा था, और से सिंचित होने के पश्चात् वह सुंदर हो गया ॥१६९॥

जो नारियल शोष किए हुए खड़े थे? उन्हें अब हरे एवं मजबूत कर दिये। जो आम पहिले सूख रहे थे उन्होंने अंक पानी में अब मंजरिया दी ॥१७०॥

कसिर – कसिट – कुष्ट। अंकवाल – अंकपाली।

[१७१-१७२]

नारिंग जंबु छुहारी दाख, पिंडखजूर कोफिली असंख।
जातीफल इलायची लवंग, करणा भरणा कीए नवरंग॥
काथु कपित्थ बेर पीपली, हरड बहेड खिरी आंबिली।
सिरीखंड अगर गलोंवी धूप, एरहि नारि तहि ठाइ सरूप॥

अर्थ :—नारंगी, जामुन, छुहारा, दाख, पिंडखजूर, असंख्य पुगफली (सुपारी), जायफल, इलायची, लोंग, करणा तथा भरणा के वृक्षों ने नया रंग कर लिया ॥१७१॥

यहाँ जो कत्था, कैथफल, बेर, पीपल, हरड़, बहेड़ा, खिरणी, इमली,

श्रीखंड, अगर और गलोदी धूप के वृक्ष थे, वे सुन्दर नर-नारी के समान ही वहां खड़े थे। ॥१७२॥

[१७३-१७४]

जाई जूहि वेल सेवती, दवणो मरुवउ अरु मालती।
चंपउ राइचंपउ मचकुंद, कूजउ वउलसिरी जासवदु ॥
वालउ निवालउ मंदार, सिंदुवार सुरही मंदार।
पाडल कडपाडल धणहूल, सरवर कमल बहुतक हूल ॥

अर्थ :—जाति, यूथिका, वेला, सेवती, दवणा मरुआ तथा मालती, चंपा, रायचंपा, मुचकुंद, कुब्जक मोलसिरी तथा जपापुष्प ॥१७३॥

वाला, निवारिका, मंदार, सिंदुवार, सुरभित मंदार, पाडल, कडपाडल, गुडहल तथा तालाब में (खिले हुए) कमलों में (भ्रमरादि का) बहुतेरा हल्ला (शब्द) होने लगा ॥१७४॥

बउलसिरी - बकुलश्री - मोलसिरी। सुरही - एक प्रकार की घास।

[१७५-१७६]

अंबराउ फल लीयउ अमराउ, कोइल शब्द कियो बंधाउ।
उवहिदत्त तहि कहा कराउ, पाइ लागि पुणि घरि लइ जाइ ॥
उदहिदत्त घरि गउ जिणदत्तु, धर्मपुत्त करि ठयउ तुरंतु।
तिस हित सुख अखंड सरीर, जो इह वणिज जाण पर तीर ॥

अर्थ :—(अब) अमराव (आम्र वाटिका) ने निरंतर (सघन रूप से) फल धारण किए, कोयलों ने जोरशोर का शब्द किया। तब सागरदत्त ने क्या किया कि पैरों पड़ कर वह उसे घर ले गया ॥१७५॥

जब जिनदत्त सागरदत्त के घर गया तो सागरदत्त ने उसे तत्काल

धर्म पुत्र कह् के मान्यता दे दी। उसके शरीर सुख के लिये पूर्ण व्यवस्था कर दी ताकि वह समुद्र पार व्यापार के लिये न [जावे] ॥१७६॥

अंबराउ – आम्रराजि। असरालु – निरंतर। वंवालु – द्वन्द्व + आलु – जोर शोर का।

[१७७–१७८]

एतहि वणिए बणिवर सामहहि, ता जिणदत्त हियउ गहगहइ।
हाथ जोडि पुणु पूछइ बात, हमहू वणिज पठावहु तात॥
उवहिदत्त बोलइ मुह पेखि, पुत वियोग ण सकउ देखि।
हमि तुम्हि एकहि जइबौ पूत, जिम लइ आवहि रयण बहूत॥

अर्थ :—इतने ही में कुछ बड़े व्यापारी वहाँ सम्मुख आए, जिससे जिनदत्त का हृदय गद्‌गद् हो गया। हाथ जोड़ कर सागरदत्त से उसने निवेदन किया, कि "हे तात हमें भी व्यापार करने भेजो" ॥१७७॥

सागरदत्त उसका मुख देख कर बोला, "मैं पुत्र का वियोग नहीं देख सकूँगा। हे पुत्र, हम और तुम एक ही (साथ) जाएँगे, जिससे हम बहुतेरे रत्न लाएँगे" ॥१७८॥

पेखु – प्र+ईक्ष् – देखना।

व्यापार के लिये प्रस्थान

[१७९–१८०]

उवहिदत्तु चालइ जिणदत्तु, अनु-अनु वालक संघौ बहुत।
सइ सुकोठ वस्तु सब भरी, जा पर तीर महंघी खरी॥
चारुदत्त गुणदत्तु, सुदत्तु, सोमदत्तु, घरणइ भणदत्तु।
सिरिगणु हरिगणु आसादित्तु, छौ थे हथ्या सेठि कौ पुतु॥

अर्थ:—सागरदत्त और जिनदत्त चले तथा अपने साथ उन्होंने बाखरों में बहुत सा अन्य अन्य (विविध प्रकार का) सामान लिया। उन्होंने उन सब वस्तुओं को भरा जो कठिनाई से तैयार होती थी और विदेशों में बहुत मँहगी थीं ॥१७९॥

(सागरदत्त के साथ) चारुदत्त, गुणदत्त, सुदत्त, सोमदत्त, भद्रा, धनदत्त, श्रीगुण, हरिगुण, आशादित्त तथा हृया सेठ का पुत्र भी था ॥१८०॥

कठिन - क्लिष्ट — क्लेश युत — कष्ट पूर्वक तैयार की हुई।

[१८१—१८२]

अजउ विजउ रजउ चलहि, आसे वासे सोम तहि मिलहि।
चलिउ साहु तेजू देवपालु, महूंह पुत्त सुठ सुठु सुरपाल ॥
तीकउ बीकउ हरिचंद पूतु, ले बाखर भरि चले बहूत।
सोल्हे बील्हे गुणहि ण काहु, चलहि विज्जाहर आसे साहु ॥

अर्थ:—अजय, विजय तथा रजय चले, और आशा, वासा तथा सोम (नाम के व्यापारी उनमें) मिल गये। तेजू साहु तथा देवपाल चले तथा महूंह का सुन्दर पुत्र सुठु तथा श्रीपाल भी उनके साथ हो गये ॥१८१॥

हरिचंद के पुत्र तीकउ तथा बीकउ (वे भी अपना सामान) बाखरों में भर कर चले। सील्ह तथा बील्ह इस प्रकार चल पड़े कि किसी को (अपने आगे) नहीं गिनते थे तथा विद्याधर आसा साहु भी (उनके साथ) चले ॥१८२॥

[१८३—१८४]

धध पोरणवहि ख ख गुढ, छीला खीमड कन्हड सूढु।
सुमति महामति सोलह तणउ, चलिउ सधारु बील्ह चंद तणउ ॥

पूतु म आराउ खाखर आदि, कोडि सींग भर लइ जे वादि।
धणुदेउ सेठि कुल विए, दुइ वोहथु भरि वेणालए।

अर्थ :—गूढ खोणयाही, आधा, छोला, खोखर, कान्हा, सूढा, महामति सोल का (पुत्र) सुमति, सधारु एवं चंद का (पुत्र) वील्हू चले ॥१८३॥

उन्होंने बाजारों में क्या है, यह न जानते हुये भी कौडियां एवं सींगों को बैलों पर लाद लिया। धनदेव सेठ ने भी, अपार सामग्री दी जिससे दो जहाज भर लिये और बेणा नगर (को जाने का संकल्प) लिया ॥१८४॥

[१८५–१८६]

धाधू पीता चालिउ असरु, कोडि खरा लिणि लोए चमरु।
धनु नाम नागे कउ पूतु, सारु पाटलइ चालिउ धूतु॥
जिसुकै हियउ पंच परमेठि, सो पुणु चालिउ दत्त सेठि।
जिणवरु पूज करइ तिहुकाल, सोपुणु चालिउ सहु गुणपाल॥

अर्थ :—और धाधू तथा पीता भी चले तथा करोड खरे चमर (साथ) लिए। नाग का लड़का धन्ना तथा धूत भी रेशमी (मूल्यवान पाट लेकर) चला ॥१८५॥

जिसके हृदय में पंच परमेष्टि थे ऐसा वह दत्त सेठ भी चला। जो जिनेन्द्र भगवान की तीनों काल पूजा करता था ऐसा गुणपाल भी साथ चला ॥१८६॥

[१८७–१८८]

चले ति रयण परीक्षा करहि, चले ति मोलु पदार्थ धरहि।
सब वणजारे भए इकठाइ, कोस पंचदश मिलिए आइ॥
सबु वणिजारे चतुर छइल्ल, बारह सहस चले भरि वइल्ल।
जो मतिहीण अबूझ अजाण, सब माहि ऊबहिदत्त परधान॥

अर्थ :—जो रत्नों की परीक्षा (परख) करते थे वे भी चले तथा जो बहुमूल्य पदार्थ रखते थे वे भी चले। सभी व्यापारी एक स्थान पर इकट्ठे हुये तथा पन्द्रह कोश पर जा कर उन्होंने पड़ाव किया ॥१८७॥

सभी व्यापारी चतुर एवं छैले थे और बारह हजार बैलों को भर कर वे चले थे। जो मतिहीन एवं अज्ञ थे (उन) सब में सागरदत्त प्रमुख थे ॥१८८॥

रयण – रत्न। परीक्खा – परीक्षा, पारखी

[१८६]

छाडत नयर देश अंतरास, गए बिलावल कइ पइ पसारि।
वलद महिष सबु दइ निरु करहिं, वाखर सयल परोहणु भरहिं॥

अर्थ :—नगर और देशों की दूरी को छोड़ते हुये वे बिलावल तक चलते गये उन्होंने बैलों एवं भैंसों को दूसरों को दे दिया और सारा सामान जहाजों में लाद दिया ॥१८६॥

[१९०–१९१]

भरि ओहिथ चले निज ठाइ, अण्णु बहुत इंधणु चडाइ।
सयलहु वत्थु परोहणु कयउ, बारस वरिस के संबल लयउ॥
वणिजारे जल जंतइ ठाइ, धुजा पताका पडा डराइ।
मुदिगर लोहे भार सांकरे, सावधान हुइ वणिवर चढे॥

अर्थ :—तदनंतर वे जहाजों को भर कर अपने स्थान को चले। साथ में बहुत सा अन्न एवं ईंधन उस पर चढ़ा लिया। बारह वर्ष का संबल (खर्चा) लेकर सभी वस्तुओं को जलयानों में लाद दिया ॥१९०॥

वणिजारों को जल जंतुओं का पता था। (जलयानों पर) ध्वज, पताका तथा पट (हवा द्वारा) प्रेरित हो रहे थे। उन्होंने अपने साथ मुद्गर

एवं लोहे की भारी सांकल भी लीं। इस प्रकार वे व्यापारी सावधान होकर चले ।।१९१।।

ईर – प्रेरणा करना।

[१९२–१९३]

मज्झु परोहणु रोपिउ बासु, तहि चडियउ मरजिया देसासु ।
माथे दीनी लोह टोपरी, नातरु गीद्ध लेहि चांचरी ।।
धुजा पताका पवण जब हयउ, जोयण साठि परोहण गयउ ।
दूत व चाय व चलिउ तुरंत, सुरा सेतु दीसइ सु अणंतु ।।

अर्थ :—(उन्होंने देखा कि) मरजीवा ने प्रोहण (जहाज) के मध्य में बांस खड़ा किया तथा उस पर वह (मरजीवा) सांस रोक कर चढ़ गया। उसने माथे पर लोहे की टोपी दे रखी थी नहीं तो उसे (समुद्री) गिद्ध अपनी चोंचों में ले लेते ।।१९१।।

ध्वजा एवं पताका जब वायु से आहत हुई तब वह प्रोहण (जलयान) साठ योजन चला गया। वे द्रुत और उत्साहपूर्वक चल रहे थे और अनंत जल ही जल चारों ओर दिखाई पड़ता था ।।१९२।।

मरजिया – मरजीवक – समुद्र के भीतर उतर कर उसमें से वस्तुओं को निकालने वाला। द्रुत – द्रुत – वेग से

[१९४–१९५]

कुंडर मगरमछ घडियार, पाणिउ अगम न बुझइ पार ।
जल भय कंपइ सयल सरीर, लहरि पयंड झकोलइ नीर ।।
घडहडाइ गाजंइ सु समुद्द, सउ जोयण गहिरउ जलउद्द ।
बूड निकरहि दहुस मुंह कोलि, जाणइ मच्छ सु घालइ लीलि ।।

अर्थ :—पानी में दुर्द्धर मगर, मत्स्य एवं घड़ियाल थे तथा उस अगम पानी का पार भी नहीं सूझता था। जल के भय से सब शरीर कांपता था तथा प्रचंड लहरों से पानी झकोरे मारता था ॥१६४॥

समुद्र गड़गड़ा कर गर्जना करता था तथा वह समुद्र सौ सौ योजन गहरा था। वह मरजीवा डुबकी लेकर सुख पूर्वक मुंह को बंद किए हुये निकलता था; क्योंकि यदि मच्छों को मालूम पड़ जाता तो उसे निगल ही जाते ॥१६५॥

घड़ियार — घड़ियाल। पयंड — प्रचंड। उद्द — उदर। रहस — रभस् — सुख।

[१६६–१६७]

वेगा नयरु छाडि जबु चलेय, कवणु दीउ वेगि परहरिय।
भंभा पाटणु वाए धीचि, सयो वोहिथ कुंडलपुर खीचि॥
मयणदीउ हूतइ नीसरिउ, पाटण तिलउ दीउ पइसरिउ।
सहजावती वेगि परिहरउ, गउ वोहिथ फोफल की पुरउ[1]॥

अर्थ :—जब वे वेगा नगर को छोड़ कर चले तब कवण द्वीप भी उन्होंने शीघ्र ही छोड़ दिया। भंभा पाटण बीच ही में छोड़ कर उन्होंने जहाज को कुंडलपुर खींच लिया ॥१६६॥

मदन द्वीप से होकर वे निकले तथा पाटल तिलक द्वीप में प्रवेश किया। (तदनंतर) उन्होंने शीघ्र ही सहजावती को छोड़ा और वह जहाज फोफलपुरी (पूगफल—सुपारी की नगरी) को गया ॥१६७॥

वोहिथ — जहाज। फोफल — पूगफल — सुपारी।

१ मूल पाठ पुरी

[१९८–१९९]

वडवानल वोहिथु गउ मेलि, अंतरु छाडि पवाली वेलि ।
संखदीउ परिहरियउ जाणि, गयो तहां जहि हीरा खाणि ।।
पएसइ घणु जलु जिणवरु नाहु, भव अंतर वोहिउ अवगाहु ।
तहि पय परिसिवि वणिवर चलइ, कलिमलु सयलु लोउ परिहरहि ।।

अर्थ :—वह जहाज वड़वानल को ढकेल कर आगे बढ़ा तथा बीच में पवाली–वेला को भी उसने छोड़ दिया । संख द्वीप को भी उसने जानबूझ कर छोड़ दिया और वह वहाँ गया जहाँ हीरों की खान थी ।।१९८।।

वहाँ जल के मध्य जिन चैत्यालय था तथा वहाँ उन्होंने भव से पार करने वाले जिनेन्द्र भगवान के दर्शन किये । उनके चरणों का स्पर्श करके वे व्यापारी आगे चले और समस्त लोगों ने वहाँ अपने कलिमल (पाप) त्याग दिए ।।१९९।।

[२००–२०१]

तहां हुंतउ परोहणु चलइ, जोयण सउ वीसा नीसरइ ।
सुणिहि राइसिहि कइन्हु कि भाइ, संघल दीप पहूते जाइ ।।
वणिवारा तहि ठाहरि रहइ, क्रय विक्रेण दीवि पइसरहि ।
मोल महंघी वाखर देहि, आप सउं थो साटिवि लेहि ।।

अर्थ :—वहाँ से होकर वह प्रोहण (जहाज) चला और फिर एक सौ बीस योजन निकल गया । कवियों का सत्संग करने वाले राजसिंह ने सुना है कि वे सभी सिंहल द्वीप जा कर पहुँचे ।।२००।।

व्यापारी लोग वहाँ ठहर गये तथा क्रय विक्रय करने के लिये उस द्वीप में प्रवेश किया । अपनी वाखरों (वस्तुओं) का वे महँगा किए हुए भावों में देते थे और उनकी वस्तुओं को वे सस्ते भाव में साट [बदल] लेते थे ।।२०१।।

भाइ – भागिन – साझीदार, सत्संगी । महंघ – महार्घ – महंगा ।

[२०२–२०३]

तहि घणवाहणु पहु चक्कवइ, जो असराल दीव भोगवइ ।
नव निहि चउदह रयण भण्डार, विजयादे राणी सुपियार ।।
तसु कुमरि सिरिमति केइ, जइ वियाधि पीडिय जसु देह ।
जो तहि पहिरइ निसि पइसरइ, कारणु किसही सो जु नर मरइ ।।

अर्थ :—उस (द्वीप) का प्रभु घनवाहन नाम का चक्रवर्ति था जो निरंतर उस द्वीप का भोग (राज्य) करता था। उसके भण्डार में नव निधियाँ तथा चौदह रत्न थे, और अत्यन्त प्रिय विजयादे उसकी रानी थी ।।२०२।।

उसके श्रीमती नाम की राजकुमारी थी जिस की देह व्याधि के कारण पीड़ित थी। जो भी आदमी निशा का प्रवेश होने पर उसका पहरा (पहर पहर तक की रखवाली करना) देता था वह मनुष्य किसी भी कारण मर जाता था ।।२०३।।

[२०४–२०५]

मंत्री मंतु कियउ भलि जोइ, घरि घरि पत्तइ वसइ सबु कोइ ।
सयल लोगु तिन्हि लयउ हकारि, कहीय बात जो बलि वइसारि ।।
कहइ मंति तुम्ह अइसउ करेहु, अपणे ऊसरइ तुम पहिरउ देहु ।
एक पूतु तडि मालिणि केरउ, पडियउ आइताह ऊसरउ ।।

अर्थ :—मंत्रियों ने फिर भलाई देखकर मंत्रणा की, क्योंकि सभी घरों में पात्र (पहरा देने के उपयुक्त युवक) रहते थे। इसलिये उन्होंने सभी लोगों को (मंत्रणा के लिये) बुलाया और उन्हें बैठाकर उनसे बात कही ।।२०४।।

मंत्रियों ने कहा "आप लोग ऐसा करो कि अपनेर ओसरे (पारी) पर

पहरा दो।" वहां एक मालिन के एक ही पुत्र था, उसका उस समय (उस दिन) ओसरा आ पड़ा था ॥२०५॥

[२०६–२०७]

फूल विसाहुण गउ जिणदत्तु, मालिणि कइ घरि जाइ पहुतु ।
रोवइ बुढी हियइ विलखाइ, तबहि वीरु पूछइ वियसाइ ॥
कउण काज ये री आरडहि, काहु कारणि पलावे करहि ।
किसि कारणि दुख धरहि सरीर, वेगि कहेहि हउं जंपइ वीरु ॥

अर्थ :—जिनदत्त फूल क्रय करने के लिये निकला और (संयोग से) मालिन के घर पहुंच गया। बुढिया हृदय से बिलख२ कर रो रही थी; तब उससे वीर जिनदत्त ने विकसित (खुलकर) कारण पूछा ॥२०६॥

अरी किस लिये इस रीति से रोती हो और किस कारण प्रलाप करती हो ? किस कारण शरीर को दुःखित कर रही हो ? उस वीर ने कहा, "मुझसे शीघ्र कहो।" ॥२०७॥

री – रीइ – रीति। पलाव – प्रलाप। जंप –जल्प – कहना।

[२०८–२०९]

रूवन करइ अरु जंपइ वयणु, आसूं बहुत न थाकइ नयणु ।
कहउं तासु जो दुखु अवहरइ, हीणहं कहे कहा सुखसरइ ॥
सुणि जिणदत्त पयंपय ताहि, भली बुरी कहियइ सबु आहि ।
मालिन वातु कहइ मनु सोइ, मन दुख तुझ निवारइ कोइ ।

अर्थ :—यह वृद्धा जिसके आँखों के आंसू नहीं रुक रहे थे, रोती हुई बोली (यह दुख) मैं उससे कहूँ जो उसे दूर कर सके। हीन (असमर्थ) से कहने से कौनसा सुख प्राप्त हो सकता है ॥२०८॥

फिर जिमदत्त उससे कहने लगा "भली बुरी जो भी हो, वह सबसे कहना चाहिए। जो बात तुम्हारे मन में हो, ऐ मालिन, बात वह तुम्हें कहनी चाहिए, जिससे कि तुम्हारा दुःख कोई दूर कर सके ॥२०९॥

[२१०–२११]

कहइ बात बूढी बिलखीइ, इहि काल इनि राइ (प) धोइ ।
जो तहि जागइ राति उहाएए, सो पर दीसइ मुक्कउ विहाण ॥
इहजि कुवरि···बुरी ही टेव, दिन दिन माणसु मारइ देव ।
जो इहि जागइ पहिरइ हुवउ, सो नर भोलइ (न) सियइ मुवउ ॥

अर्थ :—वह वृद्धा रो रो कर कहने लगी, "इस समय यहाँ एक राजा की कन्या है जो कोई वहाँ रात्रि में (उसके साथ) दूसरा (होकर) जागता रहता है वह व्यक्ति सबेरे (दूसरे दिन) मृत दिखाई पड़ता है ॥२१०॥

राज कन्या की यह बहुत बुरी आदत है कि वह दिन प्रति दिन मनुष्यों को मारती है। जो वहाँ जागता है और पहरा देता है, वह भोला आदमी मरा दिखाई पड़ता है ॥२११॥

उह – उभय ।

[२१२–२१३]

एकु पूतु एकअति घरवाहि, कहि गउ डोमु ऊसरउ ताहि ।
पहिरइ आजु पूतु सो मरइ, तह दुखु, पूत हियउ गहबरइ ॥
मालिणि तणी सुणी जमु बत्त, आहूठ जि उससे जिणदत्त ।
इहरं बात पूछियइ अकाजु, पूछित रु दुखु सारउ आजु ॥

अर्थ :—(इस घर में) इकलौता एक ही पुत्र है और डोम (वधिक) कह गया है कि आज पहरे का ओसरा उसी का है। आज के पहरे में मेरा वह पुत्र मरेगा, इसी दुःख से मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है ॥२१२॥

जब उसने मालिन की यह बात सुनी तो जिनदत्त अपने मन में कहने लगा, यह बात मैंने व्यर्थ ही पूछी, किन्तु पूछ बैठने पर तो आज इसका दुःख दूर ही करूँगा ।।२१३।।

[२१४–२१५]

विरलौ नरु परतिय परिहरइ, विरलउ अवगुण कहु गुण करइ ।
विरलउ सामि काजु सयं भीच, विरलउ मरइ पराई मीच ।।
हा हा कारु करइ जिणदत्तु, मालिणियों बोलइ विहसंत ।
रहु रहु माइ म रोवहि खरी, कांइ कुवावहि मइ डोकरी ।।

अर्थ :—विरला ही मनुष्य दूसरे की स्त्री का परित्याग करता है, तथा विरला ही कोई अवगुण करने पर भी गुण करता है । विरला ही भृत्य स्वामी का कार्य करता है तथा विरला ही दूसरे की मौत मरता है ।।२१४।।

जिनदत्त हा: हा: करने लगा तथा मालिन से हँसता हुआ बोला, "हे माता चुप रह चुप रह । इतना अधिक मत रो । हे वृद्धा, तू मुझे क्यों कुढा रही है ।।२१५।।

भीच – भृत्य । मीच – मृत्यु । डोकरी – वृद्धा ।

[२१६–२१७]

जइ मइ बूढण नींदउ चरणु, तहु मइ आदिनाहि जिण आणु ।
कहा पचारहि मूढनि काज, तुव सुउ जउ हमु माहिव्यउ आजु ।।
कहत बात भयौ तीजौ पहरु, आयो डोम हकारउ अवरु ।
तौ जिणदत्त भणइ विहसाइ, मोकौ बाह न सेव्यउ माइ ।'

अर्थ :—यदि मैं वृद्धा के चरणों की निंदा करता हूँ, तो मुझे आदिनाथ की सौगन्ध है । (इस प्रकार) मूर्ख मुझे क्यों व्यर्थ ही ललकार रहे हैं ?

तुम्हारे इस पुत्र को और मुझको (दोनों को) आज उसे मारना होगा ।।२१६।।

बातें कहते हुये तीसरा पहर हो गया । डोम आया और उसने पुकार लगाई तो जिनदत्त हँस करके कहने लगा कि संध्या समय आकर मैं सेवा करूँगा ।।२१७।।

उह – उभय

[२१८–२१९]

मास गंठि पहरण पहरियउ, बीर गंठि करि जूडउ ठयउ ।
लइ कर खडग फरी फटकाइ, खांति तंबोल वसण सौ जाइ ।।
चडत अवास दीठ जब राइ, पणवाहण बोलइ को आइ ।
कउणे कहिउ रायस्यों खरे, यह देव जाइ वसण ऊपरह ।।

अर्थ :—मल्ल गांठ देकर [और द्वन्द्व युद्ध के लिये] उसने कपड़े पहन लिए तथा बीर ग्रंथि कर उसने बालों को बांधा । हाथ में तलवार लेकर फरी (लाठी) को फटकाता (फटकारता) हुआ पान खाता हुआ वह सोने के लिये चला ।।२१८।।

महल पर चढ़ते हुये जब उसे राजा ने देखा तो पूछा कि "कौन जा रहा है ? किसी ने राजा से खड़े होकर निवेदन किया हे देव ! यह पारी पर सोने के लिए जा रहा है ।।२१८।।

तबोल – पान । को – कौन ।

[२२०–२२१]

देखि राउ पछतावउ करइ, अइसउ वीर ऊसरइ मरइ ।
धिय पापिणी लियो ऊचालि, जितनु देखउं तितु देहि निकालि ।।

गउ जिणदत्तु अवास मझारि, सहसर वयणी दीठी नारि ।
आवतु देखि राइ की सुवा, हाथु जोडि आसणु अंगिया ॥

अर्थ :—राजा देख कर पछताने लगा, कि "ऐसा वीर ओसरे (पारी) पर मरेगा । धिक्कार है जिसने ऐसी बुरी चाल कर रखी है जितनों को देखता हूँ वह उनको (मार कर) वहाँ से निकाल देती है ।" ॥२२०॥

जिनदत्त महल के मध्य गया (वहाँ) वह (चन्द्र) वदनी स्त्री दिखाई दी । जब राजा की सुता ने उसे आते हुए देखा तो हाथ जोड़ कर उससे आसन पर बैठने को कहा ॥२२१॥

सुवा – सुता

वस्तु बंध

[२२१]

विजय मंदिरु गयो जिणदत्त ।
तौ विंभउ णिय मणहं, जवु जवु मुछंडि पालंक उठियउ ।
जिमि मुद्ध माणुसु गसहि, मुहु मयंक बोलंति ॥
मिठिया कि अंग वरणहि, हणहि अवरु ण आवहु तुज्झ ।
भणइ वीर फुड वत्त कहि, सिरिमइ सुन्दरि तुज्झ ॥

अर्थ :—जिनदत्त विजय मन्दिर गया । उसे अपने मन में विस्मय किया तब वह (जिनदत्त) (व्यवस्थापूर्वक) पलँग को छोड़ कर अलग जा बैठा । जिस प्रकार मोह मनुष्य को ग्रसता है उसी प्रकार वह चन्द्रमुखी बोली "तुम क्यों अपनी मधुरिमा से मुझे मार रहे हो, और (तुम मेरे) पास (क्यों) नहीं आ रहे हो ? यह सुन कर वह वीर (जिनदत्त) कहने लगा "श्रीमती ? सुन्दरी ! तुम स्फुट (स्पष्ट) रूप से (अपनी) बात कहो" ॥२२२॥

विंभउ – विस्मय ।   जवु – यापय – व्यवस्था करना ।
पालंक – पर्यङ्क – पलंग ।   मुद्ध – मुग्ध ।

[२२२]

राइ सुन्दरि पेखि वर वीरु ॥
को तुहु पर लोय, मह कासु पुत्ति कवणे गवेसिउ ।
परहसु सायर लिंघिवि प्राणि, सत्थे तुहु नयरि पेसियउ ॥
देखि बूढि रोवंति दुहिया, एक्कइ पुत्तु विसाख ।
तिहि सुउ कहुतो मरउ, अइसइ दिण्ण मइ भाष ॥

अर्थ :—राज सुन्दरी उस श्रेष्ठ वीर को देख कर (पूछ कर) बोली । इस परलोक (परदेश) में तुम कौन हो ? तुम किसके पुत्र हो, और किसकी तलाश में हो ? (उसने उत्तर दिया)—(लोक) परिहास के कारण मैंने सागर पार किया और एक (व्यापारी-दल) में यहाँ आकर तुम्हारे नगर में मैंने प्रवेश किया । दुखित वृद्धा को जिसके एक ही विशाख नाम का पुत्र है, रोती देख कर उसके पुत्र के स्थान पर मैं मरुँगा, ऐसा मैंने उसे वचन दिया है ॥२२२॥

पेख – प्र+ईक्ष – देखना । गवेसउ – गवेषणा करना – खोजना सत्थ – सार्थ –व्यापारी दल । पेस् – प्रविश – घुसना, पैठना । दुहिया – दुःखिता ।

[२२३]

ताहं जंपइ राय सुंदरीय ।
परऐसिय पाहुणइं जांहि जांहि, मइ तुह निवारिउ ।
तुम पेखि मोहिउ अण्णु, वस हूं मई अन तुहुं यु मारिउ ॥
एसु अणंतहि रल्ह कइ, मरु खाय मइ माइसि ।
कथा एक वर वीर कहु, निवडइ पहिरउ बइसि ॥

अर्थ :—तब राज सुन्दरी [राजकुमारी] कहने लगी "ऐ परदेशी

पाहुने ! तुम यहाँ से जाओ जाओ। मैं तुम्हें मना करती हूं। तुम्हें देख कर मेरे पिता मोहित हो गये हैं और एक मैं हूं जो तुम्हें मारने जा रही हूँ।" रल्ह कवि [कहता है] इस प्रकार कहते कहते काफी रात्रि बीत गयी और फिर [उसने कहा] "हे श्रेष्ठ वीर एक कथा कहो जिससे पहरा बैठे बैठे [जागते] रात्रि का शेष प्रहर निकल जावे ॥२२४॥

नाराच छंद

[२२४]

ता पहरइ बैठिउ नारि बिठउ बीर भुअंगु ।
बोलइ कुझि सोभि बिरद्धि मोडंति अंगु ॥
कहहि कहा नीकी जाणी, निद सुखु जिमु होइ ।
कहइ बाता जिसि पुरता तब मइ घणा सोइ ॥

अर्थ :—उस पहर में वह नारी बैठी रही और एक वीर [भयंकर] सर्प उसको दिखाई पड़ा। [अतः] वह क्रुद्ध होकर और विरुद्धित होकर तथा अंगों को मोड़ती हुई बोली "तुम कोई भली भांति जानी हुई कथा कहो, जिससे निद्रा-सुख मिले। कथा-वार्ता से वह शीघ्र वहाँ मृत स्त्री [होकर] सो गयी ॥२२४॥

[२२५]

सूती जा महि मंतु सा महि जिणदत्त करई ।
गयउ मसाणि मडउ आणि खाट तलि धरइ ॥
अपुणु सोवइ छिण्णउ होइ खडगु सभालि ।
अज्ज सु आवइ पहिरइ सायइ भरइ अयालि ॥

अर्थ :—जब वह सो गई उस समय जिनदत्त ने यह किया कि श्मशान भूमि जाकर वहाँ से एक मुंडी लाकर खाट के नीचे रख दिया और आप स्वयं

छन्न होकर [छिप कर] तथा तलवार सँभाल कर सोने लगा। [उसने कहा,] यदि वह पहरे में आवेगा तो वह खड्ग से अकाल ही मरेगा ॥२२५॥

खाय – खड्ग – तलवार। अयाल – अकाल – अनुचित समय

[२२६]

एत्तहि ताम्ब गयलह् भाला मुह मंहते नीसरइ ।
कालउ दारुण विसहरु दारणु तहि फोकरइ ॥
हिंडइ चउपासहि दीह सहासहि कालु भमंतु ।
कहि गउ सो पहिरउ जसु हो वइरिउ खूटउ जसु कउ अंतु ॥

अर्थ :—इसी समय (उस राजकुमारी के) मुख में से एक गुरु ज्वाला निकली और वह काला और दारुण सर्प वहाँ (द्वार पर) फुंकारने लगा। वह चारों ओर घूमने लगा मानों दीर्घ काल हँसता हुआ घूम रहा हो। (उसने कहा) वह पहरेदार कहाँ गया, जिसके साथ मेरा बैर है, जो क्षय हो चुका है और जिसका अन्त (सन्निकट) है ॥२२६॥

विसहर – विषधर – सर्प। खूट – क्षी – क्षय होना।

[२२७]

माणसु सुत्तउ निदइ भुत्तउ जाणइ न काइ ।
बोलइ वीरु सा बलधीरु कह भुयंगु नितु खाइ ॥
करि कर दप्पु कालउ सप्पु लागयो (मुं) डइ सु खाणि ।
वीरे पच्चारियि वीनो गालिवि इम इयण लक्खइ खाण ॥

अर्थ :—यह मनुष्य (जिनदत्त) सो रहा है और निद्रायुक्त है; क्या वह (मेरा आगमन) नहीं जानता है ? (यह सुनकर) वह वीर और बलधीर बोला, "वही सर्प रोज खा जाता है।" बड़े गर्व के साथ वह काला सर्प उस

को डसने लगा। (तब) वीर ने ललकार कर उसे गाली दी "अब तू जाने नहीं पाएगा" ॥२२७॥

[२२८]

अरे चोरी खाहि भाजिव जाहि पेटहि पइसि रहही।
आजु अतडउ असिवर मारउ का सुत णर कहाहि॥
एवा कहि आही वेग माहो फिरि तिहि सिरि चंपिउ।
फुक्कारंतउ धरिउ तुरंतउ पुछ धरे पिणु फेरियउ॥

अर्थ :—अरे तू चोरी से खाता है और भाग जाता है और (श्रीमती) के पेट में घुस कर रहता है। आज मैं इसे तलवार से मारूँगा जिससे कौन मा पुत्र नर कहा जायेगा। यह कह कर तथा वेग से जाकर उसने उस सर्प के सिर को धर दबाया और उस फुंकार करते हुये (सर्प) को तुरंत पकड़ कर और फिर उसकी पूंछ को पकड़ कर घुमाया (फिराया) ॥२२८॥

चौपई

[२२९-२३०]

घुणि भुलाइ तहि तलि सिरु करइ, गरबु छाडि विसहरु धर पडइ।
विकल भुयंग देखी मनु धरइ, जीउ मारि को नरयहं पडइ॥
बोलि जणाइ तउ रहु रहु करइ, हाथु होइ तउ हाथहि धरइं।
होंहि पाइ तउ आइ पलाइ, सो वपु आहउ मारउ काइ॥

अर्थ :—उसे भुलाकर उसका सिर तल (भूमि) पर कर दिया, (जिसके परिणाम स्वरूप) गर्व छोड़ कर वह सर्प धरा पर पड़ गया। (अब) उस भुजंग को विकल देख कर वह मन में सोचने लगा कि जीव-वध करके कौन मनुष्य नर्क में पड़े? यदि उसे बोली ज्ञात होती तो वह 'ठहरो ठहरो'

करता, हाथ होते तो हाथ को पकड़ता, पैर होते तो भाग जाता, अतः अब इस शरीर मात्र को क्या कष्ट दूं अथवा मारूं ।।२२९–२३०।।

[२३१–२३२]

जंपइ सेठिपुत्त गुण चाउ, किम करि करउ जीव कउ घाउ ।
हाथ पाउ विणु किमु साधरउ, अयसउ घालि चौपुडी धरउ ।।
घालि चउपुडी धरियउ नागु, फुनि निसंगु होइ सोवण लागु ।
पह फाटी हुवउ भुणसारु, आयो डोमु सु काढण हारु ।।

अर्थ :—गुणों को चाहने वाला वह सेठ पुत्र बोला किस प्रकार मैं जीव-वध करूं ? उस बिना हाथ पैर वाले जीव को कैसे पकड़ूं ? इसलिये इसे ऐसे ही डालकर चौपुटी में रख देता हूं ।।२३१।।

चौपुटी (पोटली, चंगेडी) में डालकर उसने सर्प को रख दिया और फिर निःशंक होकर वह सोने लगा । पौ फटने पर जब सवेरा हुआ तो डोम उसे निकालने आया ।।२३२।।

घाउ – घात । चौपुडी – चतुःपटी – चार छोरों की पोटली । निसंगु – निःशंक ।

[२३३–२३४]

माझ अवास डोमु जबु गयो, खेलत सार वीर देखियो ।
भाजिस पाणु राइसिंह कहइ, कालि असिउ सो खेलत अहइ ।।
पंपि राइ भेटियउ तुरंतु, किमु उव्वरिउ वीर कहि बात ।
भणइ कुमरु इनि नौकउ केह, निरविस भई हमारी देह ।।

अर्थ :—जब वह डोमु महल में गया तो उस वीर को उसने चौपड़ खेलते हुये देखा । प्राण (लेकर) भागते हुये उसने राजा से कहा, "जो कल सोने के लिये आया था वह आज (चौपड़) खेल रहा है ।" ।।२३३।।

राजा ने आकर उससे तुरन्त भेंट की तथा पूछा, "हे वीर, तुम कैसे बच गये ? वह वार्त्ता कहो।" राजकुमारी ने कहा कि इन्होंने (मुझे) रोग से अच्छा कर दिया है अब मेरा शरीर विष रहित हो गया है ।।२३४।।

सार – औषध । नीका – णिक्क – अच्छा ।

[२३५–२३६]

काढि भुयंगु दिखालइ सोइ, भाजी राउ पिछोडडो होइ ।
इहु देव कुमरि पेट नीसरउ, इनि देव सयलु लोग संहरिउ ।।
बाल छोडि तवु भाडे पाइ, सिरियामती वीनी परणाइ ।
बहु दाइजे रयणी अनिवार, घरह जाण चाहइ वणिवार ।।

अर्थ :—उस (जिनदत्त) ने सर्प निकाल कर दिखाया। (जिसे देख कर) राजा भाग कर उसके पीछे हो गया। जिनदत्त ने कहा हे देव ! यह राजकुमारी के पेट में से निकला है और इसीने हे देव ! सब लोगों का संहार किया है ।।२३५।।

यह सुन कर राजा ने अपने बालों को खोलकर (जिणदत्त के) पैरों को झाडा तथा श्रीमती का उसके साथ विवाह कर दिया। दहेज में अनगिनत रत्न दिये। (इसके बाद) वणिक दल घर जाने की इच्छा करने लगा ।।२३६।।

[२३७–२३८]

वणिवर सयल प्रोहण चडहि, तउ जिणदत्त वीनती करहि ।
समदहि देव मोहु चित धरहु, मेरउ साथ जातु हउ घरहि ।।
धणवाहण बोलइ सतभाउ, आधउ देसु करउ निव राउ ।
भो रायणु तुम्ह माहीं खोड, मुहु पुणु पिता तणी अवसेरि ।।

अर्थ :—सभी व्यापारी प्रोहण (जहाज) पर चढ़ गए तब जिनदत्त

ने (राजा से) विनती की, "हे देव मुझे विदा दो। मुझे चित्त में रखना। मेरा सार्थ (व्यापारी–दल) घर (वापस) जा रहा है ॥२३७॥

घणवाहन ने उससे सत्य भाव से कहा, "तुम आधे देश पर निश्चिन्त-रूप से शासन करो। जिनदत्त ने कहा, "हे राजन! तुम्हारी ओर से कोई त्रुटि नहीं है किन्तु मुझे ही मेरे पिता की चिन्ता हो रही है" ॥२३८॥

जातु –कदाचित। अवसेरि – चिन्ता।

[२३९–२४०]

सिरियामती समंदी जबही, चउदह दिन्न आभरण तबहि।
जिनदत्तहि दीने बहु रयण, समदिउ राउ विलखाणिउ बयण ॥
तीरिद खुलइ परोहण चडइ, उवहिदत्तु पाप जु मनि धरइ।
पापी पाय बुधि जबु जडी, काकर बांधि पोटली धरी ॥

अर्थ :—जब श्रीमती को राजा ने विदा किया तब उसे उसने चौदह (प्रकार के) आभूषण दिये। जिनदत्त को भी बहुत से रत्न दिये और राजा ने रोते हुये वचनों से उन्हें विदा दी ॥२३९॥

जहाज पर चढ़ते ही उसके लंगर खोल दिये गये, (किन्तु इसी समय) सागरदत्त के मन में पाप पैदा हुआ। जब उसके (पापी के) पाप बुद्धि बढ़ी तब उसने कांकरों की पोटली बांध कर रख दी ॥२४०॥

समद् – विदा देना। तीरिद – तीर से बंधे हुए लंगर।

[२४१–२४२]

सो घाली र समद महि रालि, कही बीर रयण्णह की माल।
एहा ही धरी रयण पोटली, सो देखि पुत्त समद महि परि ॥
रोवहि बाप न धीरज होहि, काढि पोटली अप्पउ तोहि।
तबहि बीर मनु साहसु धरइ, लागि बरत सायर महि पडइ ॥

अर्थ :—उसने यह पोटली समुद्र में डाल दी और कहा "हे वीर, वह रत्नों की माला है। यह रत्नों की पोटली यहां रखी हुई थी हे पुत्र देख यह समुद्र में गिर गयी है ॥२४१॥

[जिरणदत्त ने कहा,] "हे पिता, आप मत रोइये और धैर्य धारण करिये। मैं पोटली को निकाल करके तुम्हे अर्पित करूंगा। तब वीर [जिनदत्त] मन में संकल्प धारण करके तथा पोटली को लेने के लिये समुद्र में कूद पड़ा ॥२४२॥

अप्पु — अर्पय् — देना।

[२४३—२४४]

गयउ पोटली खोजु पताल, काटी वरत ठेठ अंतराल।
काटी वरत पापीया जाम, सिरियामती धहायउ ताम ॥
इकु रोवइ अरु बोलइ ताहि, छाडे पूत सुसर कत जाहि।
सुसरु सुसरु तुम बोलहि काहु, वह तउ हूंतउ हमरउ दास ॥

अर्थ :—जब वह जिनदत्त पोटली को खोजने के लिये पाताल में गया, तो सेठ ने वह रस्सी ठेठ बीच में काट दी। जब उस पापी ने डोरी को काट दिया तब श्रीमती धाड़ मार कर चिल्लाई ॥२४३॥

वह रोने लगी तो एक बोला "पुत्र ने छोड़ दिया तो श्वसुर कहां गया है" ? लेकिन सागरदत्त ने कहा, श्वसुर २ तुम किसे कहते हो ? वह तो हमारा दास था ॥२४४॥

[२४५—२४६]

उहु को सोगु सखी मति करहि, मोह्यों राजु भोगु मुहु धरहि।
उवहदत्त के वयर्ण सुणेइ, सिरियामती हाथ मुंहु देइ ॥

कुलवहु किट्ठुर कहा चित धरइ, कुंभी नरक पावीया पडहि ।
उवहुवत्त् बोल्लइ सुह वयणु, वहु रोवहि धरु धीजहि नयणु ।।

अर्थ :—सागरदत्त ने कहा, "हे सखी, उसका शोक मत करो। मेरे साथ तुम राज भुक्त भोगो।" जब सागरदत्त के ये वचन उसने सुने तो श्रीमती ने मुख को हाथों से ढक लिया ।।२४५।।

श्रीमती ने कहा, "कुल-वधू के विषय में तुमने चित्त में कैसी भावना धारण कर ली है ? हे पापी ! तुम कुंभीपाक नर्क में पड़ोगे।" सागरदत्त ने फिर उससे सुखकारी वचन कहे, "तुम बहुत रो रही हो, अब नेत्रों को धैर्य दो ।।२४६।।

धीज् — धैर्य देना।

[२४७—२४८]

अइ ज लहर मांहि सती सतभाउ, तो यहु बूडि परोहणु जाउ ।
उहि सत जलदेवी उछलहि, उछलो परोहणु बोलहि मणहि ।।
डगमगास लाग्यो बोहिथु, किउ वणिजारिन्ह मंत उचितु ।
वणिवर सयल परंपर भणहि, बूड्यो बोहिथु इवं करइ ।।

अर्थ :—(वह प्रार्थना करने लगी) यदि "लहरों में सती का सत्यभाव हो तो यह जहाज डूब जावे।" उसके सतीत्व के प्रभाव से जलदेवी उछल पड़ी और उछल कर मन में विचार किया कि जहाज डुबा दे ।।२४७।।

वह बोहिथ (जहाज) डगमगाने लगा। तब व्यापारियों ने एक उचित विचार किया। तथा वे व्यापारी परस्पर कहने लगे, "यह जहाज इसी प्रकार के कार्यों से डूब रहा है।" ।।२४८।।

सतभाउ — सत्य भाव। परोहण —प्रवहण, सवारी। बोल् — बोडय् —डुबाना। मंत —मंत्र — मंत्रणा। परंपर — परस्पर।

[२४६–२५०]

साहु लागि सिरियामति पाइ, कोपु संति करि म्हारी माइ ।
उवहिदत्त तिन्ह कूटणु लयउ, सिरियामती कोपु छंडियउ ॥
चलिउ परोहणु रहिउ उस ठाउ, दीप विलाउलि लागिउ जाइ ।
भवियहु सुणहु सती सतभाउ, बुडसइ उणकासे भउभाउ ॥

अर्थ :—(यह सोचकर) सभी ने श्रीमती के पाँव पकड़ लिये तथा निवेदन किया, "हे हमारी माता! अपने क्रोध को शान्त करो।" वे जब सागरदत्त को मारने लगे तब श्रीमती ने क्रोध त्याग दिया ॥२४९॥

जहाज उस स्थान से चला और एक द्वीप के वेलाकुल (बंदरगाह) पर जा लगा। हे भविको! सती का सत्यभाव सुनो। इसके २४६ भेद हैं ॥२५०॥

विलाउलि —वेलाकुल — बन्दरगाह ।
भविय —भविक — मुमुक्षु ।

[२५१–२५२]

कहइ रल्हु महु यहु संभवइ, ...सु सीलु ता सजि संभवइ ,
भण जिणदत्त पंच पय सरणु, जब जलहर महि आयउ उपरणु ॥
महु जिणिंद सामी की आण, लिउ अणसणु किणु जाहि पराण ।
जइ जिन सुमरत जाहि पराण, होइ जीव पंचम गइ ठाण ॥

अर्थ :—जब जिनदत्त सागर में से ऊपर आया तो उसने कहा, मुझे पंचपरमेष्ठि के पदों की शरण है। रल्ह कवि कहता है कि यह सब शीलव्रत पालने से ही संभव हुआ है। ॥२५१॥

मुझे जिनेन्द्र स्वामी की सौगन्ध है। मैंने अनशन का निश्चय ले लिया है क्यों न चाहे मेरे प्राण चले जाएँ। यदि जिन भगवान का

स्मरण करते हुये प्राण निकल जाएं तो जीव को पंचमगति का स्थान (मोक्ष) प्राप्त हो जावे ॥२५२॥

[२५३–२५४]

सत्तखर पचपंच सुणाइ, कै सुर स…की मोखहि जाइ ।
सही कथा यहु पूरी भई, सागर मज्झि कहुर संभई ॥
विषम समुद्द न जाई तरण, जिणदत्त सुमरइ जिण के चरण ।
जहां जु रहणु वणिवइ हु कियउ, सिरिया धम्मु साथि पाइयउ ॥

अर्थ :—सात अक्षर (णमो अरिहंताणं) एवं पचंपद (पंच परमेष्ठि) का स्मरण करते हुये मरण होने पर या तो वह देव होता है अथवा मोक्ष जाता है। यह समस्त कथा यहां पूरी होती है तथा आगे की कथा सागर के मध्य उत्पन्न होती है ॥२५३॥

समुद्र विषम था जिसे तैरा नहीं जा सकता था। जिणदत्त ने जिनेन्द्र भगवान के चरणों का स्मरण किया। (फलतः) जहां भी वणिकेन्द्र (जिणदत्त) ने रहना किया (ठहरा) श्रीमती के धर्म को अपने साथ (रक्षा करते हुये) पाया ॥२५४॥

[२५५–२५६]

पापी छाडि गुपति सो भई, मिलि संघात चंपापुरि गई ।
सा पुणि गइ जिणिव विहारि, पाय लागि जिणवत्त संभालि ॥
तिय कौ नामु विमलमति सुनिउ, को जिणदत्त सखी हउं भणइ ।
सिरिमति कहइ सुहइ चाहि, तहि कौ घरि वसंतपुरि आइ ॥

अर्थ :—उस पापी को छोड़कर श्रीमती गुप्त होगई तथा एक संघात (समूह) में मिलकर चंपापुर चली गयी। फिर श्रीमती जिन

मन्दिर में गयी तथा उसके (विमलमती) चरणों में लगकर उसने जिनदत्त को पुकारा ॥२५५॥

जब विमलमति ने पति का नाम सुना तो पूछने लगी, "हे सखी। यह जिनदत्त कौन है जिसका नाम तुम ले रही हो? "श्रीमती ने उसके मुख को देख कर कहा, "उसका घर वसंतपुर में है ॥२५६॥

[२५७–२५८]

जीवदेव नंदन सुपियार, सो मेरउ जिरणदत्तु भत्तार।
सो तहि रयरिण ण भोयणु करइ, मरण वय कररण परतिय परिहरइ॥
रहिय तिरिय ते दुख सरीर, सायरु उछलिउ साहस धीर।
.... ॥

अर्थ :—"जो जीवदेव का प्रियतर पुत्र है वही जिनदत्त मेरा स्वामी है। वह रात्री में भोजन नहीं करता है और मन, वचन, काय से परस्त्री का त्यागी है ॥२५७॥

(विमलमती ने कहा,) "हे स्त्री (बहिन) तुम रुको, तुम्हारे शरीर में दुःख है। वह साहसी एवं धैर्यवान सागर में से (उछल कर) निकल आयेगा ॥ ॥२५८॥

(वस्तु बंध)

[२५६]

विसमु सायरु गहिर गंभीरु।
तहि चिहु उछलिउ कठखंड पुण्णेण लद्धउ।
तहि तुरंतु हविकउ समरु, विहिवसेरण तहि काइ सिद्धउ॥
तरिवि महोवहि भवियरगहि, रिगसुणहु अंजि सिहेद।
देखि रहइ तहि पुण्ण फलु, विज्जाहरि परिणेइ॥

अर्थ :—समुद्र विषम, गहरा एवं गंभीर था। वहाँ लकड़ी के टुकड़े उछल आए जिन्हें उसने पुण्य-प्रताप से प्राप्त कर लिया। उसे शीघ्र ही एक विद्याधर ने बुलाया तथा कहा [देखो] भाग्य से कार्य सिद्ध हो गया। रल्ह कवि कहता है, उस महोदधि को तैर कर भव्य जनो! सुनो, जो कुछ उसने प्राप्त किया। उसके पुण्य-फल (प्रभाव) को देखो कि किस तरह विद्याधरी ने उससे विवाह किया ॥२५९॥

हक्क – आक्कारय् – बुलाना। खयरु – खचर–आकाश में विचरने वाला विद्याधर। महोयहि – महोदधि

[२६०–२६१]

बूडउ वीर तहां उछलइ, भुजादंड सो सायरु तिरइ।
सूके सेंबल के पुर खंड, णासो आयो धम्म करंड ॥
देखत विज्जाहर आवही, वाउवेग महावेगु धावहो।
अरे रि किसु मरण बुधि तुहि गई, छांडि समुद्द तीरहि मनई ॥

अर्थ:—वह डूबा हुआ वीर वहां उछल पड़ा और अपने भुजादंड से सागर को तिरने लगा। सूखे सेमल का एक टुकड़ा धर्म-करंड (पेटिका) के समान उसके न्यास आया (धरोहर के रूप में मिला) ॥ २६० ॥

विद्याधरों ने उसे आता देखा तो वे वायुवेग तथा महावेग उसकी ओर दौड़े। उन्होंने कहा, "अरे कैसी मरने की बुधि तुम्हें हुई है जो तुमने इस समुद्र को छोड़ कर तीर पर आने का संकल्प किया है?"

णास – न्यास – स्थापना, धरोहर

[२६२–२६३]

कवणु भाइ बोलइ ति पचार, जाहि ण वपुडा घालहि मारि।
रयणु निहाणु जहां हउ रहिउ, ओ जलु कवणु तरण तुहि कहिउ ॥

कायर मारु मारु पभणोहि, गडयड करहु समद जिम मेहु ।
उन्नति करि गजहि अपमाण, विहडि जाहि दीसहि न निपाण ।।

अर्थ :—वे ललकार कर कपट भाव में बोले, "यह वप्पुडा (असहाय) जाने न पावे, इसे हम मारेंगे । यह रत्न–निधान (रत्नाकर) है जहां मृत्यु रहती है । इसके जल को पार करने के लिए तुमसे किसने कहा है ?" ।। २६१ ।।

वे कायर जन मारो मारो कहने लगे । जिस प्रकार समुद्र में मेघ गर्जना करते हैं, उसी प्रकार उमड़ कर वे अप्रमाण (अपरिमित रूप में) चिल्लाने लगे । "यह विघटित हो जाए (टुकडे २ हो जाए) और यह जलाशय समुद्र में दिखाई न पड़े ।। २६२ ।।

हइ – हति – मृत्यु ।

[२६४–२६५]

महिमह मारणु बोलइ जोइ, सो मरइ चिंत मणुसु न होइ ।
मारि जु पाछइ मारणु कहइ, सोजि वीर मुणसाइ लहइ ।।
कहइ जिणदत्त छुरी करि तोलि, आवहु अज्ज न मारउ बोलु ।
तो न मुणसु जो अैसौ करउ, मारि छुरी दह दिह विखरउ ।।

अर्थ :—जो मध्य में ही मारने के लिये कहता है वह चिन्ता करके मरता है तथा (पुन:) मनुष्य नहीं होता है । पहिले मार करके जो पीछे मारने के लिये कहता है, वही वीर मनुष्यता प्राप्त करता है । ।। २६४ ।।

छुरी को दिखला कर जिनदत्त ने कहा आओ, मारने के बोल मत बोलो । जो ऐसा नहीं करेगा उसे छुरी मार कर दशों दिशाओं में फेंक दूंगा । ।। २६५ ।।

[२६६–२६७]

भरणहि खयर पहु धादि नु होज, हाथ समुद्द पइरतु हइ जोइ ।
रहु रहु वीर कोपु जणि करहि, चडि तू विमाण हमारे चलहि ॥
धालि बिमाण लयो जो तहा, भणइ वीर लइ जइह कु किहा ।
वसहि विज्जाहर गिर उप्परहि, तुह्यु लेइह जइह रयनुपुरहि ॥

अर्थ :—खेचरों (विद्याधरों) ने कहा, "यह वीर कम नहीं है जो अपने हाथों से समुद्र को तैर रहा है (पार कर रहा है)।" वे कहने लगे, "हे वीर, शान्त हो कोप न कर! तू विमान पर चढ़ और हमारे साथ चल ॥२६६॥

विमान पर चढ़ा कर जब वे जाने लगे तो उस वीर ने पूछा, "तुम मुझे कहाँ ले जा रहे हो? उन्होंने कहा," इस पर्वत के ऊपर विद्याधर लोग रहते हैं, उस रथनूपुर नामक स्थान पर तुझे ले जावेंगे ॥२६७॥

रथनूपुर नगर—वर्णन

[२६८–२६९]

तहि असोक विज्जाहर राउ, असोक सिरी राणि कहु भाउ ।
णं सुरेंद्र जो थापिउ सुरहं, गरुव णरेंद सेवउ सु करहं ॥
साहण वाहण न मुणउ अंतु, करहि राजु मेइणि बिलसंत ।
अंतेउर चउरासी राणि, तिन्हु के नाम रल्हु कवि जान ॥

अर्थ :—"वहाँ पर अशोक नामका विद्याधर राजा है और उसकी रानी का नाम अशोकश्री है। मानो इन्द्र ने ही वहां स्वर्ग की स्थापना की हो और जिसकी सेवा बड़े बड़े नरेन्द्र करते है।" ॥२६८॥

"उसके साधन-वाहनादि का अंत न जानो। इस प्रकार वह राज्य करता तथा पृथ्वी का भोग करता है। उसके अन्तःपुर में ८४ रानियां है जिनके नाम रल्हु कवि कहता है मैं जानता हूँ।" ॥२६९॥

[२७०–२७१]

कानडि गूजरि अरु मरहटी, लाडि चोडि दक्षिण सोरठी ।
पूरबिणी कणउजि बंगालि, मंगाली तिलंग सुरतारि ।।
दमडी गउडी करणा भणी, रूपादे कंचणदे घणी ।
उपमादे भामादे नारि, अचाभउ सुतभउ रुव मुरारि ।।

अर्थ :—"कन्नडी, गूजरी, महाराष्ट्रीय, लाडी, चोली, दक्षिणी, सौराष्ट्री, पूरबिनी, कन्नौजिनी, बंगालिनी, मंगाली ? तैलंगी, सुरतारी, द्रविडी, गौडी, करणा, रूपादे, कंचणदे, उपमादे, भामादे और अचाभउ सुतभउ रूप-मुरारी ।। २७०–२७१ ।।

[२७२–२७३]

चित्तरेह तहिवर सो रेख, कित्तरेख जणु सोवन्न रेख ।
गुणगा सुरगा नवरस बेइ, भोगमति गुणमति भणेइ ।।
उरभादे रंभादे कांति, विहसणदे अछइ विलसंति ।
सुभयादेवि रूपसुन्दरी, पदमावती मयणसुन्दरी ।।

अर्थ :—यहां चित्त रेखा है, जो वह श्रेष्ठ रेखा वाली है, और कीर्ति-रेखा है जो मानों स्वर्ण-रेखा है; नव रसों का आनन्द देने वाली गुणगा और सुरगा है और भोगमती एवं गुणमती कही जाती है। ।।२७२।।

उरभादे एवं रंभादे हैं। जो कांतिमती है तथा विहसणदे रानी है जो सुशोभित रहती है। सुभयादेवी, रूपसुन्दरी पद्मावती और मदनसुन्दरी हैं। ।। २७२–२७३ ।।

[२७४–२७५]

मारोणी कन्हादे राणि, सावलदे सुहगादे जाणि ।
रेह सुमई सुय पवमणि, भोगविलासनि हंसागमणि ।।

दरसणिदे मुखसेणावलि, तारादे कहु रल्ह सभालि ।
मंदोवरि अरु चंद्रामती, हीरादे राणी रेवती ।।

अर्थ :—"मारोगा कल्हादे राणी हैं, सांभलदे और मृहादे को जानो; रेखा, सुमति सुता पद्मिनी हैं। तथा भोगविलासिनी, हंसगामिनी हैं।" ।।२७४।।

दर्शनदे, मुखसेणावली, तारादे (के नाम) रल्ह कवि स्मरण कर कहता है। मंदोदरी, चन्द्रमती, हीरादे तथा रेवती रानियाँ हैं ।।२७५।।

[२७६–२७७]

सारंगदे अरु चंद्रावयणि, वीरमदे राणी भावती ।
गंगादे राणी गजगमणि, कमलादे अरु हंसागमणि ।।
मुक्तादेवि रुव आगली, चित्तिणि हंसिणि अरु पद्मिनी ।
सोनवती वरंगत हो घणी.. ।।

अर्थ :—"सारंगदे, चन्द्रवदनी, मनको भावने वाली राणी वीरमदे, गंगादे, रानी गजगामिनी, कमलादे और हंसगामिनी हैं।" ।।२७६।।

"मुक्ता देवी है जो रूप में बड़ी चढ़ी है, चित्तिणी, हंसिणी एवं पद्मिनी रानियाँ हैं। सोनवती अत्यधिक सुन्दर स्त्री है............ ।।२७७।।

[२७८–२७९–२८०]

अवलो बाला पोढा तिरी, पियसुन्दरी सुमहल मनपुरी ।
मोरवती रामा अविचार, भोगवती कइलास कुमारि ।।
श्रीवसंतमाला सोभाय, हरइ चित्त कामिणी कहाय ।
सव्वइ दानि दारिद्द घालहि, सव्वइ जसोहराय चालही ।।
कला विनोद छंद अरु करहि, सुरय पसंगि राइ मन हरहि ।
गीत विनात जाण पयडंति, हाव भाव विभ्रम सुधरंति ।।

अर्थ :—पुनः अवलीवाला प्रौढ़ा स्त्री है। प्रिय सुन्दरी, मन को प्रसन्न करने वाली सुमइल्ल (सुमति) देवी, मोरवती, रामा, भोगवती तथा कैलाश कुमारी हैं" ॥२७८॥

"श्रीवसंतमाला कही जाती है जो अपने कटाक्षों से चित्त को हरण करने वाली है। सभी रानियां दानी और दरिद्रता को दूर भगाने वाली हैं। ये सभी रानियां अशोक राजा की वल्लभाएँ हैं" ॥२७९॥

"वे विविध प्रकार के कला विनोद तथा छंद रचना करती हैं, सुरत-प्रसंग द्वारा राजा के मन को हरती हैं। गीत-विज्ञान तथा ज्ञान को प्रकट करती हैं तथा वे हाव-भाव एवं विभ्रम धारण करती हैं" ॥२८०॥

[२८१–२८२]

अइसौ सयल अंतेउर सा थाटु, असोगसिरी राणी कहु पाट ।
तहि कुलिसंणि चंगी खरी, छइ सिंगारमइ विज्जाहरी ॥
को तहि कहइ अंग सोवण्ण, जीती रूव ताल लोचन्न ।
राइ असोग पुछिउ मुनिनाहु, धीयह वरु सो सामि कहाहु ॥

अर्थ :—"ऐसा (उस राजा का) सम्पूर्ण रनवास का थाट (ठाट) है। उसकी अशोकश्री पट्टरानी है उसके कुल की मर्यादा स्वरूपा अत्यधिक सुन्दरी तथा विद्याधरी शृंगार मती नाम की पुत्री है" ॥२८१॥

उसके स्वर्ण के सदृश अंगों का कहां तक वर्णन करें। उसने रूप और ताल में लोचन को जीत लिया है। राजा अशोक ने मुनिवर से पूछा "हे स्वामी मेरी पुत्री का कौन पति होगा उसे कहिये" ॥२८२॥

[२८३–२८४]

हाथ उर्वाहि जो पइस्सु होइ, कन्या कउ वरु होइसइ सोइ ।
विजाहर राइ अैसाउ कहिय, तउ हमु आइ समुद्द तल रहिय ॥

मुह तुरंतु भेटियउ इह ठाउ, बेगि चालि परिणावहि आइ ।
गए बिज्जाहर पुरी मंझारि, गुड र तोरण ऊभे बारि ।।

अर्थ :—(उन्होंने उत्तर दिया,) "अपने हाथों से इस समुद्र को तैरता (पार करता) हो, वही इस कन्या का स्वामी होगा।" जब विद्याधर राजा ने हम से ऐसा कहा और तभी से यहां आकर समुद्र-तट पर रह रहे हैं ।।२८३।।

"इसलिये तुम उस स्थान पर चलकर राजा से भेंट करो तथा शीघ्र चलकर (उसकी कन्या से) विवाह करो।" (यह सुनकर) वह विद्याधरों की नगरी में गया जहां गुड़ी एवं तोरण द्वार पर लगे हुये थे ।।२८४।।

उवहि – उदधि ।

सोलह विद्याओं की प्राप्ति

[२८५–२८६]

देखि वीर आनंदउ खयरु, परिणाविय सिंगारमई कुमरि ।
राय सोग तह काइ करेइ, अगनिउ दानु दाइजौ देइ ।।
सिद्धुज पदार्थ मूंदडी मिली, बिज्जा सोलह पाई भली ।
गगनगामिनी बहुरूपिणी, पाणिउसोखणी कलथंभणी ।।

अर्थ :—उस वीर को देख कर वह विद्याधर आनन्दित हुआ तथा अपनी कुमारी शृंगारमती का उसके साथ विवाह कर दिया। राजा अशोक ने क्या किया कि दायजे में अगणित धन दिया ।।२८५।।

उसे (दहेज में) सिधुज पदार्थों की मुद्रिका मिली एवं सोलह उत्तम विद्याएँ प्राप्त हुईं। वे हैं गगनगामिनी, बहुरूपिणी, जलशोषिनी तथा कलस्तंभिनी ।।२८६।।

[२८७–२८८]

हियलोकणी सुइंछिउ देइ, अगिथंभ थंभणिउ करेइ ।
सव्वसिद्ध विज्जातारणी, पयालगामिणी अरु मोहणी ।।
चिंतामणि गुटिका सिद्धि लहइ, गुपति निहाणु अंजणी कहइ ।
माणिकु देइ रयण वरसिणी, सुभ दरसिणी भुवण गामिणी ।।
रसण अणेय भेय रसु देइ, वज्ज सरीरु वज्जणी थेई ।।

हृदयलोकिनी जो स्वइच्छित देती है, अग्निस्तंभिनी (आग से) स्तंभन करती है । सर्वसिद्धि, विद्या तारिणी, पाताल गामिनी एवं मोहनी ।।२८७।।

चिन्तामणि गुटिका जिससे सिद्धि प्राप्त होती है तथा गुप्त तथा निधान (गाड़ी हुई) वस्तुओं को कहने वाली अंजणी, रत्नवर्षिणी जो माणिक देती है, शुभदर्शिनी, भुवनगामिनी, रसना जो अनेक भेदों का रस देती हैं और वज्र जैसा शरीर बनाने वाली वज्रिणी विद्याओं को उसने प्राप्त किया ।।२८८।।

[२८९–२९०]

अवर पन्न लई तहि भली, तिमिर दिठि विज्जा तहु मिली ।
अणीबंध धारा बंधणी, सव्वौसही तहि भणी ।
वलि विज्जउ जिणदत्त लिलार, सोलह विज्जा लइय विचार ।
विज्जतु की देखइ जु पमाणु, हुवकारिउ मनु चिंतिउ जु विमाणु ।।

अर्थ :—उस प्राज्ञ ने वहाँ और भी विद्याएँ ली । तिमिर दृष्टि विद्या (अन्धकार में देखने की विद्या) भी उसे मिली । अणीबंध तथा धारा बंधणी और सर्वौषधि विद्याएँ सब उसने प्राप्त की ।।२८९।।

जिनदत्त का ललाट विद्या वलित हो गया । उसने विचार करके सोलह विद्याएँ ली जिससे उसका मुख चमकने लगा । उसने विद्याओं की

परीक्षा करने के लिये मन में जिस विमान का विचार किया उसको बुलाया ॥२९०॥

पणं – पण्ण–प्राज्ञ । हक्कारिउ – बुलाया ।

[२९१–२९२]

आयउ जगमगंतु सो तित्थु, जीवदेव नंदणु हइ जित्थु ।
विज्जा भणइ निसुण जिणदत्त, वंदि अकिट्टमि जिणभवणत्तु ॥
तहि जिणदत्तु तिरिय वीसरइ, मण चितिम पासि उपमइ ।
फिरि कैला (स) वंदि जिणदेव, वंदि करिवि आयो तहि खेव ॥

अर्थ :—और जगमगाता हुआ वह विमान वहीं पर आ गया जहाँ पर वह जीवदेव का पुत्र (जिनदत्त) था । इस विद्या ने जिनदत्त से प्रार्थना की "अकृत्रिम चैत्यालय की वंदना करने चलिये" ॥२९१॥

फिर जिनदत्त ने अपनी विस्मृत स्त्री को मन में विचारा तो वह पास आ गयी । फिर कैलाश पर जिनदेव की वंदना करके वापिस वहीं आ गया ॥२९२॥

नोट—कैलाश पर्वत भगवान् आदिनाथ का मोक्ष स्थान है ।

[२९३–२९४]

आइ णयरि ते राजु कराहि, पुणु असोग सिउ बात कराहि ।
समवइ देवति भेटण जाहि, माय बापु अवसेर कराहि ॥
कहइ विज्जाहरु एमु करेहु, आधौ देसु को राजु तुम लेहु ।
भणइ वीर हमु यहु न सुहाइ, तातु गवेसिउ करि हुउ जाइ ॥

अर्थ :—वे नगरी में आकर राज करने लगे । फिर उसने अशोक राजा से बात की और कहा, "हे देव ! तुम मुझे विदा दो तो माता तथा पिता से मिलने जाएँ । वे मेरी चिन्ता कर रहे हैं" ॥२९३॥

विद्याधर ने उससे कहा, "तुम ऐसा करो कि तुम आधा देश का राज्य ले लो (और यहीं रहो)।" और (जिनदत्त) ने कहा, "मुझे यह अच्छा नहीं लगता है। मैं जाकर माता-पिता की सेवा करूँगा" ।।२६४।।

[२६५]

राय संघि पुणु नीकउ कीयउ, कडइ चूड करि मंडिय धीय ।
अर मनु चिंतिउ दिन्नु विमाणु, तहि दियइ रयण अपमाण ।।

अर्थ :—राजा अशोक ने फिर यह सत्कार्य किया कि अपनी लड़की को कड़इ (कड़ा) तथा चूड़ा (आदि आभूषणों) से मंडित किया और उसे मन चाहा विमान दिया तथा अप्रमाण (अनन्त) रत्न दिये ।।२६५।।

तहि – तहा–तथा

संपापुरी के लिये प्रस्थान

[२६६–२६७]

विपहि विमाणं रयण घाघरी, पालक सेज सुहाइ धरी ।
ठइयो हंसतूल विचि छाइ, समवत राय सीउ विलखाइ ।।
उतरि विमाणहि ठाडउ भयउ, बिणउ करि विणु पूजण लयउ ।
गिरु मणु चिंतिउ अखउ तोहि, चंपापुरि लइ घलहि मोहि ।।

अर्थ :—वह विमान रत्नों की झालर से चमक रहा था, जिसमें एक सुन्दर पर्यंक-शय्या रक्खी हुई थी। हंस के समान उस विमान में वह बैठ गया और राजा अशोक ने उसको बिलखते हुए विदा किया ।।२६६।।

विमान से उतर कर वह खड़ा हो गया। दोनों हाथों से उसने फिर (भगवान की) पूजा की। पुनः विमान से कहा, "मनमें विचार करके निश्चयपूर्वक मैं तुमसे कहता हूँ, तू मुझे चंपापुर ले चल ।।२६७।।

विण ८. विण्ण–दोनों ।

[२९८–२९९]

सो विमाण ठिय रयणनु भरइ, विज्जाहरिय कंति सिहु चडइ ।
विग्ग विचित्तिहु वेगइ गहो, चंपापुरिय रायसिउ कहे ।।
चंपापुरि णयरी पइसारि, वाडी देखत भई बडी वार ।
अंथइ सूरु मेरु तल गयो, पहिली राति पहर इकु भयो ।।

अर्थ :—पुनः रत्नों से वह विमान भर गया तथा विद्याधरी अपने कान्त (जिणदत्त) के साथ उस पर चढ़ी । राजसिंह (कवि) कहता है कि वह विमान शीघ्र ही चंपापुरी पहुँच गया ।।२९८।।

चंपापुरी नगरी के प्रवेश-मार्ग पर वाड़ी (उद्यान) देखते उसे बड़ी देरी हो गई । सूर्य अस्त होकर मेरु के तले (पीछे) चला गया तथा इस प्रकार (वहाँ) प्रथम रात्रि का एक पहर व्यतीत हो गया ।।२९९।।

विग्ग – विज्ञ ।

[३००]

जंपइ वीर नारि सुनि झत्ति, पहिरे अज्जु विलवहु राति ।
भणइ तिरिय मइ लाइव रोय, पहिलउ पहिरउ मेरउ देव ।।

अर्थ :—वीर जिनदत्त विद्याधरी से कहने लगा, "हे नारी (स्त्री) शीघ्र सुनो; आज की रात्रि पहरे में बिलमाओ (व्यतीत करो) ।" स्त्री ने कहा, "मैं रुचिपूर्वक करूँगी । प्रथम पहरा हे देव, मेरा हो" ।।३००।।

झत्ति – झटित–शीघ्र । रोय – रोच–रुचि ।

[३०१–३०२]

सोवइ तहि जिणदत्त अघाइ, राउ विरउ पहरु तिहि जाइ ।
भउ परतूस पहरु दुइजौ आइ, जागि वीरु सोवइ विहसाइ ।।

सुरण तू राइ असोगह धीय, जागत बहुल रयरण सो भईय ।
थोलु एकु बोलहि स भरणी, हूं जागउ तू सोवहि घरणी ।।

अर्थ :— वहां जिनदत्त अघाकर (थक कर) सोने लगा तथा एक पहर रागविराग में व्यतीत हो गया । जब दूसरा पहर हुआ तो उसे प्रतोष (संतोष) हुआ और वीर (जिरणदत्त) जाग कर हँसता हुआ बोला ।।३०१।।

"हे राजा अशोक की पुत्री ! तू सुन : तुझे जागते हुए बहुत रात्रि हो चली है । मैं तुझसे एक बात कहता हूं कि अब मैं जागता हूँ और तू खूब सो जा" ।।३०२।।

राउ – राग । विरउ – विराग । रयरण – रजनी ।

[३०३–३०४]

पिय वाल्हे सुरणहि मो बात, अवधिउ बोल म बोलहि कंत ।
पिय दुक्खु देइजु घरणी सुखियाइ, तह पतिवारु अहुलउ जाइ ।।
सती तिरीते नाह सुजारण, सामी आगइ देहि पराण ।
सुणि साई मेर जु भत्तार, नाहि मोहि पवइ इतिवार ।।

अर्थ :—(स्त्री ने कहा,) "हे प्रिय वल्लभ ! मेरी बात सुनो; छोटे बोल हे कान्त, न बोलो । जो प्रिय (पति) को दुख देकर घने सुख उठाती है उसका पतिवारा (विश्वास) निष्फल जाता है ।।३०३।।

सती वह है जो (अपने) सुजान (नाथ) के सामने (अपना) अस्तित्व मिटा दे और जो स्वामी के आगे प्राण दे । हे स्वामी सुनो; "तुम मेरे भर्तार हो, (किन्तु आपकी बातों पर) मुझे एतबार (विश्वास) नहीं हो रहा है" ।।३०४।।

[३०५–३०६]

जइ तुम्हि जागत अवसुणु होइ, तो मुहि लोणु ण सलहहि कोइ ।
वालम पाछइ करहि कुकम्मु, ना तिन्ह तिरिय धीपुमा जम्मु ।।

सो जिणवत्त रूसि बोलेइ, कोलिउ भंखहि बावली भइ ।
सोवहि घणी म लावहि खेऊ, घड़ी एक हूउ पहिरउ देउ ।।

अर्थ :—"यदि तुम्हें जागते हुए अवगुण (कष्ट) होता हो तो कोई भी लोग मेरी सराहना न करेंगे। वल्लभ (पति) के पीछे जो (स्त्री) कुकर्म्म करती है वह स्त्री नहीं कुत्रिया है उसे मनुष्य जन्म दुबारा नहीं मिलता है ।।३०५।।

जिनदत्त तब रुष्ट होकर बोला, "तुम पागल होकर यह सब क्या बक रही हो। तुम घनी (नींद) सोओ तथा मन में जरा भी खेद मत करो। अब एक घड़ी मैं पहरा दूंगा" ।।३०६।।

बौने के रूप में

[३०७—३०८]

विलखवि घणी नींद मनु कीयउ, बीती रयणि सूर ऊगयो ।
करइ कपटु बावण उणि जासु, हुइ बावणउ छाडि गऊ तासु ।।
परछनु आइ देखइ तिरिय, घण सत सिहु छइ किसउ टलोय ।
आपणु गुपत नयर महि फिरइ, जागि नारी सो कारणु करइ ।।

अर्थ :—विलखती हुई उस स्त्री ने घनी नींद की इच्छा की [और सो गई । रात्रि बीती और सूर्य उदित हुआ। उससे कपट करके (जिनदत्त ने) बौने का शरीर बना लिया तथा बौना होकर अपनी स्त्री को छोड़ गया ।।३०७।।

छिप-छिप कर वह अपनी स्त्री को देखने लगा कि वह (स्त्री) सत सेहै अथवा सत को उसने छोड़ दिया है। स्वयं वह गुप्त रूप में नगर में फिरने लगा। जब वह स्त्री (विद्याधरी) जगी तो कारण करने (रोने-चिल्लाने) लगी ।।३०८।।

वस्तु बंध

[३०९]

धरण विधयन ललित सुकुमाल ।
खीणोयरि ससिवयणि कणय चूडमणि हार मंडिय ।
सोवंतिय णींद भरि पियगुण गतहि काइ छंडिय ॥
पुणु धम्मक्किय जोवइ दिसइ, उठि जवु जोइय पासु ।
मज्झु विमाणहि रल्हु कइ तिरी न देखइ तासु ॥

अर्थ :—वह धन्या (स्त्री) सुख सम्पदा में पली हुई सुन्दर एवं सुकोमल थी। वह क्षीणोदरी तथा शशि वदना थी; स्वर्ण चूड़ामणि एवं हार से मंडित (सुशोभित) थी। नींद भर सोते हुए वह गुणगत प्रिय (पति) द्वारा क्यों छोड़ दी गई? पुनः (तदनन्तर) धमकी (स्तंभित) होकर दिशाओं में देखने लगी। अपने पार्श्व (बगल) में देखा तो रल्हु कवि कहता है कि विमान के मध्य उस स्त्री को वह दिखाई नहीं दिया ॥३०९॥

[३१०-३११]

उठि तिरिय जु जोवइ पासु, मज्झि विमाण न देखइ तासु ।
कलिमलाइ ऊंचे चढि धाह, णाहु णाह करि मूकी धाह ॥
अति गहु करि सामियउ लागि एउ, मइ पापिणी मोंकमणि कीधउ ।
लोग कहनउ साचौ भयौ, जागत चोर नु कुंद मुसि गयऊ ॥

अर्थ :—स्त्री ने जो उठकर पास (बगल) में देखा तो विमान में उसे नहीं पाया। अकुला कर विमान पर ऊंची चढ़ करके स्वामी! स्वामी! करते हुए उसने धाड़ मारी (वह जोर से रोने लगी) ३१०॥

अत्यधिक आग्रहपूर्वक मैंने स्वामी को पकड़ा था किन्तु मुझ पापिनी

से नींद (सोने) की इच्छा की। लोगों का कहना सच्चा हो गया कि जागते हुए किसी को भी चोर नहीं चुरा सका है ॥२११॥

गह — आवेश–आसक्ति–तल्लीनता। मूष — मुष — चुराना।

[२१२–२१३]

गही वॅरि वॅरि कूटइ हियउ, कवणु दोसु मइ सामी कीयउ।
जणु कछु औगण दीठउ नाह, तउ काहे मूकी वण माह॥
कियो मोहि वज्र को हियउ, कि दइवि पाहण निम्मवियउ।
सून विमाण देखि विलिखाइ, किन फाटहि हियडा चरडाइ॥

अर्थ :—आवेश में भी (आकुल-व्याकुल होकर) वह अपनी छाती कूटने लगी (तथा कहने लगी), "हे स्वामी, मैंने कौनसा अपराध किया है और यदि तुम्हें कुछ भी अवगुण नहीं दिखा है, तो फिर क्यों वन के मध्य तुमने मुझे छोड़ दिया ॥२१२॥

क्या (विधाता ने) मेरा वज्र का हृदय किया है अथवा उस दैव ने उसको पाषाण से निर्माण किया है ?" सूने विमान को देखकर वह रोने लगी तथा कहने लगी, "मेरा हृदय चरड़ा (चरचरा) कर क्यों नहीं फट जाता ?" ॥२१३॥

[२१४–२१५]

तुहि दीठइ मुहि रहहि पराण, तुहि दीठइ पर जियउ णियाण।
तुहि विनु अउर न देखउ आंखि, पिय जिणदत्त जिणेसर साखि॥
लइय मया मूकी निसएस, काहे पिय छाडी परदेस।
जन किमु इ नाह विनु जियउ, इव किमु देखि सहारउ हियउ॥

अर्थ :—तुझे देखने पर ही मेरे प्राण रहेंगे तथा तुझे देखने पर ही मैं

जी सकती हूं। तुम्हारे बिना मैं दूसरे किसी को भी इन आंखों से नहीं देखती हूं, जिनेश्वर मेरे साक्षी है कि जिनदत्त ही मेरा प्रिय पति है ॥३१४॥

ऐसी रात्रि में तुमने मुझे (कैसे) छोड़ दी ? हे प्रिये मुझे परदेश में क्यों छोड़ दिया ? तुम्हारे बिना मैं कैसे जीऊंगी तथा अब किसको देखकर हृदय को संभालू ? ॥३१५॥

मया – स्नेहपूर्वक।

[३१६–३१७]

जिणवत्त जिणदत्त विरहिणि भणइ, कवरण केहियउ सेठिस्यो जाइ।
रोवइ विमलु रहावइ नारि, करि उछंग लइ गयउ विहारि॥
णाहयर गयउ जिणेंद विहार, पाय लागी जिणवत्त सम्हारि।
पिय को नाउ विमलमति सुणइ, को जिणवत्त सखी तू भणइ॥

अर्थ:—वह विरहिणी, जिनदत्त जिनदत्त कह रही थी, यह बात सेठ से जाकर किसी ने कही। (वह सेठ) विमल रोने लगा तथा उस नारी को सान्त्वना देने लगा। तदनन्तर उसे हाथ का सहारा देकर जिन मन्दिर में ले गया ॥३१६॥

वह फिर जिन मन्दिर में चली गई तथा (जिनेन्द्र के) चरणों में पड़कर भी जिनदत्त को स्मरण करने लगी। जब विमलमती ने अपने प्रिय (पति) का नाम सुना तो उसने उससे पूछा, "हे सखी, तू कौनसे जिनदत्त का नाम ले रही है" ॥३१७॥

[३१८–३१९]

विज्जाहरी कहइ सुणि सखी, णिय जणणी जयंजसि कही।
जीवदेव नंदणु वरु भयउ, सोवंति छांडि कहिं पिउ गयउ॥

बूझइ तिरिया कहहि तुरंतु, हमु पुणु अछहि तासु की कंति ।
तिन्यो तिरिया अछहि ठाइ, बाहुडि कथा वीर पहि जाइ ।।

अर्थ :—विद्याधरी कहने लगी, हे सखी सुन, "उसने माता का नाम जीवंजसा बताया था और कहा था कि वह जीवदेव का श्रेष्ठ पुत्र है। किन्तु वह प्रिय कल मुझे सोती हुई छोड़ कर चला गया। ।।३१८।।

उन दोनों स्त्रियों ने भी उसी समय कहा- "हम भी उसी की कान्ताएं (पत्नियां) हैं।" फिर वे तीनों स्त्रियां वहीं रहने लगीं। अब लौट कर कथा का प्रसंग वीर जिनदत्त के पास जाता है ।।३१९।।

बाहुडइ — व्याघुट–लौटना ।

[३२०–३२१]

बहुक चोजु नयरी महि कियउ, पुणु बुलाइ राजा पूछियउ ।
कहहि जाति कुल अपुणउ ठाउ, पुणु कौतूलहु दरिसहि घणउ ।।
कहइ बात बइठिउ बावणा, हमु देव सामी बाभणा ।
गीत कला गुण जाणहि सव्वु, मह्नु वेउ कम्मु नाउ गंधव्वु ।।

अर्थ:—नगरी में अब उसने (जिनदत्त ने) बहुक (अनेक) चमत्कार के कार्य किए तो उसको राजा ने बुलाकर पूछा, "अपने कुल, जाति एवं स्थान को बताओ और अपने घने कौतूहल (चमत्कार) भी दिखाओ" ।।३२०।।

वह बौना बैठ कर कहने लगा, "हे स्वामी हम ब्राह्मण देव हैं। मैं सभी गायन-कला और गुण को जानता हूं तथा मेरा कर्म से नाम है देव ! गंधर्व है" ।।३२१।।

[३२२–३२३]

तबहि राउ बोलइ रि भउंति, लोपहि नाउ म गोवहि जाति ।
तुम्ह पुणु बाबणि चवहि अयाणु, तुहि तिणि लोगु कहइ तुम्ह पाण ।।

भूख मरत देव हउ केहा करउ, तइ हउ पाणु भयउ विग्रहउ ।
जवहि गुंसाई मूंडी चुडी, तबहि पणाठी कुलु अरु कुली ।।

अर्थ :—तब राजा खीझ कर बोला, "तुम अपना नाम व जाति न छिपाओ । हे बौने ! तुम अज व्यक्ति की सी बातें कर रहे हो इससे तो लोग तुम्हें पाण (श्वपच तथा शराबी की तरह बकवास करने वाला) कहेंगे ।।३२२।।

"उसने कहा, "हे देव ! भूखों मरता मैं क्या करता ? तब मैं विनष्ट हुआ पाण (श्वपच) हो गया । जब से स्वामी (परमात्मा) ने मेरी चोटी मूंड दी तभी मैंने कुल और कुल की कानि प्रणष्ट कर दी" ।।३२३।।

विग्रह – विनाश ।

[३२४–३२५]

पेट अरथ देव सेवा कीज, पेट अरथ देसंतर लीज ।
कतहुंण अन्नु पान सिहु भेट, पाण भयउ हौ कारण पेट ।।
बार बार बावणउ भणाइ, देव विभूखित किम कराइ ।
मिलइ ण धोवति कापडु खाणु, बंभणु हुंति भयौ यहु पाणु ।।

अर्थ :—"हे देव ! पेट के लिए ही सेवा की जाती है तथा पेट के लिए ही देशान्तर लिया जाता (जाना पड़ता) है । अन्न एवं पानी से मुझे भेंट कहां थी । पेट के लिये ही मैं पाण (श्वपच) हुआ (बना) ।।३२४।।

वह बौना बार-बार कहने लगा "हे देव ! मुझे भूख रहित क्यों नहीं कराते ? मुझे धोती, कपड़ा तथा खाना नहीं मिलता इसीलिये ब्राह्मण से मैं यह पाण (श्वपच) बन गया ।।३२५।।

[३२६–३२७]

जाति पांति यहु पूछहि ताहि, ब्याह बोधु जिण सनमधु आहि ।
वयणु एक हउ कहउ समीहु, जिणदत्तु भणति नारि मइ दिहु ।।

रुक्मिणी विमलमती पहुतउ तहां, वणमहि नारि बइठी जहां।
मेरउ खेलु जीतु छइ श्राल, नाटकु नटउं देखि भूपाल ॥

अर्थ :—"प्रभु ! (राजन !) जाति पाँति उसकी पूछें जिससे विवाह आदि का सम्बन्ध (करना) हो। जिनदत्त कहने लगा मैं आपसे एक मीठी (मधुर) बात कहता हूँ :—"नारी (विवाह योग्य स्त्री) को मुझे बताइये" ॥३२६॥

उसी समय जहां विमलमती थी तथा उद्यान के मध्य वह (विद्याधरी) स्त्री बैठी हुई थी, वह वहां पहुँचा (उसने अपने आप कहा) मेरा परिचित खेल कोमल और मृदु है, (अतः) मैं आज एक नाटक करूं जिसे राजा देखें ॥३२७॥

जीत ∠ जित–जीता हुआ, परिचित। आल – मृदु, कोमल।

[३२८–३२९]

नाद विनोद छंद बहु करउ, रूप विरूप कला अणुसरउ।
खोह भाइ सुखि दीसइ घणउ, इउ नट भड खेलइ बावणउ ॥
धरइ तालु जिह हासउ वयण, बंधइ किरणि भमइ पुणु गयन।
विपरितु खोहु एकु दरसियउ, राजा हसइ बावसउ भयउ ॥

अर्थ :—मैं वादित्र (बजाऊंगा) एवं विविध प्रकार के हास्य छंद कहूंगा तथा भली एवं बुरी दोनों ही प्रकार की कलाओं का अनुसरण करूंगा। जिससे क्षोभ तथा भाव (स्नेह) दोनों का ही खूब अनुभव हो। इस प्रकार वह (बौना) नट-भट (का खेल) खेलने लगा ॥३२८॥

वह ऐसे ताल धरने लगा जिससे हँसी के वचन निकले (हँसी आवे) किरणों को बांध कर वह आकाश में घूमने लगा। विपरीत (विरोध का) भाव

और छोह (कृपापूर्ण, स्नेह) को एक सा दिखा दिया जिससे राजा हँसता-हँसता बावला हो गया ॥३२६॥

छंद – छद्म । बाउल ∠ बातुल–बावला, पागल ।

[३३०–३३१]

तूठउ राजा निज चिताउ, मांगि मांगि बावणो पसाउ ।
कउणइ एकु सभामइ कहइ, बात एकु को कारणु अहइ ॥
विमल सेठि की तीन्यो धीय, रही बिहारि देव तपु लीय ।
जइतो नारि बुलावइ एहु, तवहिं······गुशाई वासणु देहि ॥

अर्थ :—राजा अपने चित्त में सन्तुष्ट हो गया तथा प्रसन्न होकर बौने से कहा, "पुरस्कार मांग, पुरस्कार मांग।" (तब तक) सभा में किसी एक ने कहा, "एक बात का क्या कारण है ? (यह बौना बताए)" ॥३३०॥

"हे देव, विमल सेठ की तीनों लड़कियां तप (व्रत) लिये हुये (मन्दिर में) रह रही हैं। यदि उन स्त्रियों को यह बुला सकें, तभी अब इसे प्रसाद (पुरस्कार) का वस्त्र दें ॥३३१॥

[३३२–३३३]

की पाषाण काठ की घडी, की ते चित्र लेपसो खडी ।
की ते अछरि की ते सवासी, भणइ राउ ते हहि माणुसी ॥
भणइ देव माणुसि किं हसहि, मेरइ बोल पाहुणु हँसइ ।
तउ मे देव तिनि सीखी कला, जो न हसाऊ पाहुणु सिला ॥

अर्थ :—(बौने ने पूछा,) "क्या वे प्रस्तर अथवा काठ की घड़ी हुई है ? अथवा क्या वे चित्र के लेप से खड़ी हुई हैं क्या वे अप्सरा है, अथवा क्या वे ब्राह्मणी (?) हैं ? "(तब) राजा ने कहा, वे मानवी हैं" ॥३३२॥

(बौने ने) कहा, "हे देव ! मनुष्य के हँसने की क्या ? मेरे बोल से पाषाण भी हँस सकता है । हे देव ! मैंने तो वह कला सीखी है कि मैं पाषाण की शिला को भी न हँसा दूँ (तो मेरा क्या नाम) ॥३३३॥

सवास — ब्राह्मण ।

[३३४–३३५]

वस्त उठाइ सिला परिठइ, एक चित्तु विज्जा सुमरइ ।
सर्व सभा चितु सुहाइ, तू तारुणी सिलागु हसहि ॥
जवहि वीर तिसु आइस कहइ, सिलारूप जइ विज्जा रहइ ।
यहु तारुणी वि(ज्जा) तिहु ठाइ, हसि हहकाइ रंजावहि राउ ॥

अर्थ :—वस्तु को उठाकर शिला पर रख दिया तथा एक चित होकर विद्या का स्मरण करने लगा । (विद्या से उसने कहा) "सभी सभा का चित्त सुखी हो इसलिये तू ही तारुणी (विद्या) शिला होकर हँस" ॥३३४॥

उस वीर ने जब उसको यह आदेश दिया तो वह विद्या शिल-रूपिणी होकर वहाँ जा कर बैठ गई । यह तारुणी विद्या ही थी जो उस स्थान पर ठहाका मार कर (खूब जोर से) हंसने और राजा को रिझाने लगी ॥३३५॥

[३३६–३३७]

तवु सो सिला हसइ हहकाइ, सभा लोगु मोहिउ तिहु ठाइ ।
तूठहि राजा करि सहि भाउ, मागि मागि बावणे पसाउ ॥
इवहि पसाउ पडवै केम, जाम ण मारि हसाउ देव ।
सामी वयण एकु अवधारि, दिन दिन एकु बुलावउ नारि ॥

अर्थ :—तब वह शिला ठहाका मार कर हँसने लगी जिससे सभा के लोग उस स्थान पर मोहित हो गये । राजा स्नेहपूर्वक प्रसन्न हुआ और कहने लगा "हे बौने ! तू पुरस्कार मांग पुरस्कार मांग" ॥३३६॥

(किसी ने कहा) "कैसे पुरस्कार मिल सकता है, जब तक हे देव, वह यों (इसी प्रकार) नारियों को न हँसा दे।" बौने ने कहा हे स्वामी ! मेरी एक बात मान लो। मैं एक-एक दिन एक-एक स्त्री को बुलाऊंगा ॥३३७॥

नाराच छंद

[३३८]

आइ विहारी जिण जयकारी चाली तिन्ह की बात ।
हारिउ दव्वु जूवह सव्वु निकल गयउ जिणदत्तु ॥
छाडिउ पाटणु राइ दिवाहणु आयउ चंपापुरी ।
इहाँ सती विमलामत्ती छाडि गयउ फिरी''॥

अर्थ :—इस वचन के अनुसार उसने विहारी (मन्दिर) में जाकर जिनेन्द्र की जय-जयकार की तथा उनकी वार्ता चलाई। "जुए में सब द्रव्य हार करके जिनदत्त वहाँ से निकल गया (भागा)। पाटण को छोड़ कर तथा रात-दिन चल करके चंपापुरी आया तथा यहाँ वह सती विमलमती को छोड़ गया" ॥३३८॥

[३३९]

बोलइ वइठी नारी जेठी, लघछह पूछउ तेहि ।
छाडी मोही पुणो गउ कहि..................................॥
तू तुह डाली अहि निरवाली टालउ अछइ कोइ ।
इवा घरि अइ हुउ काल कहि हुउ सहा गउ सोइ ॥

अर्थ :—बड़ी स्त्री जो बैठी हुई थी यह सुनकर बोली मैं तुम से उसके बाद की (बात) पूछती हूँ। मुझे छोड़कर फिर वह कहाँ गया। (बौने ने उत्तर दिया) तू तो डाली है और निरवाली (उलझने सुलझाने वाली) है;

(किन्तु) कोई (अन्य भी) ठाली (बेकार) है ? इस समय घर जाकर मैं यह [illegible] ऊँगा, जहाँ वह (फिर) गया ॥३३९॥

[३४०]

दुइजइ दिवसी जाम बइसी कहा सो कहइ ।
छानउ होइ जाइ सोइ दसपुर राहाइ ॥
तहा हुं लेउ जाइ पहुंतइ सिंहल दीप सबाइ ।
विवाही सत्ती सिरियासती सायर माहि पडाइ ॥

अर्थ :—दूसरे दिन वह नारी जा बैठी तो वह बौना क्या कहने लगा ? प्रच्छन्न होकर वह दसपुर में रहा और वहां से भी जाकर वह सिंहल द्वीप जा पहुंचा। फिर वहां श्रीमती से विवाह करके सागर के मध्य गिर गया" ॥३४०॥

[३४१]

लागी आखण नारि विचखण काहा सो भयउ ।
बूडिवि नीरह गहिर गंभीरह पुणि कत्थ गयउ ॥
तू तुहु ठाली (ठाली) छहि निरवाली कहिसहु कालि सुजाण ।
इसउ कहाई सो बुलाई गयो तुरंत ॥

अर्थ :—फिर वह विचक्षण नारी कहने लगी, आगे क्या हुआ ? (सागर के) गहरे गम्भीर जल में डूबने के पश्चात् वह कहाँ गया ? (बौने ने कहा,) हे स्त्री तू ठाली है और निरवाली (उलझन सुलझाने वाली) है। (आगे की वार्ता मैं कल कहूँगा)। "इस प्रकार यह कह कर यह लौटकर(?) शीघ्र ही वहां से चला गया ॥३४१॥

[३४२]

तीजइ वासरि बोजइ अवसरि तिणि ठाहो आइ ।
सुणि सुणि तिरिया बेसउ परिया जहा गयउ सोइ ॥

पइरतु सायरु लइ विज्जाहरु लइ गयउ रथनूपुरि ।
सिंगारमइ विज्जाहरु आहि लइ आयउ चंपापुरी ।।

अर्थ :—तीसरे दिन सभा में उस स्थान पर आकर बोला— (तब बौने ने कहा) हे स्त्री ! सुनो, सुनो, जैसे ही वह (सागर में) गया, वह छोड़ दिया गया। सागर में तैरते हुये (उसे देखकर) उसको विद्याधर रथनूपुर नगर ले गए। वहाँ शृंगारमती विद्याधरी को ब्याह कर उसे चंपापुरी ले आया ।।३४२।।

अवसर — सभा ।

[३४३]

सो धरण बंगी बोलरण लागी वावरण पूछइ तोही ।
देखिवि सूती निंदाभूती छाडि गयउ कत मोही ।।
तू तहि वाली (ठाली) छह निरवाली ठालउ अछइ कोइ ।
इव घरि हउ जाइहऊ कालिह सु कहिहउ जहा गयउ सोइ ।।

अर्थ :—यह सुनकर वह सुन्दर स्त्री बोलने लगी, "हे बौने मैं तुम से पूछती हूँ, "मुझे यह सोती हुई और निद्रा के वशीभूत देखकर छोड़ कर कहाँ चला गया ?" वह बौना कहने लगा, तू तो ठाली है और निरवाली (उलझने सुलझाने वाली) है किन्तु क्या (तेरी भांति) कोई और भी ठाला है ? अभी तो मैं धर जाऊँगा। मैं तुम्हें यह कल बतलाऊंगा कि वह कहाँ गया" ।।३४३।।

[३४४]

तीनिउ तिन्निउ नारी नारी बुलाईवि सा भयऊ ।
छोडु छोडु बहुलू बहुलू राजा के मन भयऊ ।।

देई देई जाम जाम तहि बहु रयण समप्पिय ।
एले मण मण छुट्टु पट्टुरिय बंधण हत्थी ॥

अर्थ :—(इस प्रकार) तीनों की तीनों ही नारियों को बुलवा कर (उनसे बातें कर) वह गया जिससे राजा के मन में अत्यधिक कृपा पूर्ण स्नेह हुआ । वह उसे बार बार में रत्न देने लगा । उसी क्षण नगर में बन्धन से एक हाथी खुल गया ॥३४४॥

छोह – कृपापूर्ण स्नेह

[३४५]

मय भिभलु गउ अंकुस मोडो खंभ उपाडि वंतूसलि तोडि ।
साकल तोडि करि चकचूनि गयउ महावतु घरको पुतु ॥
गयउ महावत्यु णयरी जित्थ गज भुडउभऊ असहृतत्यु ।
हउ उबर्यारउ जुन खूटउ कालू तउ सुडिउ तोडितु भालु ॥

अर्थ :—वह मद विह्वल (हाथी) अंकुश को मोड़ (न मान कर) करके, खम्भे को उपाड तथा तोड करके वह पुष्ट दांतों वाला (हाथी) चला गया । सांकल को तोड़ कर उसने चकनाचूर कर दिया तथा वह महावत घर की ओर भाग गया । महावत नगरी में जिधर गया, वहां हाथी से भयभीत होकर लोग कहने लगे, मैं (किसी प्रकार) उबरा (बचा) वह मानो काल ही खुल गया हो । तब वह बिनाश करके शिर तोड़ने लगा ॥३४५॥

ऊसल – पीन पुष्ट । सूड़ – मृद् – विनाश करना

वस्तु बंध

[३४६]

उसण तास ण सुंडु सपडु भू भंजणु विसमु ।
धरइ बीच चिक्कार सोहुउ, गुमु गुमंति अलिवलि नियरु ।
डरि लोगु भय कालु खूटउ, बिहसइ मंदिर सयल तरवर ॥

घरणा उप्पाडि रल्ह नयर, भंग पडिउ किम गयंद घरणमारि ।
दुद्धर गयवरु धरण न जाइ, जहि चिक्कार भई लोग पलाहि ।।

अर्थ :—उसके जो दाँत थे भूमि को भयंकर रूप से नष्ट करने वाले (हो रहे) थे। बड़े बड़े वीर उसको पकड़े हुये थे और उसका (भयंकर) चीत्कार था। उसके पास भ्रमरों की पंक्ति गुंजार कर रही थी। लोग डरने लगे मानों साक्षात् काल ही छूट गया हो। वह मकानों तथा सभी वृक्षों को नष्ट कर रहा था। रल्ह कवि कहता है कि सारे नगर में अत्यधिक उत्पात हो गया था तथा लोग सोचने लगे थे कि हाथी को कैसे मारा जाय। वह दुर्धर्ष (भयंकर) हाथी पकड़ा नहीं जा रहा था तब लोग पुकार करके भागने लगे थे ।।२४६।।

[२४७–२४८]

मूंसलि खूंदंत फिरइ, तल की माटी ऊपर करइ ।
सो मयमंतु रा लेखइ कासु, वरण उडणु कियउ निरवासु ।।
तीन दिवस तहि छूटे कहे, भाजि लोगु डोंगर चढि रहे ।
बाज......दहो नयरहं फिरइ, हाथियउ मारिउ जइ कोइ धरइ ।।

अर्थ :—वह पुष्ट दांतवाला हाथी पृथ्वी को खूंद रहा था तथा नीचे की मिट्टी को ऊपर कर रहा था। वह मदोन्मत्त हाथी किसी से भी नहीं समझ रहा था तथा (जिसने) वनों और उद्यानों को निर्वास (नहीं रहने योग्य) कर दिया था ।।२४७।।

इस प्रकार उस हाथी को छूटे हुये तीन दिन हो गये थे और लोग भाग करके टीलों पर जा चढ़े थे। नगर में बाजे के साथ घोषणा फिरने लगी थी यदि कोई हाथी को मार कर भी पकड़ेगा ।।२४८।।

मूंसली — पुष्ट दंत

[३४९–३५०]

जो भाजइ गयवरु भडवाहु, परिणइ कुमरि देस अधराउ ।
एतिउ बोलु बावणइ सुणिउ, हाथटेकि फुणि बोलइ तणइं ॥
परि विरुद्ध गयवरु अइजाइ, भूठे होइ त कीजइ काइ ।
साखी करण ले दिये हारि, सइ राजा परिगहु बइसारि ॥

अर्थ :—"तथा जो भट उस गजराज को प्रणष्ट कर देगा, उसे यह अपनी लड़की परणा देगा तथा आधा राज्य देगा ।" यह घोषणा बौने ने सुनी, तब हाथ टेकते हुए उसने यह बात स्वीकार कर ली ॥३४९॥

(राजा ने कहा) "यदि तुम हाथी के विरुद्ध जाकर भूठे प्रमाणित हो तो हम क्या कर सकेंगे ?" यह सुनकर साक्षी के लिये (बौने ने) हार दिये तब राजा ने उस पर अपना परिग्रह (विश्वास) बिठाया ॥३५०॥

परिगह ∠ परिग्रह–ममत्व । तण् – विश्वास करना ।

[३५१–३५२]

बीतराग की आण जु मोहि, पाछइ जइणवि बाहु··· रि ।
राजासइ कौतूहल चलइ, बावण पासि लोगु बहु मिलइ ॥
ठाढ विरुद्ध रु गयवरु (ग) हा, सुइरी विज्जातारणी तहा ।
देखि हाथ बोलइ जु पचारि, काहि पुर घालिय उजाडि ॥

अर्थ :—मुझे बीतराग भगवान की आन (सौगन्ध है यदि मैं) इस कार्य को न करूँ । राजा स्वयं कौतूहल वश वहाँ गया तथा उस बौने के पास बहुत से लोग इकट्ठे हो गए ॥३५१॥

वह बौना गजराज के सामने जाकर खड़ा हो गया । तारणी विद्या को उसने स्मरण किया । उस हाथी को देखकर वह उसे ललकार कर बोला, "तुमने नगर को क्यों उजाड़ डाला है" ॥३५२॥

सइ ∠ सई–स्वयं । सुइर ∠ स्मृ – स्मरण करना ।
हाथ ∠ हस्तिन – हाथी ।

पागल हाथी को वश में करना

[३५३–३५४]

सुणिह भेडक हउ दिखु तोहि, गयवरु भलउ ति सौंहो होहि ।
गयवर वीहु कीहु व (लि) वंड, जिणदत्तहु निरखे भुज दंड ।।
फ्यसित हाथि अकावसि धरउ, चवक भवणु लइ गयवरु फिरिउ ।
हाकि वीर बोलइ सु निदाणु, अरे चेड तौहि य हुर पाराणु ।।

अर्थ :—(बौने ने हाथी से कहा,) "सुन, मैं तुझे भीरु देख रहा हूँ; यदि तू भला और श्रेष्ठ गज है तो मेरे सम्मुख हो । उस बलवान गजेन्द्र ने मार्ग दे दिया जब उसने जिनदत्त के भुजदंड को देखा ।।३५३।।

प्रकिष्ट होकर उसने हाथी को पकड़ा तो हाथी उसको चक्र-भवन लेकर लौट पड़ा । वीर (जिनदत्त) उसे हांक करके निदान बोला, "अरे सेवक, तुझमें यही प्राण (बल) है" ।।३५४।।

भेडक – भीरु, कातर । बीह ∠ वीथी–रास्ता, मार्ग ।

[३५५–३५६]

सुंडि पुछ धरि देखउ तोहि, गयवर भलौ तिसौंहउ होहि ।
सुंडि पुछ जउ धरिउ तुरंतु, भय लावस समद जिणदत्तु ।।
पहुरु पकु धरि फेरिउ जान, खेद खिण्णु भउ गयवरु ताम ।
जहि गयवर की गाहुरी गाज, जहि गयवरु भय पिरथी भाज ।।

अर्थ :—(जिनदत्त ने कहा,) तेरी सूंड एवं पूँछ पकड़ कर देखूँगा । श्रेष्ठ गज, यदि तू भद्र है तो सम्मुख हो ।" उसने शीघ्र ही जब हाथी को

सूंड एवं पूंछ को पकड़ लिया। जिनदत्त ने उसको उसके मद (जन्म) का ज्ञान कराते हुये पकड़ा ॥३५५॥

उसने एक पहर तक उसे पकड़ कर घुमाया। वह श्रेष्ठ गज खेद-खिन्न हो गया। जिस श्रेष्ठ गजराज की गहरी गर्जना थी और जिस श्रेष्ठ गज के भय से पृथ्वी भागती थी ॥३५६॥

लाव ∠ लापय् — बुलवाना, कहलाना।

[३५७—३५८]

जहिं गयवरु कउ मोडउ[1] हियउ, सो वावणें विलखो कियउ।
जो गयवर गयवर हणए माणु, ण गणइ सींहहिं आलु पराणु॥
थेडु जूड स पहारहिं करइ, तहिं वावणें जीति निरकरइ[2]।
धरि वंतूसरि मूठिहिं हयउ, चडिवि कंधि करि अंकुस लयउ॥

अर्थ :—जिस हाथी का मोटा (बड़ा) हृदय था, उसको उस बौने ने रुवांसा (रोने पर तुला हुआ) कर दिया। जो गज श्रेष्ठ गजों के मान (अभिमान) का हनन करता था और सिंह को नहीं गिनता था, जो ऐसे अक्षत प्राणों का था ॥३५७॥

जो अपने प्रहारों से (अपने) बड़े बन्धन को जूट-वालों के जूड़े (का सा) कर डालता था, उसे वह बौना निश्चित रूप से पराभूत कर रहा है। हाथी के पुष्ट दांतों को पकड़ कर उसने मुट्ठी मारी तथा कन्धे पर चढ़कर अंकुश ले लिया ॥३५८॥

ऊसर ∠ ऊसल — पुष्ट।

१. मूल पाठ — मोटउ

२. इस चरण का दूसरा पाठ :—वावणु जंघ मुख तलि नीसरइ।

अर्थ :—उसके (हाथी के) दोनों जंघाओं के नीचे से वह बौना निकल गया।

[३५६–३६०]

हथिया आनि खंभ बंधि ठाउ, जय-जयकार लोकु सहु कियउ ।
हाथि जोडि फुणि विणवइ तेव[1], पुत्तिह लगण दिखावहि देव ।
बइठो जाइ जिणेसर भवण, पूछहि निव गुरु कारजु महवणु ।
सव पुरु सामि अचंभो भयउ, हथिउ अछे वावणे धरिउ ।।

अर्थ :—(तदनंतर) हाथी को लाकर उसके स्थान पर उसने खंभे से बाँध दिया। (इससे) सभी लोगों ने जय जयकार की। हाथ जोड़ कर फिर वह बौना विनय करने लगा, हे देव, "(अब) अपनी पुत्री का लग्न दिखाइये (विवाह कीजिए)" ।।३५९।।

राजा जिन मंदिर में जाकर बैठ गया तथा वहाँ पर (अपने) गुरु से उस राजा ने उस कार्य के विषय में पूछा। सभी पुरुषों को आश्चर्य हुआ कि इस बौने ने हाथी को अक्षत (बिना किसी चोट फेट के) पकड़ लिया ।।३६०।।

महवणु ∠ मघवन – इन्द्र

१. मूल पाठ – 'सेव'

अद्भुत कार्यों का वर्णन

[३६१–३६२]

भवियउ बात कहहु निय सम्वणु, एही बात अचंभउ कवणु ।
कोडि एग्यारह जूवा खेलि, माता पिता छोडि गउ मेलि ।।
आहि परकम्म अइसा लहउ, तह को पौरुष केत्तउ कहउ ।
जो मोहिउ पूतलिय पहाण, पुण्यवंत को सकइ पहाण ।।

अर्थ :—श्रमण (गुरु) ने निश्चय रूप से कहा, हे भव्यो, ऐसी (इस)

बात में अचम्भा ही क्या? जो ग्यारह करोड़ जुआ में हार गया तथा माता पिता को छोड़कर चला गया ॥३६१॥

जिसने पराक्रम (पुरुषार्थ) ऐसा पाया, उसके बल पौरुष के विषय में कितना कहा जाय। जो पत्थर की पुतली को देखकर मोहित हो गया। उस पुण्यवंत की कितनी प्रशंसा की जावे ॥३६२॥

अखे ∠ अक्षत – बिना अंग भंग किये।

भविअ ∠ भविक – मुक्तिगामी, भव्य जीव।

परकम्म ∠ पराक्रम।

[३६३–३६४]

परिहसु लियउ विसंतर करइ, जहि को हाथ अजंणी चडइ।
सूकउ अबउ पहोडइ जोइ, तहि किउ पौरुष कइसउ होइ ॥
फिरिउ अनेयइ समार दीप, पीपी सायरदत्त समीप।
सिंहल हंसकूट देखियउ, तासु वीर को कैसौ हियउ ॥

अर्थ :—जिसने खुमी के साथ परदेश गमन लिया तथा जिसने अपने हाथ से अंजनी (गुटिका) चढाई। जिसने सूखी (बाडी) हरी कर दी। ऐसे (पुरुष) का और कैसा पुरुषार्थ होगा? ॥३६३॥

जो पापी सागरदत्त के साथ अनेक दीप समुद्रों में घूमा। जिसने सिंहल एवं हंसकूट देखा, उस वीर का हृदय कैसा होगा? ॥३६४॥

[३६५–३६६]

मालिण तणी बात निसुणइ, भीच पराई मरण जु जाइ।
गयो मसाणि मडउ आणियउ, अहो भविपहु सहु कैसो हियउ ॥
सिरियामती उव (२) नीसरयो, जिण विसहर सयलु लोय संहरिउ।
तासु पूछ धरि तवइ जोइ, तह कउ पौरिसु कयसउ होइ ॥

अर्थ :—"मालिन से वार्ता सुनकर जो दूसरे की मृत्यु में मरने के लिये गया, जो श्मशान जाकर मुरदे को लाया। हे भव्यो, (तुम ही बताओ) उसका हृदय कैसा होगा" ? ॥३६५॥

"श्रीमती के पेट में से निकलने वाले जिस सर्प ने समस्त लोगों का संहार कर दिया था, उस काल की (सर्प की) पूछ पकड़कर जिसने (बौने ने) ताड़ना की ऐसे व्यक्ति का पौरुष कैसा होगा ? ॥३६६॥

[३६७-३६९]

करइ अकेलउ सायर झंप, तहि बस मगर मच्छ की झंप ।
गयउ पतालहि पाणिउ साहि, तहि की पौरषु कहियइ काहि ॥
फोडि नीर उछलिउ बलिबंड, पुणु पेरियउ समुद्द भुजदंड ।
हाकि विज्जाहर सिउ रु भिडाइ, तिहि पौरुष कहि हियइ समाइ ॥
हुइ बावणउ जु सत्ती बुलाइ, हेला मंतिहि हियइ समाइ ।
मणि चिंतिउ बिमाणु जिहु लयउ, ताहु वीर की कैसो हियउ ॥

अर्थ :—"जो अकेला समुद्र में कूद पड़ा, जहाँ मगर मच्छ वगैरह कूदते हैं, जो जल के सहारे पाताल लोक में चला गया, ऐसे (मनुष्य के) पौरुष के बारे में क्या कहा जा सकता है ?" ॥३६७॥

"वह पराक्रमी जल को फाड़ कर उछल आया, फिर उसने अपनी भुजाओं से समुद्र का संतरण किया (तैर कर पार किया)। विद्याधरों को ललकार कर वह उनसे भिड़ गया। ऐसे पुरुषार्थी का बल किसके हृदय में समा सकता है ?" ॥३६८॥

बौना होकर जिसने सतियों को बुलवा दिया और जिसकी हेला (धाक) मंत्रियों (?) के हृदय में समा गई, जिसने मन चाहा विमान प्राप्त किया, ऐसे वीर का हृदय कैसा होगा ?" ॥३६९॥

[३७०–३७१]

विज्जा बलहु जहिं अच्छहि पास, चडिवि विमाणु गयौ कैलास ।
तिहु भुवणहिं जहिं करी खियाति, हुथिए······बपुडा केती बात ॥
तउ बावणउ हकारिउ राइ, पूछउ बात कहउ सतभाउ ।
तू परछण्ण वीर इहि······, आयउ किन पयासहि कोहि ॥

अर्थ :—"जिसके पास विद्याबल है, जो विमान पर चढ़ कर कैलाश गया था, जिसने तीनों भुवनों में अपनी ख्याति करली थी, ऐसे बप्पुडे (बेचारे) की कितनी (क्या) बात है" ॥३७०॥

तब बौने को राजा ने बुलाया और पूछा, "तू मुझसे (अपनी) बातें सतभाव (सत्य रूप) से कह । हे वीर! तू छिपा हुआ क्यों है ? तू किस कार्य के लिये आया है जिसे प्रकाशित नहीं करता (बताता) है ? ॥३७१॥

हकार ⁄ आकारय् – बुलाना ।
पयास् ⁄ प्रकाशय् – प्रकाशित करना ।

[३७२–३७३]

गात अलखणु कहियइ काइ, मूंडिउ मडु चोटी फरहराइ ।
जिहि भोयण भिख्या कीय, सो किम परिणइ राजा धीय ॥
जाति विहीणु देव बावणउ, बार बार सत चूकउ भणउ ।
पाछइ लोगु हसइ मो वयणु, कुंजर कंठि कि सोहइ रयणु ।

अर्थ :—(बौने ने कहा) "जिसका शरीर लक्षणों रहित है, उसे क्या कहें ? जिसका शिर मुंडा हुआ है तथा चोटी फहरा रही है, जिसने भिक्षा का भोजन किया है वह राजा की कन्या से कैसे विवाह कर सकता है ?" ॥३७२॥

"हे देव ! जो जाति विहीन तथा बौना है तथा बार बार सत्य से चूके वचन बोलता है और पीछे से जिसके वचनों को सुनकर लोग हँसते हैं । क्या

हाथी के गले में रत्नों का हार शोभा दे सकता है" ।।३७३।।

रयण ∠ रत्न

[३७४–३७५]

कहा कुमरि मुहि हीणे दीन, परिहसु मरउ लेइ कोइ छीनि ।
घाली जाइ देव जिउ आल, गादहु गलैं रयण की माल ।।
आपु...हाव कहियइ काइ, छेली मुह कि आलियस माइ ।
अनइं देव न पावउ कला, वांदिर कडि रयण मेखला ।

अर्थ :—मुझ हीन को राजकुमारी देने से क्या लाभ ? परिहास के कारण मैं मरूँगा और कोई उसको (राजकुमारी को) छीन लेगा। हे देव! यह वैसा ही होगा जैसे गधे के गले में रत्नों की सुन्दर माला डालदी जाए ।।३७४।।

अपने लिये मैं और क्या कह सकता हूं। बकरी के मुंह में क्या कस्तूरी समाती है ? हे देव! बंदर की कटि में रत्न मेखला कला (शोभा) नहीं प्राप्त करती है ।।३७५।।

[३७६–३७७]

घाघ सु कहा करइ रविधाम, भुंजिउ जोडि जाइ परिणाम ।
प्रण छाजत इह सइ सबु कोइ, बोले कहा सवारथु होइ ।।
देह कुडील हाथ इकु काय, आंगुल चारि चारि मो पाय ।
खोचें—धु जणु द लाकडी, लालउ पेटु पीठि कूबडी ।।

अर्थ :—सूर्य के धाम में जाकर घुग्घु (उलूक) क्या करेगा ? उसे वहां जाकर उसका परिणाम भोगना पडेगा। यहां सब अनचाहा हो रहा है। मेरे बोलने से क्या स्वार्थ निकलेगा। ।।३७६।।

मेरी देह कुत्सित है तथा एक हाथ का शरीर है। मेरे चार २ अंगुल लंबे पैर हैं। शरीर जैसे लकड़ी हो, पिचका पेट है तथा पीठ कूबड़ी है ॥३७७॥

कुच्छील < कुत्सित < कुत्सित।

[३७८–३७९]

आँखि कुढालि कपाल निधाम, ढसण दातलय चूचे कान।
कुहणी ऐसी देव मोकली, अछ कपोल[1] नाक चीपडी ॥
कामकला तिहि तेरी कुमरि, रंभ सरंभ तिलोत्तमि गवरि।
जोग मोहणिय मृग लोयण जासु, सा किमु सोहइ मेरइ पासु ॥

अर्थ :—आँखें बेढंगी हैं तथा कपाल गड़ा हुआ है। दांत हँसिया (जैसे) तथा कान चूचे हैं। हे देव! कुहनी जैसी मूँगरी हो, गाल बैठे हुये तथा नाक चिपटी है ॥३७८॥

(दूसरी ओर) तेरी राजकुमारी काम की कला है। वह रंभा, तिलोत्तमा एवं गौरी है। वह जगत् मोहिनी है, जिसके लोचन मृगों के जैसे है। वह मेरे पास कैसे सुशोभित होगी? ॥३७९॥

दातला < दात्र – घास काटने की हँसिया।

अछ < आस – बैठना।

१. कपाल – मूल पाठ है।

[३८०–३८१]

पडही नयर माहि वाजहि, गयवरु चरइ कन्य परणेइ।
धरिय हाथ मइ वावण भाट, अब उठि जाउ आपणी वाट ॥
मंतिहि तणउ हियउ कंपियउ, कूडउ मंतु देउ सवु कियउ।
बेटी देहि कुचालि म चालि, कोली लागि म देवसु डालि ॥

अर्थ :—"नगर में पटही बज रही थी कि हाथी को वश में करने वाला कन्या को विवाहेगा। हाथी को बौने भाट ने पकड़ा है और अब मैं उठ कर अपने मार्ग को जाता हूँ" ।।३८०।।

मंत्रियों का हृदय कांपने लगा तथा उन्होंने कहा, "हे देव ! समस्त विचार कूट (बुरा) किया है। अपनी पुत्री को इसे देकर कुचाल मत चलिए; कौली के लिये देवल में मत गिराइए ।।३८१।।

हाथ ∠ हस्तिन — हाथी।

[३८२—३८३]

अवरु भणइ देव अइसी कीज, आसिप राइ एक कहु दीज।
मेरी बात जिण करहु संदेहु, फुड वयणु मइ अखिउ एहु।।
जइ पहु कइसइ धीय न देउ, तउ यहु सयलु अंतेउरु लेइ।
राजा मंतिहि समुध बहाइ, नयरु आपुणी आण दिवाइ।।

अर्थ :—वह फिर कहने लगे, "हे देव ! ऐसा करिये। इस कन्या को एक राजा को दीजिए। मेरी बात में आप सन्देह न कीजिए; मैंने आपसे स्फुट (स्पष्ट) वचन कहा है" ।।३८२।।

"यदि हे प्रभो ! किसी प्रकार लड़की को नहीं देते हो तो सारा अंतःपुर यह (ऐसे ही) ले लेगा (करेगा)" राजा ने मंत्रियों को विदा किया और अपनी नगरी में उसने आज्ञा दिलाई (प्रसारित की) ।।३८३।।

[३८४—३८५]

मंती रहे हियइ करि संक, राजा कइ मनि पइठी संक।
बार बार भण गहियइ कोइ, अति करि मथियउ कालकूटु होइ।।
तह करायउ सीरघु गंधव्वु, पुच्छइ राउ कहंत उ सव्वु।
तुह कउ आसि जिणेसर तणी, फुडी बात कहु सवु आपुणी।।

अर्थ :—मंत्रीगण हृदय में शंका करते रहे तथा राजा के मन में भी शंका बैठ गयी। बार-बार मन को कोई टटोलने लगा। अत्यधिक मथने से काल कृष्ण हो जाता है ॥३८४॥

तब श्री रघु (नाम के) गंधर्व ने (बौने से) कहा, "राजा पूछ रहा है (अतः) तुम्हें सब कुछ कहना चाहिए; तुम्हें जिनेन्द्र की सौगन्ध है अपनी सब स्फुट (स्पष्ट) बात कहो" ॥३८५॥

[३८६–३८७]

सुणि सुणि देउ कहूं सतभाउ, कहियइ सो बसंतपुर ठाउ।
माता जीवंजस पिय खीरु, पिता जीवदेव साहस धीरु॥
एक पूतु हउ तिन्ह घरि भयउ, पुणु जिणदत्त णाम महु ठयउ।
हारिउ सामिय जूवा दव्वु, कियउ विसंतरु चित्त धरि गव्वु॥

अर्थ :—(बौना बोला) हे देव ! सुनिए, सुनिए। मैं सत्यभाव से कह रहा हूं। "उस (मेरे स्थान) को बसंतपुर कहा जाता है। जिसका मैंने दूध पीया है ऐसी मेरी माता का नाम जीवंजसा है तथा मेरे पिता साहसी जीवदेव हैं" ॥३८६॥

"उनके घर में मैं एक ही पुत्र हुआ, तदनन्तर उन्होंने मेरा जिनदत्त नाम रक्खा। हे स्वामी ! मैं जुए में द्रव्य हार गया, इसलिए चित्त में गर्व धारण करके मैंने विदेश (जाने) का निश्चय किया" ॥३८७॥

[३८८–३८९]

आसा करि हउ जणियउ माइ, सो किमु छोडि विसंतरु जाइ।
वज्र को हियउ न फाटइ देव, महु बिणु बाप न जीवइ केव॥
दीठे देस नयर बहु घणे, हूंटे दीप समुद्दह तणे।
बारह बरस विसंतरु गए, न जाणउ माय बापु कहा भए॥

अर्थ :—"मुझे मेरी मां ने बड़ी आशाओं से पैदा किया था । उसे छोड़ कर विदेश मैं क्यों कर गया ? हे देव ! मेरा अज्ञा का हृदय नहीं फटता है । मेरे बिना मेरे पिता भी किसी प्रकार जीवित न रह सकें" ॥३८८॥

"मैंने बहुत से देश और नगर देखे तथा अनेक समुद्रों एवं द्वीपों की यात्रा की । विदेश भ्रमण करते हुये बारह वर्ष बीत गये, पता नहीं मेरे मां-बाप का क्या हुआ" ॥३८९॥

[३९०—३९१]

इहां परणी विमलामती, सिंघल दीवि सिरियामती ।
पुणि परिणिय विज्जाहरि, सो कहु लइ आयउ चंपापुरी ॥
विमलसेठि देव तणइ विहारि, मइ जु बुलाइय तीनिउ नारि ।
को तहि मरइ बहुतु कहि वत्त[1], ते तीनिउ सु अम्हारी कलत्त ॥

अर्थ :—"यहां मैंने विमलमती के साथ विवाह किया तथा सिंहल द्वीप में श्रीमती के साथ (विवाह किया) । फिर विद्याधरी स्त्री से विवाह किया और उसको चंपापुरी लाया" ॥३९०॥

"विमल सेठ के जिन मन्दिर में मैंने जिन तीनों स्त्रियों को बुलाया था वे तीनों ही मेरी पत्नियां हैं" लेकिन बहुत सी बातें कह कर कौन मरे ? (कहने से क्या मतलब)॥३९१॥

१. मूल पाठ - 'वात'

[३९२—३९३]

जे ते वणि तुम्हारी नारि, किम पत तौ मिलवहु वइसारि ।
फुडउ वयणु जउ यहु तुम्हि देव, इह तुहु काइ विवाहउ बीस ॥
जइ ते कहहि हमह पिउ आहि, बीस कुमरि मांगउ कहु पासि ।
एक कुमरि वइ सकहि न जाहि, बीस कि तीस विवाहहु काहि ॥

अर्थ :—राजा ने कहा, "हे वत्स ! यदि वे तुम्हारी पत्नियां हैं तब (उन्हें) बैठा कर मिल क्यों नहीं लेते ? यदि तुम स्फुट (सत्य) वचन कह रहे हो तो इन बीस (?) स्त्रियों के साथ तुमने क्यों विवाह किया ?" ॥३६२॥

यदि वे कहेंगी कि तुम हमारे प्रिय पति हो तो वे बीस (?) पत्नियां किससे (कुछ) मांगेंगी ? तुम जब एक स्त्री को नहीं दे सकते हो, तब तुमने फिर बीस-तीस (?) के साथ विवाह क्यों किया ? ॥३६३॥

देस — कहना ।

[३६४-३६५]

बोल बोल वावरण त्रुटि करइ, राजा बोल तु सासइ पडइ ।
मंत्री कह्यौ मंत्र धरि ठाणु, इव तुह एकइ कुमरि परिमाणु ॥
श्री रघुराइ पठायौ दूतु, जाइ विहारहु वेगि पहूत ।
हाथ जोडि बोलइ सतभाउ, तुम्ह पुणि तिहु बुलावइ राउ ॥

अर्थ :—बौना बोल बोल कर त्रुटि (भूल) कर रहा था और राजा के बोलते ही वह संशय में पड़ गया । मंत्री ने मंत्रणा कर निश्चय करके कहा, "तुम्हें अब एक ही कन्या व्याहनी है" ॥३६४॥

श्री रघु (गंधर्व) को राजा ने दूत बना कर भेजा । वह जाकर शीघ्र ही विहार (जिन-मन्दिर) में पहुँच गया । वहां हाथ जोड़ कर वह सत्यभाव से कहने लगा, "राजा तुम तीनों को पुनः बुला रहा है" ॥३६५॥

[३६६-३६७]

एतउ वातु सवरण जबु सुरणहि, खोभिउ राउ परंपर भरणइं ।
काउसग्गि रही तिहु ठाइ, अछीस ताहि भाणु मणु लाइ ॥
साहुडि दूतु न बोलइ वयणु, चवहि ण देव ण वाहहि नयणु ।
जो मइ बेग बुलाई सही, तीनिउ भारण मउण लइ रही ।

अर्थ :—यह बात जब कानों से उन्होंने सुनी तो वे आपस में कहने लगी, "राजा लुब्ध हो गया है।" फिर वे कायोत्सर्ग में (स्थित होकर) वहीं पर ध्यानमग्न हो गयीं ॥३६६॥

वहां से लौटकर वह दूत बोला, हे देव ! वे न बोलती हैं और न नेत्र डुलाती हैं। ज्यों ही मैंने उन सभी को बुलाया तो तीनों ध्यान तथा मौन धारण कर बैठ गयीं ॥३६७॥

वाहुड़ ∠ व्याघुट — लौटना।

[३६८]

दूत वयणु सुणि वियसिउ राइ, रे वावणे यहु तेरी ठाउ।
वावणु भणइ चलहु तिह ठाइ, तिन्हसि नरवइ बोलहि काइ।

अर्थ :—दूत के वचन सुनकर राजा विकसित हुआ (मुसकराया) और कहा, "हे बौने ! यह तेरा स्थान है।" (यह सुन कर) बौने ने कहा, उस स्थान पर चलिये, उनसे नरपति क्या बोलेंगे" ॥३६८॥

नाराच छंद

तीनों स्त्रियों से पुनः साक्षात्कार

[३६९]

राजा परजा लोगु बागु गयउ विहारि।
बइठे आगे पूछण लागे तिन्हहु हकारि॥
अहो लोया पूछइ सीया वात्त एकु तुव भणी।
हम ए पतीजइ रस्हु कहाइ मैरो एती तीनिउ धणी॥

अर्थ :—राजा प्रजा और लोग-बाग (जनसमुदाय) उस विहार में गये और (उनके आगे) बैठकर तथा उन्हें बुलाकर पूछने लगे। हे सीता के समान

नारियों तुमसे हम एक बात पूछते हैं । रल्ह कवि कहता है हम (इसकी बात पर) कि ये तीनों ही मेरी स्त्रियां हैं, प्रतीति नहीं करते हैं" ।।३९९।।

[४००-४०१]

विमलामती कहइ बात सुणि हो स्वामी ताता ।
यहु तउ वांवरणउ श्रइ दीणा वयणउ कहइ हमारी कंता ।।
श्रम्ह पिउ चंगु सुगुणगुण सुठि श्रइ रुवडउ ।
इहु बोलइ झूठउ विरह न दीठउ दीणउ कूबडउ ।।

पुणु पुणु जो बोलइ चित्तइ डोल्लइ श्ररे श्रचागले ।
कि बोलहि नारी भिक्खाहारी जीहइ श्रागले ।।
म्हारी कंता जो जिणदत्त रुवहु श्रइ घणउ ।
तू तहु वावणु करहिउ मणु रंजावहि लोयण तणउ ।

श्रर्थ :—विमलामती कहने लगी, 'हे स्वामी और तात, बात सुनो; यह तो बौना है तथा अत्यन्त दीन वचन कहने वाला है और यह अपने को हमारा पति कहता है ? हमारा पति स्वस्थ है, पर्याप्त सद्गुणोंवाला एवं अत्यधिक रूपवान है । यह झूँठ बोल रहा है । हमें तो विरह में यह दीन कुबड़ा दीखा भी नहीं है ।।४००।।

तू बार-बार यही कहता है और तेरा चित्त, अरे दुष्ट (इस प्रकार) डोल गया है ? अपनी जिह्वा के अग्रभाग से ऐ भिक्षा मांग कर खाने वाले ? तू क्यों कहता है कि हम तेरी पत्नियां हैं ? हमारा स्वामी तो जिनदत्त है जो अत्यन्त रूपवान है । तू तो बौना है, करही है, तथा अपनी आंख एवं शरीर से लोगों का मनोरंजन करने वाला है ।।४०१।।

श्रइ /, अति । करही — ऊँटनी पर सवारी करने वाला ।

[४०२–४०३]

बिज्जाहरिया बोलइ तिरिया सो जि तुरंतु सुणि ।
पिरथी राइ कहियउ काई (अ)पणी बात परि ॥
अम्हह कंता तणिया बाता जाणइ सव्वह एहो ।
णहु जाणइ एवहि ते मिथ (पु)छहु हवइ संदेहु ॥

तुमि नारि निकिठी तिणिउ भूंठी भूंठउ यहु परिवारु ।
महु मेल्लिवि पिल्लिवि अवरवि कवणुवि कहहु भत्तारु ॥
अरि लंपट लाइ जाइ बिलाए फीटउ होहि रे बिरूप ।
पर पिरथी लोए माही कोई अम्ह पिय के रूप ॥

अर्थ :—तदनन्तर विद्याधरी बोली, "हे पृथ्वीपति ! तुरन्त सुनिये । अपनी बात क्या कही जाए । यह हमारे पति की सारी बातें जानता है (या) नहीं जानता है, इससे थोड़ा पूछें, जिससे संदेह मिटे" ॥४०२॥

बौने ने कहा, "तुम निकृष्ट नारियां हो और तीनों भूंठी हो और भूंठा ही यह तुम्हारा परिवार है । तुम मुझे छोड़ कर और ठेल (धकेल) कर और किसी को भर्त्तार कहती (कहना चाहती) हो ।" स्त्रियों ने कहा, "अरे लंपट, तू भूंठी लगा रहा है, रे विरूप तू नष्ट हो; इस पृथ्वी पर लोक में हमारे प्रिय के समान रूपवान कोई नहीं है" ॥४०३॥

मिअ ∠ मित – थोड़ा, अल्प ।

[४०४–४०५]

णिसुणहि बात बिसंतउ तणी, काहे माहि निसुंभहु धणी ।
तुम्हारे दुणहि पडिउ संदेहु, तिहि भइ मेरी कुबडी देह ॥
दापुणु लाग्यो दध्यो धणउ, तहि होइ पाइ भयो बावणउ ।
तुम्ह बिजोग दुख भरिउ घणाह, जली देह भई खोची बाह ॥

अर्थ :—(बौने ने कहा,) "विदेश (यात्रा) की बात सुनो; ऐ स्त्रियों तुम मुझे (इस प्रकार) क्यों मार डाल रही हो (तंग कर रही हो) ? तुम्हारे दुःख में मुझे सन्देह है इससे मेरी देह कुबड़ी हो गई है ।।४०४।।

और जब मैं अत्यधिक (दुःखों की) घानी में पड़ गया तो मैं बौना हो गया । तुम्हारे वियोग से अत्यधिक दुःख में मर गया इसलिये देह जल गई और बाँह खोंची (टेढ़ी) हो गई ।।४०५।।

निसुंभ ∠ शिसुंभ ∠ नि – शुम्भ – मार डालना ।
घाण – घानी, कोल्हू जिसमें तिल आदि पेरे जाते हैं ।
पाड ∠ पातिन – गिरने वाला ।

[४०६–४०७]

तुम्हहि सोगु दुखु भयउ मर्हतु, बइठे जाइ निकले दंत ।
परिहसु लियइ हियइ विलखातु, कहइ बावणउ हो जिणदत्त ।।
लए जु हाकट कइसे दांत, सउरा ज्यौं मिलवहि तू बात ।
कालिह जु छाडि गयो रुवडउ[1], सो कि आजु भयो कूबडउ ।।

अर्थ :—(बौने ने कहा,) तुम्हारे शोक में मुझे अत्यधिक दुःख हुआ इसलिए गाल बैठ गये और दांत निकल आये । हृदय परिहास के कारण बिलखता रहा इसलिए जिनदत्त बौना हो गया ।।४०६।।

(स्त्रियों ने कहा,) "तुम जो हाकट (?) ऐसे दांत लिए हुये हो, तुम सब बातें (झूठ) मिला रहे हो । तुम कल ही (यदि) छोड़ कर गये थे तब तो सुन्दर थे । आज कैसे कुबड़े हो गये ?" ।।४०७।।

१. मूल पाठ – कूवडउ ।

हुंपा सेठ की कथा

[४०८—४०९]

झूठी भईय तिरिय गहु करहु, मेरे बोल न तुमि गरहु ।
पडे उघाडहूं सइ सबु कोइ, सगो मुवा कहि भोलउ होइ ॥
णिसुणि वाबणे हीण अजाण, हुंपा सेठिणि बसइ पइठाण ।
असी कोडि घर दव्व अपार, घाठि कोवइ करइ अहार ॥

अर्थ :—(बौने ने कहा,) हे स्त्रियों ! तुम झूठी होकर इस प्रकार दुःख (शोक) कर रही हो । मेरी वाणी पर तुम विश्वास (?) नहीं करती हो । उघाड़े पड़ जाने पर सभी हँसते हैं, सगा ·····कह कर मनुष्य भोला बनता है ॥४०८॥

(स्त्रियों ने कहा,) "ओ हीन और अज्ञान बौने सुन । एक हुंपा नाम का सेठ प्रतिष्ठान में बसता था । उसके घर में अस्सी करोड़ अपार द्रव्य था किन्तु वह स्वयं तो घटिया चावलों का आहार करता था" ॥४०९॥

[४१०—४११]

तीनि नारि तहु खरी गुणंगु, रूप विज्जाहरि मुहु सुवंगु ।
हुपा सेठि उठि वणिजह गयउ, धूत एकु घरि पइठउ आइ ॥
दव्वु उखारि तेन विलसियउ, आपुण हुपा सेठि सो भयउ ।
लेत पटोलो भूंचित तिरी, लीनिउ आनि त सोने भरी ॥

अर्थ :—उसके तीन स्त्रियां अत्यधिक गुणवती थीं । रूप में वे विद्याधरियों जैसी अत्यधिक सुन्दर थी । जब हुंपा सेठ उठकर व्यापार के लिये (विदेश) गया तो वहां एक धूर्त आया ॥४१०॥

उसके (गड़े हुए) द्रव्य को (निकाल) कर उसका भोग किया (?)

और आप हुप्पा सेठ बन गया। उसकी दी हुई पटोली (रेशमी साड़ी) को लेकर वे स्त्रियां अति प्रसन्न हुईं और (उसके साथ में) आकर तीनों ही (स्वर्ग से) उतर गईं ॥४११॥

[४१२–४१३]

मांडे दूध निवात संजोइ, घिउ लापसी कलेऊ होइ।
केला दाख छुहारी खीर, खांड चिरौंजी नितु दुख हरी॥
दाडिम बिजोरा बहु खाज, बिलसहि राणी जइसे राज।
फूल तंबोल कपूर बहुत्त, अइसो भोग करावइ धूत[1]॥

अर्थ :—उन्होंने दूध और नवनीत संजोकर मांड़े तथा घी और लापसी का कलेवा होने लगा। केला, दाख, छुहारा, खीर, खांड़ और चिरौंजी नित्य दुख हरने लगे। दाडिम, बिजौरा आदि बहुतेरे खाद्य से राणी और राजा की भाँति वे बिलसने लगे। फूल, पान, कपूर आदि का इस प्रकार वह धूर्त बहुत उपभोग कराने लगा ॥४१२–४१३॥

१. मूल पाठ–दूत

[४१४–४१५]

घाठि कोदई जले जु गात, छाडी हुप्पा सेठि की बात।
जिण बाहुडि आवइ करतार, सब सुख पुरए ए जु भतार॥
भूलहु दीस्यो बरसु अघाइ, राजा कुल बालउ अपनाइ।
बरिस तिण्णि दह वणिजह गए, पाछैं बेटा बेटी भए।

अर्थ :—किन्तु घाठी (अथवा घटिया) और कोदई [कोदव] [खाने से] उनका गात्र जल गया तो उन्होंने हुप्पा सेठ की बात छोड़ दी। स्त्रियां कहने लगीं, "हे भगवान हमारा भर्त्तार वापस न आए; यही हमारा भर्त्तार है क्योंकि इसीने हमारे लिए सब सुख पूरे कर दिये हैं ॥४१४॥

उस धर्त ने उन्हें अपार द्रव्य दिया। हे राजन्! उन बालाओं ने उसको अपना लिया। [सेठ के] वाणिज्य के लिए बारह वर्ष तक चले जाने के बीच उनके बेटा बेटी हो गए ॥४१५॥

[४१६–४१७]

बरिस बारह आयउ जबह, घर की विवस्था दीठी अवरु।
लइअ बहेडे भेटइ जबह राइ, मझु घर बकसइ दीन्यो काहि॥
तवहि भणिव बात हसि कहइ, बात एक कउ कारणु कहइ।
हुण्फ सेठि वहु मण्णइ अप्पु, बेटा बेटी केरउ बापु॥

अर्थ :—जब बारह वर्ष पर सेठ घर लौटा तो उसे घर की व्यवस्था दूसरी ही दिखाई पड़ी। बहेडे [?] लेकर जब उसने राजा से भेंट की तो कहा, "मेरा घर तूने किसको दे दिया?" ॥४१६॥

तब राजा ने हँस कर कहा, "एक बात का कारण बता। वह अन्य व्यक्ति भी अपने को हुण्डा सेठ और बेटे बेटियों का बाप कहता है" ॥४१७॥

[४१८–४१९]

हुण्डा सेठि मन खिलखौ भयउ, मूंड खुजाइ घरि चलि गयउ।
नियम विरह न पावइ जाणु, धूतहु दिण्णु राइ की आण॥
णियमणि चमकि गयो सो तित्थु, णरवइ सिंहासणु हुई जित्थु।
हाथ जोरि तिनि विनयो राइ, जइ पहु दीनहु करहु पसाउ॥

अर्थ :—वह हुण्डा सेठ मन में दुःखित हुआ और शिर को खुजलाते हुए उठ कर घर को चला गया। इस वियोग के वह कोई कायदे-कानून नहीं जानता था किन्तु उसने तो धूर्त को राजा की दुहाई दिलादी ॥४१८॥

अपने मन में चौंक कर वह (हुण्डा सेठ) वहाँ गया जहाँ नरपति का

सिंहासन था। हाथ जोड़ कर उसने राजा से विनती की, "प्रभु, दीन पर कृपा करो" ॥४१६॥

[४२०-४२१]

तीनिउ नारि बुलावहु आणि, सभा माहि बइसारहु ताणि।
कहहु बात पुणि तुम्ह घरि जाइ, सभा मह बुझह कवरा तुम्हारउ णाहु ॥
किंकर लेरा ताह पेठियऊ, लइ आइसु सुह कारण गयऊ।
तिहु नारि सिउ आयउ तित्थु, पुहविसु णाहु निय मन्दिर जित्थु ॥

अर्थ :—(राजा ने आदेश दिया) "तीनों स्त्रियों को बुलाओ तथा उन्हें सभा में बैठाओ और तुम उनके घर जाकर कहो कि सभा में बताओ कि दोनों में से तुम्हारा कौनसा पति है" ॥४२०॥

उन्हें ले आने के लिए उसने किंकर भेजे। (किंकर) आदेश लेकर शुभ कार्य के लिए गया। तीनों नारियों के साथ वह वहां आया जहां पर राजा (पृथ्वीपति) का निज मन्दिर था ॥४२१॥

[४२२-४२३]

धूतहं हालडोल परठइय, चडिवि सुखासणि रावलि गइय।
पूछइ राउ हियइ विहसंतु, दुहुंमहि कवणु तुम्हारी कंतु ॥
णिसुणि वयणु मुह जोयउ तासु, जिसको करतउ सेठि विसासु।
जेठी घरण बोलइ तहां, णावइ सभा बइठउ जहां ॥

अर्थ :—धूर्त को लिवाने के लिये हाल डोल भेजा और वह सुखासन (पालकी) में चढ़कर राज-भवन गया। राजा मन में हंस कर (स्त्रियों से) पूछने लगा, "दोनों में कौनसा तुम्हारा स्वामी है ?" ॥४२२॥

इन वचनों को सुनकर उसने उस राजा के मुंह की ओर देखा।

जिसका सेठ अधिक विश्वास करता था। जहाँ सभा बैठी थी वहाँ सबसे बड़ी स्त्री बोली ॥४२३॥

[४२४-४२५]

बहिव भातु घिउ परतिखु मीठ, आन जनमु बहिणी किन दीठु ।
हुप्पा सेठि तहु घालहु छारु, इमु धूतिहु सिउ कहहु भतारु ॥
कहिउ भतारु धूतु निरु जबहि, हाहाकारु अउरु किउ तबहि ।
सभा लोगु तुहु मोणे रहिउ, निय सामिय तिन्हु खाडउ बहिउ ॥

अर्थ :—(इसी समय एक ने उससे कहा,) दही, भात, घी प्रत्यक्ष में मीठे हैं। अन्य जन्म हे बहिन, किसने देखा है; हुप्पा सेठ पर राख डालो और इस धूर्त को ही भर्त्तार (स्वामी) कहो" ॥४२४॥

जब उसने धूर्त को ही निश्चितरूप से स्वामी कहा तब दूसरी ने हाहाकार किया। सभा के लोग तब मौन हो गए और कहा, "अपने स्वामी पर तीनों ही खड्ग चलाओ ॥४२५॥

[४२६-४२७]

जबहि······परु अपरंपर हुउ, रायपमुहु सब जाणहु भूठ ।
सेठि धणी णर यहु जाइसइ, णर भउ दुल्लहु पुणि पाइसइ ॥
हरतु परतु तिन्हु घालिउ हारि, कूंभी णरइ पडो ते नारि ।
भूंठउ बोलि ते णरयहि गई, हुम···हि तिरिया समु भई ॥

अर्थ :—जब दुष्टाओं ने परस्पर वार्त्ता की; तब राजा ने सब कुछ (हुप्पा सेठ के वचन को) झूठा जाना। उन्होंने कहा, "यह सेठ और सेठाणी नर्क जाएँगे और दुर्लभ मनुष्य जन्म पुनः नहीं पावेंगे ॥४२६॥

हरते परते उन्होंने (इस दुर्लभ मानव जन्म को) हार डाला तथा

स्त्रियां कुंभीपाक नर्क में जा पड़ी। झूठ बोलकर वे नर्क गई। हम उन स्त्रियों की भांति (नहीं) हो गई है ? ॥४२७॥

[४२८–४२९]

भणइ बावणउ तुम्ह अलिय म चवहु, जैसे होइ तुम्ह पिउ तेसौ मुहि करहु ।
लछण बतीसह परिचिउ अंगु, रूप देखि मोहियइ अनंगु ॥
सिर धापियो पटोलो डालि, (विज्जा) बहु रूपिणी सभालि ।
छाडी बावण कला हीणंगु, भयो जिणदत्त सामले अंगु ॥

अर्थ :—उस बौने ने कहा, "तुम झूठ मत बोलो जैसा तुम्हारा पति था वैसा ही मुझे करदो।" उसका शरीर बत्तीस लक्षणों से युक्त हो गया जिसे देखकर कामदेव भी मोहित हुआ ॥४२८॥

उसने अपना सिर रेशमी वस्त्र डाल कर ढक लिया तथा बहुरूपिणी विद्या का स्मरण किया। हीन अंग बौने की कला छोड़ दी, तब जिनदत्त सांवले शरीर का हो गया ॥४२९॥

अलिय ∠ अलीक–असत्य ।

[४३०–४३१]

सीस उघाडि घालियउ रालि, मोही सभा सयलु तिहि कालि ।
तिहु नारिस्यु कहइ हसंतु, हवहु हूँ ति तुम्हारउ कंतु ॥
देखि तिरी ते अचरिजु भयउ, चाहहि निरखहि ते विंभई ।
अपरंपर ते कहइ जोइ, किछु किछु होइ किछुरसि होइ ॥

अर्थ — सिर उघाड़ करके तथा पैरों में राल (रंग) डालकर (वह आया) तो उस समय उसका रूप देखकर सारी सभा मोहित हो गई। उसने तीनों स्त्रियों से हँसते हुये कहा, "अब मैं तुम्हारा पति हूँ ॥४३०॥

यह देखकर तीनों स्त्रियों को आश्चर्य हुआ तथा विस्मित होकर वे उसे ध्यान पूर्वक देखने लगी। वे परस्पर कहने लगी, (हमारा पति) तो यह है कुछ कुछ है और कुछ कुछ नहीं है (ऐसा विचार करने लगी) ।।४३१।।

[४३२–४३३]

विज्जाहरिय कहत इह बात, संभलि पुहम ताहु मुह बात ।
यह विज्जा खेलहु बावलउ, हैम पिउ देव नहीं साबलउ ।।
पुणु पच्चक्खु भयो जिनदत्तु, बत्तीसह लखण संजुत्तु ।
छाडी साबल वण्णी छाय, भई देहु सोने की काय ।।

अर्थ:—विद्याधरी बात कहने लगी। हे पृथ्वीपति ! उस की बात को स्मरण कर। यह बावला तो विद्या के खेल खेल रहा है हमारा पति तो हे देव ! सोने का सा है। सांवला नहीं है ।।४३२।।

तब जिनदत्त प्रत्यक्ष हो गया तथा वह बत्तीस लक्षणों वाला था। सांवले वर्ण की छाया छोड़ दी और उसकी देह सोने की काया हो गई ।।४३३।।

] ४३४–४३५ [

विमलामती काछ लगि पडई, सिरियामती पाय पाकडई ।
विज्जाहरि लागी उठि बाह, अबहु छाडी जाही जिणनाह ।।
जेठी बोलइ मोहि छाडि देवल पडइ, दूजी बोलि मोहि मेलि सायर पडिइ ।
तीजी बोलइ छाडि गयउ तुरंतु, किन पिय समलहु कलिहि की बात ।।

अर्थ :— विमलामती दौडकर उसके कच्छ (कटि) से लिपट गई तथा श्रीमती ने उसके पांव पकड़ लिये। विद्याधरी उठ कर उसकी बाहों से जा लगी और कहने लगी अब आप हे नाथ ! छोडकर न जाएं ।।४३४।।

सबसे बड़ी बोली, "ये मुझे मंदिर में छोड़ कर चले गये थे"। दूसरी

बोली "मुझे छोड़ कर वे समुद्र में कूद पड़े थे। तीसरी ने कहा 'मुझे सोती हुई छोड़ कर ये तुरंत चले गये थे। हे प्रिय! क्या कल की बातों का स्मरण है? ॥४३५॥

[४३६-४३७]

इहा सयल भोग महि रहिउ, बारह बारिस कष्ट तुम सहिउ।
एह बोलु मति बोलहु झूठ, तुम्हहि कष्ट हमुहि कि मुख दीठ॥
तब जिनदत्त कहइ सतिभाउ, तुम्हहि दुख सुंदरि वहि जाउ।
पाछइ कष्टु गयो फुडु कालु, अब सुख राजु करहु असरालु॥

अर्थ :— (स्त्रियों ने कहा) "यहाँ तो हम सकल भोग भोगती रहे और तुमने बारह वर्षों तक कष्ट सहे। इस प्रकार झूठ मत बोलो, तुम्हारे कष्ट क्या हमें तुम्हारे मुख पर दिखाई दे रहे हैं? ॥४३६॥

तब जिनदत्त ने सत्यभाव से कहा, "हे सुन्दरियों, तुम्हारा दुख बह जाए (नष्ट हो)। कष्टों का स्फुट काल अब पीछे चला गया (लद गया)। अब तुम निरन्तर सुख का राज्य करो ॥४३७॥

[४३८-४३९]

जिनदत्त तिरियमु मेलउ भयो, चिर भवियउ पाउ वहि गयो।
हरस्यो विमल सेठि तिह ठाइ, सइ राजा उठि लागिउ पाइ॥
पारवइ सभा अचंभौ भयो, जिणदत्त कीरति बहु विह गयऊ।
चउसय तीसा चौवही, पंडिय राइसीह जिह कही॥

अर्थ :—जिनदत्त और स्त्रियों का मिलन होगया तथा उन भविकों के चिरकाल के पाप दूर हो गये। विमल सेठ उस स्थान पर बड़ा प्रसन्न हुआ तथा सब राजा के चरणों से लगे ॥४३८॥

राजा की सभा को आश्चर्य हुआ तथा जिनदत्त की कीर्ति दशों दिशाओं में फैल गई। पंडित राजसिंह ने ये चारसौ तीस चौपाइयां कही ।।४३९।।

भविअ /_भविक -- मुक्ती- आकांक्षी, मुमुक्षु

[४४०-४४१]

भणइ राइ यहु किमु सलहियइ, अइसे चरित नु खयरहु किए ।
इसहि नु वर्ण्ण सके सरसुती, भणइ रल्हु यहु केती मती ।।
हकरायउ जो जोइसी सुजाणु, जो जोइसु की मुणइ पमाणु ।
पूछइ राउ भले चित सगुणु, सीघर[1] विप्र धरहि तुह लगुणु ।।

अर्थ :— राजा कहने लगा, "इसकी किस प्रकार प्रशंसा की जाए! ऐसे चरित तो विद्याधरों ने ही किये हैं। इसका वर्णन केवल सरस्वती ही बखान कर सकती है। रल्हु कवि कहता है "मेरे में कितनी बुद्धि है? ।।४४०।।

राजा ने चतुर ज्योतिषी को बुलाया जो ज्योतिष का प्रमाण विचारता था। राजा ने प्रसन्न चित्त होकर उससे शकुन पूछा और कहा, हे विप्र शीघ्र ही लग्न रखो ।।४४१।।

खयर /_खचर- विद्याधर

सीरघ /_शीघ्र १ मूलपाठ सीरघ

[४४२-४४३]

कहइ जोइसिउ लाणी रीती, अपरंपर इन्हु वहुल परीति ।
हउ जाणउ जोइस को भेउ, तुम्ह को तूसइ देव अलेउ ।।
गोधूलक साहउ रोपियउ, भली वाउ विनु सोई कहिउ ।
चवरी रई घरे हरे वास, तोरण थापे पूर्ण (पुण्य) कलास ।।

अर्थ :—ज्योतिषी ने कहा, "लाग्गी की रीति के अनुसार इन दोनों में आपस में बहुत प्रीति होगी । मैं ज्योतिष का भेद जानता हूं, तुम्हारे ऊपर अलेप (वीतराग) देव प्रसन्न हो गये हैं । ॥४४२॥

गोधूलि में विवाह निश्चित किया और जो अच्छा वार एवं दिन था नहीं कहा गया । गहरे हरे बांसों की चौरी रची गई तथा पूर्ण कलश की स्थापना करके तोरण (लगाये गये) ॥४४३॥

लाग्ग — ग्रहण स्वीकार

जिरणदत्त का चतुर्थ विवाह

[४४४-४४५]

बाजे पंच सबद गह गहे, ठाठा लोउ मिलि सबु रहे ।
कण्ण दिण्णु केकिउ बइसारि, परिणाई विमलामइ नारि ॥
नीलामणि मरगजमणि ऊज, पउमराइ[1] मणि अनुवइ दूज ।
चंद्रकंति मुत्ताहल भणे, ते सहु दिण्ण दाइजो घणे ॥

अर्थ :— जोर जोर से पांच प्रकार के बाजे बजने लगे तथा लोग उठ कर एक स्थान पर मिले । उसे केकिइ (घोड़े ?) पर बिठाकर कर्ण दिया (?) तथा विमलामती नारी जिनदत्त को ब्याह दी ॥४४४॥

नीलमणि, मरकतमणि, चमकती हुई पद्मरागमणि तथा वैडूर्य, चंद्रकांत एवं जो मुक्ताफल कहे जाते हैं उन सबको उसने दायजे (दहेज) में दिया ॥४४५॥

१ मूलपाठ "मउमराइ"

[४४६-४४७]

साहणु वाहणु देस कुवार, अर्थ द्रव्य अर्को भंडार ।
छत्त लंब चमर बहु कांपि, चाउरंग बल दीनिउ थापि ॥

चारौं तिरिय बुलाई पास, पुणु विमाणि चडियो घणा भास ।
घालिवि अरथु रयणु सबु लयो, उघइवि जवहुदत्त तिणु गयउ ॥

अर्थ :— राजा ने साधन, वाहन तथा कुछ देस दिये तथा अर्थ (द्रव्य) का तो भण्डार ही दिया। छत्र, दंड (दण्ड), चमर आदि बहुत सी वस्तुयें दीं तथा चतुरंगिणी सेना भी उसको (सौंप) दी ॥४४६॥

तब जिनदत्त ने चारों स्त्रियों को बुलाया और घनी आशा के साथ उन्हें विमान पर चढाया। उसमें अर्थ तथा रत्न आदि सब डाल लिये और तृप्त होकर वह सागरदत्त के पास गया। ॥४४७॥

आलंब ∠ आलम्ब — आश्रय, आधार

ऊघय ∠ आधय— तृप्त होना

[४४८-४४९]

सवहिदत्त जव दीठउ जाइ, गलिय नाक सडि गय पुण पाइ ।
खूसिउ अंगु पीव की गंधि, लागी पापी कहु कुट्ठ व्याधि ॥
सवहिदत्त मरि नरयह गयउ, दव्व आपुणौ जिणदत्तु लयउ ।
लै धणु चंपापुरि सो गयउ, पुणु घरि चलिवे को मनु भयउ[1] ॥

अर्थ :— जब उसने जाकर सागरदत्त को देखा तो उसकी नाक गल गया था एवं पाँव सड गया था। उसके सभी अंग दूषित हो गये थे तथा पीप की दुर्गन्धि आ रही थी क्योंकि उस पापी को कुष्ठ रोग लग गया था ॥४४८॥

सागरदत्त मर कर नर्क गया। जिनदत्त ने अपना द्रव्य उससे ले लिया। वह धन लेकर चंपापुरी गया तथा अपने घर जाने की उसके मन में इच्छा हुई ॥४४९॥

१ मूलपाठ (भयो)

[४५०-४५१]

(सम) घौ राउ अंतेउर घणी, समधउ विमल विमला सेठिणी ।
समधउ नायर नयर कौ लोग, जिणदत्त च(लइ) करइ जणु सोगु ।।
लए तुरंग मोल दहु लाख, मइमल छ - सहस्स करह असंख ।
सहस बत्तीस जोडणि······चाउरंगु बलु बलु सीम पवाणु ।।

अर्थ :— (जिनदत्त को) राजा के अन्तःपुर ने सघन रूप से विदा दी । विमल सेठ एवं विमला सेठाणी ने भी उसे विदा दी । नगर निवासियों ने विदा दी तथा (ज्योंही) जिनदत्त चला लोग शोक करने लगे । ।।४५०।।

उसने दस लाख घोड़े, छः हजार मदमस्त हाथी तथा असंख्य ऊँट मोल लिये । बत्तीस हजार ....। इस प्रकार उसने अपनी शक्ति प्रमाण चतुरंगिनी सेना जोड़ ली (इकट्ठी करली) ।।४५१।।

नायर — नागर

[४५२-४५३]

पाइक धाणुक हइ दह कोडि, पयदल चलिउ रायसिंहु जोडि ।
छत्रधारि कुसि गिरि जिन्हु पाहि, ते असंख रावत दल माहि ।।
जिणदत्त चलतहि कंपइ धरणि, उरवइ धूलि न सूझइ तरणी ।
हाकि निसाण जोडि जणु हुए, चपुनइ देस पलाणे घणे ।।

अर्थ :— पैदल एवं धनुर्धारी दश करोड़ थे । रायसिंह कवि कहता है, वह सेना जोड़ कर पैदल चला । जिनके छत्रधारी राजा पांवों में गिरते थे, ऐसे रावत दल में असंख्य राजा थे ।।४५२।।

जिनदत्त के चलते ही पृथ्वी कांपने लगी । इतनी धूल उठने लगी कि सूर्य नहीं दिखने लगा । जब समस्त निशानों को जोड़ कर उन पर चोट की गई तो बहुत से स्वतः ही अपने देश भाग गये ।।४५३।।

[४५४-४५५]

कवणइ गरहिउ उठवहि थाट, क(उणइ) राय दिखालहि वाट ।
दूसहु राउ ण को अंगवइ, नामु कहइ जइनी चक्कवइ ।।
भाजहि नयर देस विसमउ ....., पर चक्क भउ नवि असिझक सहहि ।
चाले कटक किए बहु रोल, अरिमंडल मणि हुइय कलोल ।।

अर्थ :—उसके थाट (सैन्य) के आगे कौन राजा गर्व कर सकता था ? तथा कौन राजा उसे मार्ग दर्शन करा सकता था ? उसके दुस्सह तेज को कोई भी सहन नहीं कर सकता था, और उसे जैन चक्रवर्ति का नाम लेकर कहने लगे थे ।।४५४।।

नगर एवं देश के लोग भागने लगे तथा शत्रु भी उसकी तलवारों का वार नहीं सहन कर सकते थे । उसकी सेना भारी शोर करती हुई आगे बढ़ी जिससे शत्रुमंडल के मनमें वह शोर हिल गया (व्याप्त हो गया) । ।।४५५।।

[४५६-४५७]

ढा ढा करत जोडि नीसरइ, आइति मगध देश पइसरहि ।
परिजा भाजि गई जहि राउ, वेढिउ सो वसंतपुर ठाउ ।।
परिजा (भाजी) गढह महंत, लागी पउलि तिऊ भेजंत ।
भयउ ढोंकुलि अरु गोफणी, रचे मारु कहु सीसे घणी ।।

अर्थ :—ढाढा करती हुई सेना चली और वह मगध देश में पहुंच गई । सारा वसंतपुर नगर सेना से वेष्टित होगया । प्रजा (भागकर) बड़े किले में चली गई । पौलि लग गई (बंद हो गई) और यंत्र खड़े हो गये । ढींकुली (ढेंकुली) और गोफणी हुए (लगाए गए) और मार करने के लिए अनेकानेक शिरस्त्राण रचे गये ।।४५६-४५७।।

वेढ ✓ वेष्टिय — आच्छादित करना ।

पौलि ∠ प्रतोली – मुख्य द्वार ।
ढोकुली–गोफरणी – पत्थर फेंकने के यंत्र ।
सीस – शीर्षक – शिरस्त्राण ।

[४५८–४५९]

कोट पा······(उ)त्तंग अगार, परिखा पूरिय जलह अपार ।
गढह सेष परिजा आकुली, बाडा लेहि छत्तीसह कुली ॥
चंदसिखर (बो)लइ सु पचारि, राखहु गढ खांडे की धार ।
जब लगु मोहि पासु दोइ बांह, को चांपिहइ कोट की छांह ॥

अर्थ :—कोट के (पास?) ऊंची प्राकार थी। परिखा (खाई) को अपार जल से भर दिया गया। शेष प्रजा गढ में व्याकुल थी और छत्तीसों कुली (जाति) के लोग बाड़ा ले रहे थे (अंदर से घरों को बंद कर रहे थे या सुरक्षित थे) ॥४५८॥

(वहां का राजा) चंद्रशेखर ललकार कर कहने लगा। गढ की रक्षा भी तलवार की धार पर करो। जब तक मेरे पास दो हाथ है तब तक कोई (परकोटा–किला) की छाया पर भी पैर नहीं रख सकता है। ॥४५९॥

[४६०–४६१]

पूर्व प(उलि) राइ सइ राख, परिग्गहु भड लषीहि असंख ।
दक्षिण पउलि चडइ सुहणासु, जो परिमंडल दल खय कासु ॥
(उत)र पउलि निकुंभ चंदेल, जे षगिलेह रण मामहि खेल ।
पछिम दिस जाय अभड चडहि, पडतव अकुहव··········· रहि ॥

(चारों दिशाओं में मोर्चा बन्दी की गई) पूर्व की पौल की रक्षा

राजा ने स्वयं अपने ऊपर ली, जिस पर असंख्य क्षत्रियों का भृत्य वर्ग नियुक्त हुआ। दक्षिण पौल के ऊपर सुहनालें (तोपें) चढ़ने लगी, जो शत्रु-सेना-मंडल के लिए क्षय-काल स्वरुप थी। ॥४६०॥

उत्तर पौल पर निकुंभ चंदेल खड़े हुये जो अन्य को मार्ग देने को तैयार न थे। पश्चिम दिशा की ओर यादव भट पड़ रहे (?) थे जो कि वज्र पड़ने पर भी [वहीं जमे] रहते थे ॥४६१॥

[४६२-४६४]

अवरु असंखह बहुतइ मिलिय, रखहि गढ़ छत्तीसउ कुलीय।
चंदसिखिर किउ मंतु तुरंतु, घालि (दूत) किन पूछइ बातु॥
मंत्री महामंत्र हकराइ, उसरि राजा बात कराइ।
अहो मंत तू भेटहि जाइ, किह कारणि ग·····उ आइ॥
पाहुडु लयउ रयणु भरिथालु, भेटणि चालिउ दूतु सुहिणालु।
अवरु पंचदश लइय हकारि, जिणदत्तह कटक मझारि॥

अर्थः— और भी बहुतेरे असंख्य (योद्धा) मिल गये और छत्तीसों कुली (जाति) गढ़ की रक्षा करने लगी। शीघ्र ही चन्द्रशेखर ने मंत्रणा की। (उन्होंने कहा) दूत भेजकर क्यों न पूछो कि क्या बात है? ॥४६२॥

राजा ने मंत्रियों तथा महामंत्रीयों को बुलाया, तथा अवसर (राज-सभा) में बात कराई। (राजा ने मंत्री से कहा) "अहो मंत्री, उससे जाकर भेंट करो और पूछो कि किस कारण यह आया है?" ॥४६३॥

पाहुड (उपहार) के रूप में रत्नों को थाल में भर कर और वह सुहिणाल दूत भेंट करने के लिये चला। पन्द्रह जनों को और बुला लिया और वह जिनदत्त की सेना में चला गया ॥४६४॥

उसर / ग्रौसर / ग्रवसर — राजसभा

पाहुड / प्राभृत —उपहार

चन्द्रशेखर राजा के दूत की जिएदत्त से भेंट

[४६५–४६६]

जाइ पहुतउ सिंह दुवारि, हाकिउ कएाइ दंड पडिहारि ।
को तुम पूछइ कहु तुरंतु, जइसइ राउ जगावउ बत्त ।।
इहा जु चंदुसिखरु भडराउ, तुहि बढ मागइ भेंट पसाउ ।
सीलवंत गुण गएाहु संजुत, हउ तसु केरउ ग्रायउ दूतु ।।

ग्रर्थ :—वह सिंह - द्वार पर आकर पहुँचा तो प्रतिहारी ने स्वर्ण-दंड हाँका (हिलाया) । उसने दूत से पूछा, "तुम कौन हो शीघ्र बताओ जिससे मैं राजा के पास जाकर बात बताऊँ । ।।४६५।।

(दूत ने कहा), " यहाँ जो चंद्रशेखर नामका भट (योद्धा) राजा है, वह आपसे भेंट की कृपा चाहता है । वह शीलवान एवं गुणों से संयुक्त है, मैं उसका दूत आया हूँ ।।४६६।।

[४६७–४६८]

भीतरि बात कहहि पडिहार, सिरघ राइ जगावइ सार ।
पाहुड ल बहु रयण महंत, पूछिउ चंदसिखर भडु कहंत ।।
ग्राणि भिटावहि बोलिउ राउ, गउ पडिहारु दूतु के ठाउ ।
राजा तुम्ह कउ कियउ पसाउ, भीतरि दूतु ग्रवधारहु पाउ ।

ग्रर्थ :— प्रतिहारी ने भीतर (जाकर) बात कही तथा शीघ्र राजा को बात बता दी । वह बहुतेरे रत्न उपहार-स्वरुप लिए हुए है, और मैंने पूछा तो वह अपने को चंद्रशेखर राजा का (दूत) बतलाता है ।।४६७।।

राजा (जिनदत्त) ने कहा, "उसे लाकर मिलाओ। प्रतिहार दूत के स्थान पर गया और कहा, "राजा ने तुम पर कृपा की है। हे दूत, तुम भीतर पधारो ॥४६८॥

पाहुड ∠. — उपहार। सीरव ∠. शीघ्र

[४६९]

भीतरि दूतु गयउ सुहिणालु, आगिउ धरिउ रयण भरि थालु ।
दीठउ दूतु राउ तिहि ठाउ, देखि सीसु धरि लगिउ पाउ ॥

अर्थ :—सहिणाल (नाम का वह) दूत भीतर गया और (जिनदत्त के) आगे रत्नों का भरा हुआ थाल उसने रख दिया। दूत ने राजा को वहाँ देखा तो उसे विश्वास दिलाकर उसने (राजा के) चरणों का स्पर्श किया ॥४६९॥

[४७०]

वस्तु बंध

दूतु पभणइ णिसुणि नरनाहु ।
की परिजा गंजियइ, काइ देव धर पलइ कीजइ ।
काइ नयर चउदिसहि विस रहिउ, कासु उवरि देव कोहु कीजइ ॥
तुम समरंगणि अभिडत, सा सीमा अम्हि जिण हीण ।
भणइ दूत सुए नरनाह, फुडु लेउ दंडु हुइ लीणु ॥

दूत कहने लगा, "हे नरनाथ, सुनो। हे देव, आप क्यों प्रजा को नष्ट कर रहे हैं और किस कारण धर में प्रलय कर रहे हैं ? किस कारण नगर के चारों ओर आपने घेरा डाला है ? और किस के ऊपर हे देव! आप क्रोध कर रहे हैं ? यदि हम आपसे लड़ें तो हे स्वामी! हम जैन धर्म से विमुख होंगे। दूत ने कहा हे नर नाथ! इसलिये मैं स्फुट रूप से स्पष्ट दंड लेकर घर चलिये। ॥४७०॥

पलइ ∠. प्रलय। उवरि—ऊपर

[४७१–४७२]

भणइ दूत णरणाह सुणेहि, परजा बंध म अपजस लेहि ।
मोहि सिहु जूझु समरि हुइ काहि, लेहि दंडु सामिय घरि जाहि ।।
ण लिउ दंड णु देस कुठारु, ना लिउ सहणु अरथु भंडारु ।
तुम्हरइ णयरु जि वणिवरु आह, सो मोहि देउ जीउदेव साहु ।।

अर्थ :— दूत ने कहा, "हे नरनाथ ! सुनिये प्रजा को बांध कर अपयश न लीजिए । मुझ से युद्ध में लडने से क्या होगा । हे स्वामी ! (आप) दंड लेकर घर जाइए ।।४७१।।

(जिनदत्त ने कहा,) "मैं दंड नहीं लूंगा न देश कोठार (खजाना) लूंगा और न मैं सहन तथा अर्थ भण्डार लूंगा । तुम्हारे ही नगर में जो वणिकवर है उस जीवदेव साहु को मुझे देदो" ।।४७२।।

[४७३–४७४]

धम्मनिहाणु जीवदेउ सेठि, अरु नित नवइ पंच परमेठि ।
नयरहि मंडणु सुद्ध सहाउ, परतसु जियत न अप्पइ राउ ।।
भणइ राउ किम पहिले चऊ, अजि[1] जु नयरहि कुइ लावऊ ।
आजु ण सेठि आउ मो ठाउ, कल्हि नयरि करु बांधउ राउ ।।

अर्थ :— (दूत ने कहा) "वह जीवदेव सेठ धर्म निधान है तथा नित्य प्रति वह पंच परमेष्ठि को नमस्कार करता है । वह नगर का मंडन और शुद्ध स्वभाव का है पर उसे राजा जीते जी नहीं अर्पित करेगा । ।।४७३।।

राजा (जिनदत्त) ने कहा, फिर पहिले कैसे कहा ? । आज उसे नगर में कोई लाओ । यदि आज सेठ मेरे स्थान पर नहीं आया तो कल नगरी और राजा को बांधूगा ।।४७४।।

नयरी८ नगरी १ मूलपाठ 'कानि'

[४७५–४७६]

बाहुडि दूतु बोलइ ए वयरग, निसुरगहि चंद सिखर भड रयरग ।
अकहा कहा किम कहियइ बेठि, मांगइ देव जीवदे सेठि ।।
बोल चंदसिखिर भड साहु, अरे दूत किन गई तुह जीह ।
बरु किनु बांधइ बाल गोपाल, सेठि आफि जीवउ के काल ।।

अर्थ :— वह दूत वापिस लौट कर यह वचन बोला, "हे भटरत्न चन्द्रशेखर ! सुनो । यहाँ बैठ कर न कहने योग्य बात क्यों कहते हो ? वह हे देव ! जीवदेव सेठ को माँग रहा है । ।।४७५।।

भटसाधु चन्द्रशेखर बोला । अरे दूत ! तेरी जीभ क्यों नहीं गई ! वह भले ही (मेरे) बाल गोपाल को क्यों नहीं बांधले, सेठ को देकर कितने समय तक मैं जीऊँगा ? ।।४७६।।

बाहुड /_ व्याघुट – लौटना, वापस होना

[४७७–४७८]

लापड दूतु कढाउं खालु, भुज वाहु तु तरु फाडउ गालु ।
वज्रु पडउ तो दूतु कालु, आफि सेठि जीवउ के कालु ।।
बरु लेउ साहणु वाहणु भाडि, बरु किनु भंघइ दइ मुहि धाडि ।
बरु किनु नयरि करइ वह कालु, आफि सेठि जीवउ कइ कालु ।।

अर्थ :— "हे लंपट दूत मैं तेरी खाल निकलवा लूँगा और भुजाओं से तेरे गाल फाड दूँगा । रे दूत ! तुझ पर काल वज्र पड़े; सेठ को देकर मैं कितने समय तक जीऊँगा ? ।।४७७।।

भले ही मेरे समस्त साहन-वाहन लेलो, भले ही क्यों न मुँह में दाढा देकर मुझे बंदी कर लो, भले ही क्यों न नगरी को समाप्त कर दो, पर सेठ को अर्पित कर मैं कितने समय तक जीऊँगा ? ।।४७८।।

लापड ∠ लंपट । के ∠ कियत — कितना।

[४७९–४८०]

सावउ चंद सिखर वड लवइ, वर किनु नयरहं कुहला ववइ ।
वर किनु देसु निरालउ जाल, सेठि थकि जीवइ कइ काल ।
···ल रहे सेठ जइ जाएा, तेउ सेठिरिए सिहु कहइ नियाएा ।
रायण्हु मरणु ठाणु इइ भयउ,···कारणु तिन्ह रणु मांडियउ ।।

अर्थः—चन्द्रशेखर बहुत सत्य कह रहा था, भले ही क्यों न नगर में कुचला बोदे और भले ही क्यों न देश मात्र को जला दे, सेठ को देकर मैं कितने समय तक जीऊँगा । ।।४७९।।

जब वह सेठ को ज्ञात हुआ......तब वह सेठानी से निदान कहने लगा । "राजा का भी मरने का समय आगया है, कारण यह है कि उन्होंने (शत्रु ने) युद्ध की तैय्यारी की है" ।।४८०।।

लव ∠ लप — कहना, बोलना,

जीवदेव जिनदत्त मिलन

[४८१–४८२]

पुणु जीवदेउ कहत हियइ ए वयरा, पूत सोगु हम फूटे नयरा ।
(सुत) विदेसु हमु आयो मरण, सेठिरिए देहऐ काउ करणु ।।
भरणय सेठि रे हृदय निकिठ, एक वार जिणदत्त न दिठ ।
तबु सेठिरिए समुभावरा लियउ, करि समसारा राहु विठ हियउ ।।

अर्थ :— फिर जीवदेव अपने हृदय में यह वचन कहने लगा, "पुत्र के शोक में हमारे नयन फूट गये हैं । पुत्र जब विदेश में है तब हमारी मृत्यु आई है, सेठानी देखो अब क्या करना चाहिये" । ।।४८१।।

सेठ ने (फिर) कहा, "दैव ही बड़ा निकृष्ट है, उसने एक बार भी जिनदत्त को नहीं दिखाया। तब सेठानी उसको समझाने लगी "हे नाथ अवसान के समय हृदय को दृढ़ करो ॥४८२॥

[४८३–४८४]

तूटउ इ...... सामिय तुह तरणउ, अवसु निवेदिउ' जिउ आपुरणउ ।
अब जिण सरणु अउर नहीं कोइ, जो...वइ सो सामिय होइ ॥
फुरइ रणयणु अरु चितु गहगहइ, जाणउ पूतु आगमणु कहइ ।
पर (इह) संकट दीसइ सोइ, जो भावइ सो सामी होइ ॥

अर्थ :— "हे स्वामी (अपने दोनों) का दुख टूटा हुआ है (दूर हुआ-चाहता है) मैं अपना जी (विचार) अवश्य निवेदन करूँगी। अब तो जिनेन्द्र भगवान के अतिरिक्त कोई शरण नहीं है। हे स्वामी! जो (भगवान) ने देखा है वही होगा" ॥४८३॥

"आँखें फड़कती है तथा चित गद्‌गद (पुलकित) हो रहा, मानों यह सब पुत्र-आगमन कह रहे हों। किन्तु सामने वह संकट दिखता है, इसलिये जैसा परमात्मा को स्वीकार होगा, हे स्वामी! वैसा ही होगा ।।४८४।।

[४८५–४८६]

हमु कारणि ग मारयइ लोगु, मरउ पूतु ज घरि सोगु ।
इय चिंतेवि दुविह संजासु, ले विणु चालिय पर बल पासु ॥
सेठिहि चलित नु ...... इ राउ, नयर लोगु चित भयउ विसमाउ ।
सेठि संघात बहुत जण चलहि, पुणु जिणवत्त कडक पइसरइ ॥

अर्थ :— "हमारे कारण लोगों को वे मत (न) मारें। (क्योंकि-जिसका) पुत्र मरा (उसी के घर में शोक हुआ। इस प्रकार चिन्ता

करते हुये दोनों दुविधा में पड़े। शत्रु की सेना के पास (लिए जाने) के लिए चले ॥४८५॥

सेठ के चलते समय राजा......नगर के लोगों के भी चित्त में विस्मय (दुख) हुआ। सेठ के साथ बहुत से व्यक्ति चले और फिर वे जिनदत्त की सेना में प्रविष्ट हुए ॥४८६॥

मूलपाठ 'मारणरवइ''

[४८७–४८८]

सावधाण किउ दिढु चितु सेठि, लागिउ सुमरणि मणु परमेठि।
इहि (उव?) सग्गहि जइ उवरहिं, तउ आहारु तवहु कि करहुं॥
पइठिउ कटकहु बहु जण राहिउं, ...णइ जाइ राइ सिउ कहिउ।
तउ जिणदत्त भणइ मुहु जोइ, बहुले मिलियउ आवइ......॥

अर्थं :—सेठ ने अपने चित्त को सावधान एवं दृढ किया तथा पंच परमेष्ठि का मन में स्मरण करने लगा। (उसने संकल्प किया,) "यदि इस उपसर्ग से मैं उबर जाऊँगा तो मैं किसी तपस्वी को अवश्य अहार दूँगा" ॥४८७॥

बहुत से व्यक्तियों के साथ वह सेना में गया और वहाँ जाकर राजा से निवेदन किया। फिर जिनदत्त उसका मुख देखकर कहने लगा, "बहुत से व्यक्ति मिलकर मिलने आए हैं" ॥४८८॥

[४८९–४९०]

जो हइ सेठि धम्मु को निलउ, सो यहु जीवदेउ कुलतिलउ।
भणइ राउ महु जो बत काइ, बापु माइ जिहि आवतु पाइ॥
नेत पटोली पंथ पसारि, आवइ सेठि अवरु तहि नारि।
सिंहासण हुइ रयणह जडिय, बइसइ आणि सेठि कहु धरिय॥

अर्थ :—"जो सेठ धर्म का निलय है वह जीवदेव, जो कुल का तिलक है, कहाँ है। राजा ने कहा, "मेरे जीते होने से क्या हुआ यदि मेरे माँ बाप पैरों (पैदल) आरहे हैं ?" ।।४८६।।

मार्ग में उसने नेत्र तथा पटोली (दो प्रकार के रेशमी वस्त्र) फैलाये, क्योंकि वहाँ सेठ तथा उसकी स्त्री आ रही थी। रत्नों से जड़े हुए दो सिंहासन भी उसने सेठ (तथा सेठानी) के बैठने के लिए ला रक्खे ।।४९०।।

[४९१–४९२]

जाइ पहूते राइ अथाण, बोलत बोल न काणहि काण ।
ता जिनदत्तह पुछण लए, काहे सेठि मउण लइ रहे ।।
इह परदेश णिरंजन जाणु, सहसन सनु हुइ लयउ अवसाणु ।।
इथ सुय दुख अवरु तुम्ह मांगियउ, असगु जाणि मउणवउ लियउ ।

अर्थ :—वे राजा के आस्थान (सभा मंडप) पर पहुँचे किन्तु मर्यादा ही मर्यादा में (रहने के कारण) वे कुछ नहीं बोले। इससे जिनदत्त पूछने लगा "हे सेठ! तुमने मौन क्यों ले रखा है" ? ।।४९१।।

सेठने कहा– इसे निर्जन प्रदेश जानो और सनसन (सन्नाटा) होने का कारण मैंने अवसान ले लिया है। एक सुत का दुःख है और (दूसरे) तुमने हमें मांग भेजा है, अतः उपसर्ग समझ कर हमने मौन व्रत ले लिया है ।।४९२।।

अथाण ∠ आस्थान – आस्थान – मंडप, अथाई ।

[४९३–४९४]

भणइ राउ मति सेठि बराहि, तुम्ह पीछे हमु काजु ण आहि ।
जहि कइ हियइ पंच परमेठि, से तुम्ह आहि जीवदो सेठि ।।

तवहिं विसूरिउ बोलइ सेठि, हउ आराहउ मिच परमेठि, ।
निछइ देउँ देइ महिं मुनिउ, अजर अमर जिण आगमु सुणिउ ॥

अर्थ :—राजा कहने लगा, हे सेठ तुम डरो मत । तुमको पीड़ा (दुःख) देने का हमारा कोई कार्य (प्रयोजन) नहीं है । जिसके हृदय में पंच परमेष्ठि हैं, जीवदेव सेठ तुम ऐसे हो ॥४६३॥

तब सेठ बिसूर कर (चिंता रहित होकर) बोला, "मैं तो निश्चित रूप से पंच परमेष्ठि की आराधना करता हूँ । निश्चय ही मैं पृथ्वी के मुनियों को देय (अहार) देता रहा हूँ और अजर-अमर जिनागम हैं, उन्हें मैं सुनता रहा हूँ ॥४६४॥

[४६५–४६६]

राजनु पूतु गयउ पर तीर, तहिं दुख सूकउ सयल सरीर, ।
तुम्ह बाधे हमु नाही दोसु, दुख बढे हमु पाउ मोख ॥
तवहिं राउ बोलत हइ जाणि, एते कटक लेहु पर आणि ।
मोहि समतु जइ राजनु होइ, इहं होंइ नर आवइ सोइ ॥

अर्थ — "हे राजन, मेरा पुत्र विदेश चला गया; उसी के दुःख से सारा शरीर सूख गया । तुम यदि मुझे बंदी करो तो इसमें हमें कोई दुःख नहीं होगा (हमारा कुछ बिगड़ता नहीं है) क्योंकि दुःख की वृद्धि से तो हमें मोक्ष (छुटकारा) मिल जावेगा ॥४६५॥

तब राजा ने (यह सब) जानकर कहा, इस सारी सेना से शत्रु को जान लो । 'यदि मेरे समान कोई राजा है, तो वह नर श्रेष्ठ यहाँ क्यों नहीं आता है । ॥४६६॥

[४६७–४६८]

तउ सेठिणि बोलिउ सतभाउ, जइ पहु अवहोइ पसाउ ।
किछु परि आणउ देउ निरुत, तुम्ह अइसौ धौ म्हारउ पूतु ॥

जिणवत्त गहिबरु आयौ हियउ, दीठउ माइ बापु बिलखियउ ।
उठित पीय लोटणी कराइ, चारउ तिरिया लागहि पाइ ।।

अर्थ :—तब सेठानी ने सत्य भाव से कहा, "यदि, हे प्रभु ! अब (आपकी) कृपा हो जाए। तो हे देव! हम कुछ मिन्त जाने (कहें) क्योंकि तुम्हारे ही ऐसा हमारा पुत्र था ।।४९७।।

जिनदत्त का हृदय पुलकित हो उठा और माँ बाप को देखकर वह रो पड़ा। वह उठकर उनके पाँवों में लोटने लगा तथा उनकी चारों स्त्रियां भी उनके चरणों में लग गई ।।४९८।।

[४९९-५००]

जणणी चलणु रणमिउ अठंगु, पाय पखालित परिसिउ अंगु ।
गहविर बोलइ साहस धीर, अब महु सुद्धउ भयउ सरीर ।।
सेठिणि गहवरि आयउ हियउ, पुणु आपणउ उछंगह लियउ ।
जायौ पूतु आज सुपियार, खीर पवाहु बहे थरण हार ।।

अर्थ :—उसने माता के चरणों में साष्टांग नमस्कार किया तथा पाँवों को पखार (धो) कर (उसके) अंगों का स्पर्श किया। साहसी जीवदेव बोला, "अब मेरा शरीर शुद्ध हो गया ।।४९९।।

सेठानी का हृदय भी भर आया, फिर उसने उसे अपनी गोद में ले लिया और कहा हे प्रिय! मानों तुम आज ही पैदा हुए हो और यह कहते हुये उसके भारी स्तनों से दूध की धारा बह निकली ।।५००।।

पियार ∠ प्रिय + तर ।

[५०१-५०२]

मेरे जिरणदत्त पूरिय आस, तुझ बिण पूत भई जु गिरास ।
खरण इकु चापहि ना बीसरइ, अनु दिनु जिरणदत्तु जिरणदत्तु करइ ।।

छाडे आपह भोग विलास, पान फूल भोजन की आस।
रातहि णीद न दिवसह भूख, तुम्ह विणु पूत सहे बहु दुख ॥

अर्थ :— वह कहने लगी, हे जिनदत्त ! तुम मिल गये और तुमने मेरी आशाओं को पूरा कर दिया। हे पुत्र ! तुम्हारे बिना मैं निराश हो गई थी एक क्षण भी तुम्हारा बाप (तुम्हारा-स्मरण) नहीं भूलता था। वे प्रति दिन जिनदत्त २ करते रहते थे ॥ ५०१ ॥

तुम्हारे बाप ने सब भोग विलास छोड़ दिये थे तथा उन्होंने पान, पुष्प एवं भोजन की आशा छोड़ रक्खी थी। न रात को नींद आती थी न दिन में भूख। हे पुत्र ! तुम्हारे बिना हमने बहुत दुःख सहे ॥५०२॥

[५०३—५०४]

भए बधाए हाव निसाण, चंदसिखर आए अगवाण।
उछली गुडी सलहहि भाट, नेत पटोले छाई हाट ॥
इम आणंदे गए अवास, इंछित माणहि भोग विलास।
बहुल दाण चउ संघ कराइ, दुही दीण सब रहे अघाइ ॥

बधावे हुए और पौसी (ओसा) पर चोट पड़ी तथा राजा चन्द्र-शेखर उसकी आगवानी करने आए। गुडी उछली तथा भाटों ने स्तुति की बाजार नेत्र एवं पटोर से सजाये गये ॥५०३॥

इस प्रकार आनन्दित हो कर जिनदत्त अपने निवास स्थान पर गए तथा मनवांछित भोग विलास करने लगे। चारों संघों को बहुत सा दान करने लगे। तथा दीन और दुखी लोग (उनके दानों से) तृप्त होकर रहने लगे ॥५०४॥

नेत ∠ नेत्र — एक प्रकार का रेशमी कपड़ा
पटोर ∠ पटकूल— एक प्रकार का रेशमी कपड़ा

गृहस्थ जीवन

[५०५–५०६]

चंदसिखर अरु जिणदत्त राय, रजु करहि बसंतपुर ठाउ ।
एक चित्त (दुइ)[1] रहिय सरीर, परिजा पालहि दोउ वीर ॥
विमलमती सुव विमलु उपण्णु, एकु सुदत्तु अवरु पसण्णु ।
सुप्पहु महमेहा धुवसती, ए जाए हइ सिरियामती ॥

अर्थ: — राजा चंद्रशेखर एवं जिनदत्त दोनों बसंतपुर में राज्य करने लगे । दोनों एक चित्त दो शरीर होकर रहने लगे और दोनों वीर प्रजा का पालन करने लगे ॥५०५॥

विमलमती से सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुए: एक सुदत्त एवं दूसरा रूपदत्त तथा श्रीमती से सुप्रभ, अतिमेघ एवं ध्रुवमती उत्पन्न हुए ॥५०६॥

१ मूल पाठ—"देख"

[५०७–५०८]

करहि राजु भोगहि परठइ, नीत पणीत सतीण भए ।
जीवंजसा जीवदेउ साहु, तउ करि लहिउ सगवर ठाउ ॥
विज्जाहरि जायउ सुवकेउ, अरु जयकेतु सु गरुडकेउ ।
गुणमित्तु जयमित्तु मनभावती, वणिएमित्तु भयो विमलासती ॥

अर्थ :— (जिनदत्त) राज्य करते हुए भोगों में प्रस्थापित हो गये । और नित्य प्रति उन में सतृष्ण होते गये । (उसके माता एवं पिता) जीवंजसा और जीवदेव साहु ने तप करके श्रेष्ट स्वर्ग में स्थान प्राप्त किया ॥५०७॥

विद्याधरी स्त्री से सुकेतु, जयकेतु, एवं गरुडकेतु उत्पन्न हुये तथा

विमलासती (शृंगारमती) से गुणमित्र, जयमित्र, मनमावती तथा दक्षिणमित्र, उत्पन्न हुये ।।५०८।।

[५०९-५१०]

वणिवरु कुलि जिणवत्त उप्पण, पाछै राजु भयो परिपुण्ण ।
भवियहु करुण अचंभौ लोइ, पुन्न फलहु किं किं नउ होउ ।।
जं जं पुहमिहि दीसइ चंगु, तं तं धम्महु केरउ अंगु ।
जं जं किं पि असुंदरु हवइ, तं तं पावहु फलु जिणु कहइ ।।

अर्थ :— जिनदत्त ने वणिक् के घर जन्म लिया लेकिन पीछे वह राज्य में परिपूर्ण हुआ । लेकिन हे भविको! इसमें कौनसा आश्चर्य है? पुण्य से क्या क्या नहीं होता (कौन कौन से फल नहीं प्राप्त होते) ? ।।५०९।।

जो जो पृथ्वी पर सुन्दर दिखता है, वह वह धर्म का अंग है, और जो जो कुछ भी असुन्दर होता है, वह वह पाप का फल है– ऐसा जिनेन्द्र भगवान् का कथन है ।।५१०।।

[५११-५१२]

जिणवरु धम्मु निछम्मु अभोइ, सग्ग मोख बहु कारणु होइ ।
राजभोग किर केती भाति, निम्रउ पालहु बहिवि भरांति ।।
उक्क बडण बहराइ निमित्तु, लहिवि भोय संसारहु चित्तु ।
राजु देवि जिणवत्तहु सच्चु, चंदसिखरु तपु लाग्यो भव्यु ।।

अर्थ :— जिनेन्द्र भगवान का धर्म निश्छद्म और अभोग (भोग रहित) है इसलिये स्वर्ग मोक्ष का भी कारण है । राज्य भोग की कितनी ही सीमा हो (कितना ही परिमाण हो) निश्चय ही भ्रांति का त्याग कर (उस धर्म का) पालन करो ।।५११।।

उल्कापात के निमित्त से भोग महण को संसार की स्थिति को बढ़ानेवाला जानकर उसे वैराग्य हुआ तथा जिनदत्त को समस्त राज्य देकर (राजा) चंद्रशेखर भव्य तप करने लगा ।।५१२।।

निछम्म ∠ णिच्छम ∠ निश्छद्मन – निष्कपट,
किर ∠ किल । चइ ∠त्यज – त्याग करता माया रहित
वइराइ – विराग । उक्क ∠ (उल्का) –लोभ, सुखेच्छा वासना
वडण ∠ पतन । भोय=भोग

मुनि वंदना के लिये प्रस्थान

[५१३–५१४]

पाछइ राजु करइ जिणदत्तु, परिवारहं सो हियउ महंतु ।
तहि बइठे जहि बाल गोपाल, श्राइत बात कहा वणवाल ।।
देव समाहिगुप्त मुनि श्राइ, सीलवंतु जसु शुद्ध सहाउ ।
फूली फली वणासई देव, णर सुर खयर करहिं जसु सेव ।।

अर्थ: — पीछे अकेला जिनदत्त राज करने लगा तथा अपने परिवार के सहृदय से महान हो गया । एक दिन जब वह बाल गोपाल के साथ बैठा हुआ था तो वनपाल ने आकर यह बात कही ।।५१३।।

"हे देव ! एक समाधिगुप्त नामके मुनि आए हुए हैं जो शीलवंत हैं और जिनका शुद्ध स्वभाव है । उनके कारण वनस्पति फल फूल गई है तथा जिसकी सेवा मनुष्य, देव और विद्याधर करते हैं ।।५१४।।

खयर ∠ खचर – आकाशगामी, विद्याधर ।

[५१५–५१६]

जिणदत्त सुणिउ गुरहं जवु णाउ, सात पाय धरि परिणामु ।
पुणि आणंद निसाण दिवाइ, सिउ परियारहं वंदणु जाइ ।।

आइवि दीठे मुणिवरु पाइ, करि तिसुधि णिरु लागउ पाइ ।।
तुम्हहिन वंदन सक्कइ कोइ, जर मीचु तुम्हि घाली खोइ ।।

अर्थ :— जिनदत्त ने जब यह सुना और जान लिया कि (उसके) गुरु (आए) हैं। उसने अंततः सात पैंड चलकर उन्हें नमस्कार किया। फिर आनन्द के घौंसे बजवा कर परिवार सहित वह (उनके पास) वंदना के लिये गया ।।५१५।।

उसने वहाँ जाकर मुनि के चरणों के दर्शन किये तथा (मन,वचन, काय) तीन प्रकार की शुद्धि कर उनके चरणों में वह निश्चित रूप से पड़ गया और उसने कहा, "आपको वंदना कोई नहीं कर सकता क्योंकि वृद्धावस्था एवं मृत्यु तुमने खो डाली है" ।।५१६।।

तत्त्वोपदेश

[५१७–५१८]

पूछइ जिणदत्तु जिणवर धम्मु, कहइ (हुमु) णीसरु गालिउ कम्मु ।
देउ एकु अरहंतु मुणेहु, दया धम्मु बहु भेय सुणेहि ।।
गुरु निगंथु संगुम .....चतु, मज्ज मंसु महु चइ णिरभंतु ।
पंचुंबर निसि भोज चइज्जु, नवणिउ अणगालिउ जलवज्जु ।।

(फिर उनसे) जिनदत्त ने जिनेन्द्र भगवान के धर्म के विषय में पूछा। मुनीश्वर ने कहा "कर्मों को नष्ट करो। एक अरिहंत देव को मानो तथा दया एवं धर्म के भेद को सुनो"।

मुनि ने कहा निग्रंथ गुरु की सेवा करो। मदिरा मांस मधु को निर्भ्रांति त्यागो। पांच उदम्बर तथा रात्रि को भोजन त्यागो। नवनीत तथा बिना छने हुए जलका प्रयोग त्यागो

गालिय ∠ गालित–छना हुआ

णिगंथ ∠ निर्ग्रन्थ –परिग्रहहीन, मुनि

[५१९–५२०]

अणुव्वय पंच गुणव्वय तिण्णि, चाउ सिखाव्वउ धरि चउवण्ण ।
अंतयाल सल्लेहणु होइ, ए सावय वय आखहि जोइ ॥
पुणु अणयार धम्म बहु भेय, कहिउ मुणिंद भवमल छेउ ।
सत्त तच्च णय णव पद दव्व, पंचकाय तुह जाणहि भव्व ॥

अर्थ :— पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत तथा चार शिक्षाव्रत (इन बारह-व्रतों को) चारों वर्णों (ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य और शूद्र) धारण करे तथा अन्त समय सल्लेखना धारण करे, ये श्रावक के व्रत कहलाते हैं ॥५१९॥

फिर मुनि ने भव-मल को छेदने वाले अनागार (यति) धर्म के अनेक भेदों को कहा। हे भव्य। सात तत्व, (सात) नय, नव पदार्थ, (छह) द्रव्य और पंचास्तिकाय को तुम जानो ॥५२०॥

[५२१–५२२]

बारह भावण कहिय बियारि, संजमु नेमु धम्मु तउ चारि ।
अब्भंतरि परमप्पा बुज्झि, उत्तम ज्झाणु कहिउ मइ सुज्झि ॥
पुणु पयत्थु पिंडत्थु जिणुत्तु, रूव सुरूवु गय रूव अणंतु ।
अट्ठ रउद धम्म कउ भेउ, सुक्ल ज्झाण वज्जरिउ अछेउ ॥

अर्थ—: और कहा "बारह भावनाओं का विचार (चिन्तन) करो तथा संयम, नियम, (दश लक्षण) धर्म और तप इन चारों को परमपद के लिये अभ्यंतर (अन्तरंग) रूप से जानो। अब मैं तुम्हें उत्तम ध्यान को कहता हूं ॥५२१॥

फिर पदस्थ, पिंडस्थ, जिनेन्द्र के रूप के समान (रूपस्थ) तथा अनंत (गुणों के धारण करने वाले) रूपातीत (सिद्धों के) ध्यान को जानो। आर्त, रौद्र, धर्म एवं शुक्ल ध्यानों के भेदों को जानकर ग्रहण एवं त्यागो ॥५२२॥

अलेउ – नहीं लेने योग्य

रूवगय–रूपातीत

[५२३–५२४]

दंसणु णाणु चरणु रयणाइ, आखिय किरिया अरु पडिमाइ।
चारि नियोगवि कहिय वियारि, जिणदत्त कहिउ मुणिणइ सुसारि॥
बहु पयार आगमु वज्जरिउ, णिसुणिवि राहणु मनु गहगहिउ।
भव कूवि बुडंतिहि मलहारि, सामिय पय विणु को संसारि॥

अर्थः—दर्शन, ज्ञान एवं चरित्र, रत्नादि को, संपूर्णक्रिया तथा प्रतिमाओं को कहा। चारों अनुयोगों को विचार करने को कहा, और कहा, हे जिनदत्त! "यही सब सार है" ॥५२३॥

अनेक प्रकार के आगमों को कहा जिसे सुनकर राजा का मन प्रसन्न हो गया। (जिनदत्त ने कहा) भव कूप में डूबने वाले के पाप (मल) को हरने वाले स्वामी के चरण के बिना संसार में (और) कौन (सहारा) है ॥५२४॥

[५२५–५२६]

पाछे जिनदत्त अवसरु लहिवि, पूछइ मुणिवरु कहु सहु सरिवि।
णाणवंत सामिय वय करहु, महु मण संसउ फुड अवहरहु॥
मह तिरिया सहु गरुवउ नेहु, किणि कारणि सामिय कहेहु।
दुइ चंपहि इकु सिंहल दीपु, किमु विज्जाहरि लहिय समीपु॥

अर्थ :— पीछे जिनदत्त ने अवसर पाकर मुनि श्रेष्ठ से सर्व वृतांत कहने को निवेदन किया। हे ज्ञानवंत स्वामी, मुझ पर दया करके मेरे मन की (स्फुट) शंका को दूर कीजिये ॥५२५॥

हे स्वामी, किस कारण से चारों स्त्रियों से मेरा अत्यधिक स्नेह है। तथा उनमें से दो चंपापुरी, एक सिंहल द्वीप से और एक सुन्दर विद्याधरी कैसे प्राप्त हुई, सो सब कहो ॥५२६॥

पूर्व भव वर्णन

[५२७–५२८]

बिमलाणणु बोलइ ए रिसउ, देसि अवंती णामें विसउ।
पुरि उज्जेणि अजिय णिवासि, तहं धणदेउ सेठि गुणरासि॥
तहि सिवदेउ बहु बालउ पुतु, धम्म कम्म करि भयउ संजुत्तु।
आउ जिणेसह णहवणु करंतु, हयउ कुलि गऊ सग्ग तुरंतु॥

अर्थ: — वे बिमलानन (निर्मल मुहँ वाले) ऋषि इस प्रकार बोले, "विश्व में अवंती नाम का देश है उसके उज्जयिणी नगरी में अजित (राजा) का निवास था। वहीं गुणों की राशी वाला (गुणवान) एक धनदेव सेठ था ॥५२७॥

उनके धर्म कर्म से संयुक्त शिवदेव नामका बुद्धिमान बालक पुत्र हुआ। (उस बालक का) पिता (धनदेव) जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक करते हुए कुयोग से मरकर तुरन्त ही स्वर्गवासी हुआ ॥५२८॥

कुलि ∠ कुलिय – कुयोग

[५२९–५३०]

सु दारिद्दइ पीडिउ थरणउ, पर छाडिया न धम्म आपुणउ।
दुहि णिक हियइ बसइ जिण सोइ, वणजी करहि सु भोजणु होइ॥

मुणि एकु वण माहि झाण समाहि, तहि पय पूजित वणजो जाहि ।
छठय मास तसु पूजिउ तहि, भामरि गयउ जति पुर माहि ॥

अर्थ: — हे जिणदत्त! (शिवदेव की पर्याय में) तू अत्यधिक दारिद्र्य से पीड़ित था लेकिन (तूने) अपने धर्म को कभी नहीं छोड़ा। तेरे हृदय में नित्य जिनेन्द्र देव बसते थे और लेन देन करके तू अपना पेट भरता था ॥५२९॥

वन में समाधि के ध्यान में लगे हुए एक मुनि थे जिनके पद- पूज कर (तू) वणिजी को जाया करता था। (इस तरह तू) छह माह तक उनकी सेवा करता रहा। तब वह मुनि नगर में भ्रामरी (अहार) के लिये गये ॥५३०॥

[५३१–५३२]

तू पडिगाहि घरहि लइ गयउ, पाय पूजि मुणि ठाढउ कियउ ।
लइ वाइणो घरहि ते जाइ, महा मुणीसरु चरी कराहि ॥
जसवइ जिनवइ गुणवइ जाणि, चउथी सुहवइ मणि परियाणि ।
देखित तोहि धम्मु कइ भाग, चारिउ तिरिय भइय अनुराग ॥

अर्थ :—तू (उन मुनि को) पडिगाहन कर (आहार के लिये) खड़ा कर दिया। स्त्रियाँ अपने घर से वायणाँ (लाहना) लेकर जहाँ महा मुनीश्वर अहार ले रहे थे, आई तथा जसवती, गुणवती, जिनवती तथा चौथी शुभवती चारों नारियों ने मन में निदान (उस अहार का अनुमोदन) किया और तुझे धर्म भाव में देखकर वे चारों स्त्रियां तुझ पर अनुरक्त हो गई ॥५३१–५३२॥

चरी – आहार करने की क्रिया।

[५३३–५३४]

मुनहि अहार एकु कवासु, भई घणी ते घरिणी सियाण ।
पुण्ण पहाउ एक जिणवसु, मुणिहि दाणु दीनउ पडमिति ॥

तहि मरेवि वहि णिसिहु राय, पढमु सग्गि सुरवरु संजाय ।
विविह भोय माणेवि तहि चइवि, आइवि जीवदेउ पुत भवउ ।।

अर्थ :—मुनि को एक कदन्न मात्र आहार देने से निदान करने पर वे तेरी स्त्रियां हुईं । हे जिणदत्त! यह सब मुनि को परिमित (अल्प) आहार देने के पुण्य का प्रभाव था । ।।५३३।।

हे राजन्! सुनो, तुम मर कर प्रथम स्वर्ग में श्रेष्ठ देव हुये । फिर वहां विविध प्रकार भोगों को माणकर (भोग कर) तथा वहां से च्यव कर तुम जीवदेव के पुत्र हुए ।।५३४।।

[५३५-५३६]

दुइ मरि चंपवपुरी उप्पण्णा, सिंहल दीवह इकु आयण्णा ।
एक भई विज्जाहर धीय, चारिउ तुम संबंधीं तीय ।।
जिणदत्त णिसुण उपण्णो बोहु, णियमणि छंडिउ माया मोहु ।
जइ कुइ घोरु वीर तउ करइ, सो मरु मोक्खु पुरी पइसरइ ।।

अर्थ :—दो मर कर चंपापुरी में पैदा हुईं । एक सिंहल द्वीप में पैदा हुईं तथा एक विद्याधर की कन्या हुईं । (इस प्रकार) चारों तेरे (पूर्व भव) के सम्बन्ध से स्त्रियां हुईं । ।।५३५।।

पूर्व भव का वृतांत सुनकर जिनदत्त को बोध (ज्ञान) उत्पन्न हुआ और उसने अपने मन से माया और मोह को छोड दिया । जो कोई वीर घोर तप करता है, वह मर कर मोक्ष नगरी में प्रवेश करता है ।।५३६।।

[५३७-५३८]

पुतु सुवत्तह दीनिउ राजु, मइ साहियउ अपुणौ काजु ।
बहु नारि सिहु जिणदत्त ताहि, दीषा लेइ मुणीसर पाहि ।।

दुद्धर पंचमहव्वय पालि, णाण जलेण कम्म क पखालि ।
परम समाहि जोइणी रूव, तब लच्छी दुइ पठयो दूतु ॥

अर्थ: — (फिर जिनदत्त ने) अपने पुत्र सुदत्त को राज्य दिया और कहा, मैं अपना काज (आत्म हित) करूँगा। चारों स्त्रियों के साथ जिनदत्त ने मुनीश्वर के पास दीक्षा ले ली ॥५३७॥

तब जिनदत्त ने दुर्द्धर पंच महाव्रतों का पालन किया तथा ज्ञान जल से कर्मों के कीचड़ को धोया। जब मुनि जिनदत्त परम समाधि के योग में थे तब तप लक्ष्मी ने शीघ्र ही अपना दूत भेजा ॥५३८॥

[५३९–५४०]

विणवइ दूतु णिसुणि दयवंत, ...इ तोडे रयवर के दंत।
मोहमल्ल रणि घालिउ मारि, हउ पठयउ सामी तव नारि ॥
तव लच्छी निरुहउ......ठयो, खेद खिन्नु एहि आवत भयो।
मज्झु विवेउ नाउ तिहि धरिउ, ... ॥

अर्थ :— दूत ने कहा, "हे दयावान मुनो, तुमने काम के दांत तोड़ लिये हैं। तुमने मोह रूपी योद्धा को रण में मार दिया है इसलिये हे स्वामी, मुझे तुम्हारी तप स्त्री ने भेजा है ॥५३९॥

तुम्हारी तप रूपी लक्ष्मी उदासीन होकर स्थित है। मैं खेद खिन्न होकर यहां आया हूं। मेरा नाम उसने विवेक रखा है............. ॥ ५४० ॥

[५४१–५४२]

सुणि विवेय तुहि पूछउ वात, (अ) थ वोसु पइ बीठे जात।
मणमथ सहिउ बीज मइ दीठ, मुक्ति लच्छि ते नियड वइठ ॥
मुक्ति लच्छि अ (इ) हो सइ दासि, तापहि छूटहि हम निरभासि।
पडकोशहि विन्निवि जसुकंति, मुणिवरु तिसु तोडइ ते (दं) त ॥

(जिनदत्त ने कहा) हे विवेक सुनो मैं तुमसे एक बात कहता हूँ। पहिले वाले दोष देखे जाते हैं। मुक्ति लक्ष्मी के निकट बैठने पर भी मुझे कामदेव पर विजय प्राप्त करने की दृष्टि दी है। मुक्ति लक्ष्मी जब (हमारी) दासी होगी तथा हम निश्चय रूप से आभास देकर छूटेंगे। जिसकी कांति प्रकाशित होकर निकलती है ऐसे मुनि श्रेष्ठ (काम देव) के दांतों को तोड डालते हैं। ॥५४१–४२॥

विवेय ∠ विवेक

पज्जोविहि ∠ प्रद्योतित -- प्रकाशित करना

[५४३–५४४]

रतिपत्ति जो इहु सो तबु लच्छि, अहो विवेय भत्ति निरु गच्छि।
जिणवहि जाइ मुणिंद गरिठु, मुक्ति निरंबणि जो निरु एठु ॥
पहिलइ हूंतउ णिय परिरत्तु, सा छंडिवि महु भयउ आसत्तु।
इव विवेय जएसहि तित्थु, मुणिवरु गणु अच्छइ जित्थु ॥

(जिनदत्त ने कहा) यहाँ जो (पहिले) रति पति था वही तप लक्ष्मी का पति है। हे विवेक, शीघ्र ही निश्चित रूप से जाओ और गरिष्ठ (बड़े) मुनिन्द्र से जाकर कहो कि मुक्ति निलंबिनि (इस) निश्चित रूप से इष्ट है। पहिले मैं अपनी ही (लक्ष्मीपर) अनुरक्त था। उसे छोड़कर मैं फिर (तप लक्ष्मी) से आसक्त हो गया। अब हे विवेक, हम उसी तीर्थ जावेंगे जिसको मुनिश्रेष्ठ उत्तम कहते हैं।

[५४५–५४६]

णिक्कारणि हउ णिरु पाठउ, मई तुहु सामी आइ वीनयउ।
ता जिणदत्त मुणिसरु कहइ, भव समुद्र को सुहदर रहइ ॥
निविथप्पु परमप्पउ भाइ, केवलणाणु अणंतु उपाइ।
पुणु छुडु अठ कम्म खउ लेइ, तीजइ भव मरि मोक्खहु गए ॥

(विवेक ने कहा) हमें निश्चित रूप से निष्कारण भेजा गया है और मैंने हे स्वामी ! तुमसे आकर निवेदन किया है। इस पर मुनीश्वर जिनदत्त कहने लगे कि इस भव समुद्र में कौन (जीव) सुखसे रह सकता है। ।।५४५।।

निर्विकार परमात्मा का ध्यान करके तथा अन्त में तीसरे भव में केवल ज्ञान प्राप्त करके और आठ कर्मों का क्षय करके जिनदत्त ने निर्वाण लाभ लिया। ।।५४६।।

[५४७–५४८]

दुद्धर घोर वीर तउ पालि, साहु सयल दुह कम्म पखालि ।
हूनि ते नारि लिगु गय सग्गि, तुहु रायसिहु काजि निय लगि ।।
यह जिनदत्त चरिउ निय कहिउ, असुह कम्मु चुइ सुह संगहइ ।
वित्थरु भवियहु सुणहु पुराणि, मइ जिण दोस देहु मइ जाणि ।।

अर्थ :— उस वीर ने दुद्धर तथा घोर तप का पालन कर सारे दुष्कर्मों का प्रक्षाल कर (धो) दिया तथा वे (चारों स्त्रियाँ) स्त्री लिंग छेद कर स्वर्ग गईं। तू भी रायसिंह, अपने काज (आत्म हित) में लग ।।५४७।।

जो इस जिनदत्त चरित को नित्य कहेगा, वह अशुभ कर्मों को चूर कर शुभ कर्म का संग्रह करेगा। हे भविको, इस पुराण को विस्तार से सुनना और इस विषय में मुझे (मूर्ख) जान कर दोष मत देना ।।५४८।।

निय– नित्य

ग्रंथ समाप्ति

[५४९–५५०]

जो जिणदत्त की निंदा करइ, सुनत चउगही जलि जलि मरउ ।
जो यह कथा चालिहइ रालि, तहु मिथ्यती वइ यहु गालि ।।
मइ जोवउ जिणदत्त पुराणु, लाखु विरयउ अइस पमाणु ।
देखि विसूरु रयउ फुड एहु, हत्थालंबणु सुहयण देहु ।।

अर्थ :— जो जिनदत्त (चरित) की निंदा करेगा, वह इस चउपई (बंध–काव्य) को सुनते ही जल जल कर मरेगा। किन्तु जो इस कथा को अपने पास (रख) धारण करेगा (हृदयगंम करेगा) वह मिथ्यात्व गला देगा ।।५४६।।

मैंने उस जिनदत्त पुराण को देखा है जो पं. लाखु द्वारा विरचित जो ऐसा (अथवा अतिशय) प्रमाण है। मैंने इसे स्फुट रूप से रचा है। हे बंधुजन हस्तालंबन (हाथ का सहारा) दीजिये ।।५५०।।

अइस ∠ ईदृश – ऐसा।
अइसइ ∠ अतिशयित – विशिष्ट।

[५५१–५५२]

जो जिणदत्त कउ सुणइ पुराणु, तिसको होइ णाणु निव्वाणु।
अजर अमर पउ लहइ निरुत्तु, चवइ रल्हु अभई कउ पुत्तु ।।
गय सत्तावन छह सय माहि, पुन्नवंत को छापइ छाह।
तक्कु पुराणु सुणिउ नउ सत्थ, भणइ रल्हु हउ ण मुणउ अत्थु ।।

अर्थ :—"जो जिनदत्त के उपाख्यान को सुनता है, उसके ज्ञान और निर्वाण होता है। वह अजर अमर पद को निश्चित प्राप्त करता है" यह अभई का पुत्र रल्हु कहता है ।।५५१।।

(यहाँ तक कुल) छः सौ (छंद) में से सत्तावन गए (कम हुये)। कौन पुण्यवान अपनी छाया (त्रुटियाँ) छिपाएगा? तर्क, पुराण एवं शास्त्र मैंने नहीं सुने हैं तथा रल्हु कहता है, "मैंने अर्थ पर भी विचार नहीं किया है।" ।।५५२।।

णाणु ∠ ज्ञान।

[५५३]

जिणदत्त पूरी भई चउपही, छप्पन हीणांवि छहसय कही।
सहसु सलोक विस सय रहिय, गंथ पमाणु राइसिहु कहिय ॥

अर्थ: — जिनदत्त चौपई छः सौ में से छप्पन काम (५४४) चौपई में पूरी की गई। रायसिंह कवि कहता है कि ग्रन्थ का प्रमाण एक हजार श्लोक प्रमाण है ॥५५३॥

इति जिणदत्त चउपई संपूर्ण

संवत् १७५२ वर्षे कार्तिक शुदि ५ शुक्रवासरे लिखतं महानंद पालवं निवासी पुष्करमलात्मज।

यादृशं पुस्तकं दृष्ट्वा तादृशं लिखितं मया।
यद् शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते ॥ १ ॥

शुभं भवेत् लेखकाध्यापकयो:। श्रीरस्तु। पंचमीव्रतोद्यमनिमित्तं

॥शुभं॥

शब्दकोष

अ

अइ— ४००,

अइरावइ = ऐरावत — २३

अइस = ऐसा — ३६२, ५५०

अइसी = इस प्रकार की — १०१, ४६७

अइसे = ऐसे — ४४०

अइसो = — ३८२, ४१३

अइसौ — २८१

अइसइ = ऐसा — ४७, २०५, २२०, २२२

अउसधिराणी = अवसधिराणी — ३०

अउर = और — ८४, १३७, १४४, ३१४, ४८३

अउरु = और — ४७, ४२५

अकहा = न कहना — ४७५

अकखउ = कहना — ११६

अक्खर = अक्षर — २०

अकाजु = व्यर्थ — २१३

अकासि = आकाश — ३५४

अकिट्टिमि = अकृत्रिम — २९१

अकुलाइ = व्याकुल होना — १००

अकेलउ = अकेला — ३६७

अखइ = कहना — ३४५

अखउ = कहना — २०, २९७

अखहु = कहना — २२१

अखेहु = — ५२६

अखंड = पूर्ण — १७६

अखय = अक्षत — ५३,

अख्यइ = कहना — ४१७

अखिउ = कहना — ३८२

अगनिउ = अगनित — १२६, २८५

अगम = अथाह — १६४

अगर = सुगंधित द्रव्य — ५३, १७२

अगवाण = अगवानी — ५०२

अग्गिलेहु = आगे लेने को — ४६१

अगोटिउ = रुकना — १३२

अघाहि = थकना — ७०

अघाइ = गहरी — पेटभर, प्रसन्नता ३०१, ४१५, ५०४

अघाई = — १४९

अघोटिउ = रोकना — १३६

अचरिजु = — ४३१

अचागले — दुष्ट — ४०१

अचाभउ = — २७१

अचेयण = अचेतन — ७८

अचंभउ = आश्चर्य — ३६१

अचंभो = — ३६०

अचंभौ = — ४३९, ५०९

अछ = बैठे हुए — ३७८

अछइ = — २७३, ३३९ — ३४३, ५४४

अच्छरि = अप्सरा – ३३२
अच्छहि = – ३७०,३१६
अच्छीस = – ३६६
अच्छे = अक्षत – ३६०
अजउ = – १८१
अज्ज = आज –२२५,२६५
अज्जु = – २००,
अजर = – ५५१
अजरु = – ४६४
अजाण = अजान – १८८,४०६
अजिय = अजित – ३, ५२७
अटकम्म = आठकर्म – ५४६
अटविहु = आठप्रकार – ५४,१६८
अटंगु = ४६६
अग = २२१
अणगलिउ = बिना छना – ५१८
अणछाजत = अनचाहा – ३७६
अणयार = अनगार,मुनि – ५२०
अणसणु = अनशन – २५२
अणीबंध = अनिबंध – २८६
अणुदिणु = प्रतिदिन
अणुसरउ = अनुसरण करना ३२८
अणेय = अनेक – २८८
अणंगहु = अनंग – ६३
अणंतु = अनंत – १६३,५२२,५४६
अण्णु = अन्त – १६०
अणुव्वय = अणुव्रत – ५१६
अतडउ = बिना किसी शब्दके,चुपचाप – २२८
अति = बहुत – ११७,३११,३८४,
अतीते = भूतकाल में – २२,
अतुल = तुलना रहित – ५
अत्थ = अर्थ – १४
अत्थि = – ३८, ६६
अत्थु = – ५५२
अत्थहि = विद्यमान – २२
अथाण = – ४६१
अद्द = – ५२२
अधराउ = आधा राज्य – ३४६
अनइ = – ३७५
अनंगु = कामदेव – ४२८
अनंतु = अनन्त – ६,
अनपर = उसपर – १६६
अनिवार = अनगिनत – २३६
अनिवारु = अनिवार्य रूप से ३३,

अनु अनु = पीछे पीछे – १७६
अन्नु = अनाज – ३२४
अनुदिनु = प्रतिदिन – ५०१
अनुराग = प्रेम – ५२२
अनुवइ = – ४४५
अनेयइ = अनेक – ३६४
अपजस = अपयश – ४७१
अपणी = अपनी – ४०२
अप गु = स्वय – २२५
अपणे = अपने – २०५
अप्पइ = अर्पण करना – ४७३
अप्पु = स्वयं – ५० ४१७
अप्पउ = अर्पित करना – २४२
अपनाइ = अपनाना – ४१५
अपमाण = अप्रमाण – २२३,२६५
अपरंपर = – ४२६ ४३१, ४४२

अपहि = कुमार्ग – १४३
अपुणइ]
अप्पुणु] अपने – ३५, ४५३
अप्पाणउ = अपने – १५७
अपार = – ४०६, ४५८
अफौ = – ४४६
अबुझ = अज्ञ – १८८
अब्भंतरि = अंतरंग – ५२१
अमइ = – ५५१
अभिडत्त = भिड़ना – ४७०
अमोह = अमोघ – ५११
अमर = – ५५१
अमरउ = आम्रवाटिका – १६५
अमल = निर्मल – १४
अमिउ = अमृत – २४
अम्ह = हमारा – ४००, ४०३
अम्हारी = मेरी – ३९१
अम्हहँ = मेरे, = १८, ४०२
हमारा
अम्हि = हमारा – ४७७
अमुल्ल = अमूल्य – ५३,
अयसउ = ऐसे ही – २३१
अयाणु = अज्ञ – ३२२
अयालि = अकाल – २२५
अर = और – २६५
अरथ = लिए – ३२४
अरहंतु = अर्हन् – ५४, ५१७
अरि = – ४०३
अरिकम्म = कर्मशत्रु – ७
अरिमंडल = शत्रुसमूह – ४५५
अरु = अरहनाथ तीर्थंकर – ७,
अरू = और – १०, ३५, ७०, आदि
अरुणेइ = अरुण, लाल – ५
अरे = – २२८, २६१, ३५४,
४०१, ४७६,
अरथु = द्रव्य, धन – ४४६, ४७२,
अर्थ = – १३७, १३८, ४४६,
अलखणु = लक्षण रहित – ३७२,
अलहादी = प्रसन्न – ५८
अलिउलि = भ्रमर समूह – ३४६
अलिय = – ४२८
अलेउ = लेप रहित – ५२, ४४२
५२२,
अव = अब – ३८०, ४३७,
४८३, ४९९,
अवहु = अब – ४३४
अवधारहु = धारण करना – ४६८
अवधारि = – ३३७
अवंधिउ = छोटे – २०३,
अवर = और – ६६, २८९
अवरहु = और – ५२५
अवरु = और – २, ६३, ६८, ११५, आदि
अवरुवि = और – ४०३
अवरति = विरक्त – ४४
अवलीवाला = – २७८
अवस = अवश्य – १११,
अवसरि = अवसर – ३४२
अवसरु = अवसर – ५२५
अवसाणु = मृत्यु – ४८२
अवसि } = अवश्य – ८३, ११९,
अवसु } = अवश्य – ४८३
असमुख = दुःख – ३०५

अवसेरि = चिन्ता – २३८,२६३,
अवहंडइ = दूर करना – २०८
अवास = महल – १२७,२३२,
स्थान – ५०४
अवासहि = आवास – ३१
अवासु = आवास – ४१
अवहोइ = – ४६७
अवंती = – ५२७
अविचार = विचार रहित – १५,
२७८
अस = ऐसे – १११
असरण = शरण रहित – ४
असराल } = – ४५,२०२
असरालु } = निरन्तर – ६५,१७५
४३७,
असिकल = तलवार – ४५५
असिवरु = तलवार – २२८
असीस = अशीष – १५३
असोइराय = अशोक राजा २७९
असोक = अशोक – १६०,१६६
२६८,
असोकसिरी = अशोक श्री – २६८
असोग = अशोक – २८२, २९३
असोगसिरी = अशोकश्री – २८१
असोगहु = अशोक – ३०२
असंख = असंख्य – १७१,४५१
४५२,४६०
असंख्य = – ४५१,
असंखइ = असंख्य – ४६२,
असी = अस्सी (८०) – ४०६,
असुह = अशुभ – ५४८,

अमुंदर = असुन्दर – ५१०,
अहंइ = आज – २२३,
अहइ = थी – १६५,३३०, ४६७
अहनिसि = रातदिन – ५१
अहलउ = निष्फल – ३०३
अहारु }
अहार } = आहार – ४०९
अहिउ = – ३६
अहिणंदण = अभिनन्दन – २
अहिठाविड = अधिष्ठित होना – ११६
अहो = – ७२,१११,१२८,१५७,
अजा = मर्यादा – ६६
अंकवाल = अंकपाली – १७०
अंकुस = अंकुश – ३४५,३५८,
अंग = शरीर – ५७,८२,१०६,२८२
अंगवइ = अंगीकार करना – ६५६
अंगु = – २२४,४२८,४२९
४६८,४४२,४६६,५१०,
अंचलु = अंचल – ७९
अछुइ = बिना किसी के छुए हुए – ५३

अंजणि } = अजनी गुटिका १५३,
अंजनी } = – २८८,३६३,
अंजणीवा = अंजनवटी – १५४,
अंजणु = – १५२
अंडदंड = एक गढ़ी का नाम – ८६
अंत = सीमा,पार – १७
अंतयाल = अंतसमय – ५१६,
अंतर = – १६९
अंतराल = दूरी, बीचमें – १८९
१५७,२४३

अंसगलिइ = अंसगलं – ७०,
अंतर्थ = – १९८,
अंतु = अन्त – २६९
अंतेउरु = अन्तःपुर – ४१,८८ आदि
अंथइ = अस्त होकर – २९९
अंधु = अंधा – २५
अंब = आम्र – १६६
अंबराइ = अमराइया – ३४
अंबिमाई = अंबिका माता – १०
अंबराउ = आम्रराजि – १७५
अंबसाहार – सहकार – ३२
आमके वृक्ष

आ

आइ = ५९,८४,११२, आदि
आइ अणाहु = आदिनाथ तीर्थंकर– १
आइत्त = आकार – ५१३
आइताइ = आकर – २०५,
आइयो = – १२०,१२३,
आइवि = – ५३४,
आइस = आज्ञा – ३३५
आइसु = आज्ञा – १०५,४२१
आउ = – ४७४,
आए = – ५०३,
आकुली = व्याकुल – १३४,४५८,
आखण = कहना – ३४१,
आखहि = कहना – ५१९,
आखिय = संपूर्ण – ४२३,
आखु = अक्षय – ३५७,
आगइ = आगे – १२३,१५५,३०४,
आगम = शास्त्र – १४
आगमणु = आगमन – ४८४
आगलो = बढ़ी हुई = ९९,१०१,२७७,
आगले = अग्र भाग – ४०१,
आगि = अग्नि – १३३,
आगिउ = आगे – ४६९,
आगिथंभ=आग को रोकने वाली–२८७
आगुली = अंगुली – ९५
आगे = सामने – ३९९
आचल = अंचल – १२
आज = – ५००
आजि = – ४७४
आजु = – २१२,२१३,२१६,४०७
आण = सौगन्ध – २५२,३५१,४१८,
आणि = सौगन्ध, लाकर – १०७,१५०
आणु = – २१६,३८३, आदि
आणियउ = लाना ३६५
आणंद = आनन्द – ६२,५१५,
आणंदिउ = प्रसन्नहोना – ५८,
आणदे = – ५०४
आते = कवि के पिता – २६
आदि = – १८४,
आदिनाहु = आदिनाथ –२१६
आधउ = आधा – २३८
आधो = आधा – २९४
आन = अन्य – ४२४
आनि = लाकर – ३५९, ४११
आनदउ = आनन्दित – २८५
आप = अपनो – २४, २०१,
आप आप कु = अपने को – १२९
आपणउ = ५००
आपणी = अपनी — ३८०
आपणु = स्वयं — ३०८

आपि = स्वयं — १३६, ४४६
आपु = अपने — १४८, ३७५
आपुण = आप — ४११, ३२०
आपुणइ = — ५२६
आपुणउ = — ४८३
आपुणि = अपने आप — ११
आपुणी = अपनी — ७१, ३८३, ३८५
आपुणे = अपने — २२, २३
आपुणौ = — ४४६, ५३७
आफउ = अर्पण करना — १६६, ४७७
आफि = देकर — ४७६, ४७७, ४७८
आफी = दी — १९४
आमही = कहीं — १५३
आमरण = गहने — ६६, २३४
आय = आया — २५१
आयउ = आया — १४६, १५६, १६०
आयण्णा = आयी पैदा हुई — ५३५
आयसु = — ४६४
आयुसु = — ५२४
आये = — ११५, १६०, १६२
आयो = — २१७, १४२,
आयौ = — ४६८, ४८८
आरडहि = चिल्लाता रोना — ६८, २०७
आराहउ = आराधना — ५२, ४६४
आराहहि = अराधना — १७
आलियरु = कस्तूरी — ३७५
आवइ = आना — ५१, १६७, २२५
आवत = — ५४०
आवतु = — २२०, ४८६
आवहि = — १७८
आवही = — २६१
आवहु = — २६५
आवास = महल — २११, २२०
आविली = इमली — १७२
आस = इच्छा-आशा — ५६, १३६
आसणु = — २२०
आसत्तु = आसक्त — ५४४
आसा = आशा — ३८८
आसादितु = — १८०
आसि = होना — १
आसीस = आशीर्वाद — १०५
आसु = आशा — १४१
आसे = होना — १८१, १८२
आह = — २५६, ४७२
आहाइ = — ४८७
आहि = है, कहा जाता है — २४ आदि
आहूट = स्वयमेव — २१३
आंखि = आंख — ३५, ३१४, ३७८
आंगुल = अंगुल — ३७५
आसू = — २०८

ई

इइ = — ४६६
इउ = इस प्रकार — ३२८
इउं = इस प्रकार — २०७, २४८
इसको — २५६
इकठाइ = एकत्रित — १८७
इकल्ली = अकेली — १५४
इकु = एक — ११६,६६,६६,१२८ आदि
इतिवार = एतबार, विश्वास — ३०८
इनि = — २०१, २३४

इम = इस प्रकार – ६०, ५०४
इमु = – १४५
इय = – ४८५
इयर = इतर – ५३
इलायची = – १७१
इलोणि = लावण्यपूर्ण – ६६
इव = इस प्रकार – ३२७ आदि
इवहि = अभी – १५७, ३३७
इवहु = – ४३०
इसा = इस समय – ३३६
इस = – ११०
इसउ = ऐसा – १४७, ३४१
इसहि = – ४४०
इसु = इस – ४२४
इह = यह, यह – ५५,७६,१७६ आदि
इहजि = यह –
इहर = यहां – २१३
इहां = यहां – १०६,२६०,४३६ आदि
इहि = इस – २१०, २११, ४८७
इहु = – २३५, ४००
इंछहि = इच्छा करना – ४३
इंछित = इच्छित – ५०४
इंद = इन्द्र – ८७, ११
इंदिय = इन्द्रिय – १५८
इंदु = इन्द्र – ८
इन्दु = – ४४२
इंधणुरु = ईंधन – १६०
ईसाणु = ईशान – १२

उ

उकट = सूखना – १६८
उक्क = उल्का – ५१२
उघाडि = खोलना – ४३०
उघडवि = – ४४७
उघाडहु = – ४०८
उचितु = उचित – २४८
उछउ = उत्सव – १२०
उछलइ = – २६०
उछलहि = – २४७
उछलिउ = उछलकर – २५८, २५६, ३६८
उछली = २४७, ५०३
उछाहु = उत्साह – ६३
उत्साहु = उत्सव – ५८
उछंग = गोद – ८०, १०६
उत्साह
उछंगहु = – ५००
उज्जल = – ६३
उजाडि = उजाड – ३५२
उज्जेणिए = उज्जयिनी नगरसे – ५२७
उज्भाउरि = उपाध्याय – ६२
उठवहि – बढ़ते हुए
उठहु = उठो – १२४
उठाइ = उठाकर — १६१, ३३४
उठि = — १३४, ३०६ आदि
उठित = – ४१८
उठियउ = — ३२१
उडगु = उपवास — ३४७
उणाचास = गुनचास — ३५०
सकना
उणि = उसने – ३०७
उत्यइ = उबना – ४५३
उतपण्णा = उत्पन्न – ५३५
उतपाति = उत्पत्ति – २६
उत्तम = २६, ८७,
उतर = ४६१

उतरि = उतर – २६७
उत्तरु = जवाब
उतहि = उतना – ३६
उत्तंग = ऊँचा – ४५६
उदहिदत्तु = सागरदत्त, सेठ का नाम – १७६
उद्धरउ = उद्धार – ७२
उद्दिमु = उद्यम – १३६
उद्दसे = कहना – २१३
उन = – २५०
उन्नति = – २६३
उपगार = उपकार – १४०
उप्पण्णु = उत्पन्न – ५०६
उपण्णु = उत्पन्न – ५०६
उपण्णो = उत्पन्न हुआ – ५३६
उपगइ = आना – २९२
उपमावे = – २७१
उपरणु = ऊपर – २५१
उपरहि = ऊपर – २६७
उखारि = उखाड़ना – ४११
उपाइ = – ५४६
उपाउ = उपाय – १४५
उपाडि = उखाड़ – ३४५
उप्पाडि = उत्पात – ३४६
उपासु = उपवास – १३४
उर = – ९४
उरणु = उऋण – २८
उरमादे = – २७३
उरवसी = उर्वशी – ८९
उव = – ४८७
उव्वरिउ = उबरना – ३४५
उवयारणु = उपकार – २८
उवर = उदर – ३६६
उवरहि = – ४८७
उवरि = उदर – २७
ऊपर – ४७०
उव्वरिउ = बचना – २३४
उवहिदत्त = सागरदत्त – २४५, ४४७
सेठ का नाम
उवहिदत्तु = – २४८
उवहिदत्त = – १७५, १७८आदि
उवहिदत्त = – १७६, २४०
उवहि = उदधि – २४६, २८३
उवाउ = उपाय – १५१
उवारि = द्वार – ४६५
उसरि = अवसर – ४६३
उहु = – २१६
उहकी = उसकी – ७७
उहाणा = दूसरा – २१०
उहि = – २४७
उहु = उस =
ऊगयो = उदित हुआ – २०७
ऊचालि = बुरी बात – २२०
ऊचे = – ३१०
ऊज = – ४४५
ऊपर = – ३४७
ऊपरहु = ऊपर – ६२
ऊपरि = – ६६, ९१
ऊभे = खड़े हुए – २८४
ऊसरइ = औसरा – २०५, २१९, २२०
पारी
ऊसरऊ = पारी – २१२
ऊसारि = उच्चारण करना – ४९
ऋष = ऋषि, साधु – ४८

ए

एउ = यहु — ३११

एक = — ८५, ८६, २०६ आदि

एकइ = एक — ३६४

एक्कर = एक अकेला — ४७, ७५, २२२

एककउ = एक — १०५

एकचित्त = ५०५

एकणु = कोई — १२१

एकतु = कोई — १२१

एकति = कोई — १२१, १२२

एकनु = कोई — १२१

एकल्लउ = अकेला — १५७

एकलति = इकलौता — २१२

एकहु = एक — १८६

एकहि = एक साथ — १७८

एकु = एक — २१२, ३०२ आदि

एग्यारह = ग्यारह — ३६१

एगारह = — १३०

एठु — इष्ट — ५४३

एत्थंतरि = इसके बाद — ७७

एतउ = इतनी — ३६६

एतहि = इस प्रकार — १२७, १७६

एतिउ = ऐसा — ३४९

एती = में — ३९९

एते = उसी — १४५, ३४४, ४९६

एमु = इस प्रकार — २२३, २६४

एवहि = इस प्रकार — ४०२

एवा = इस प्रकार — २२८

एस = ऐसी — ३१५

एसउ = इस तरह — ७२

एहा = यहाँ — २४१

एही = इस — ३६१

एहु = यह — ८०, ३३१, ३८२, ५५०

एहो = यहाँ — ४०२

ऐसी = — २७८

ऐसो = — १२४

अँसाउ = इस प्रकार — २८३

अँसी = इस प्रकार — २६५

ओंकार = — ६४

ओगण = अवगुण — ३१२

क

कइतणु = कवित्व — २२

कइन्दु = कवि — २००

कइलास = कैलाश — २७८

कइसइ = किसी प्रकार — ३८३

कइसउ = कैसा — ३६३

कइसे = ऐसे — ४०७

कईस = कवीश — २२

कउण = कौन — १४२, २०७, ५२६

कउसइ = किसी — ३३०, ४५४

कउणे = कौन — २१९

कचनार = वृक्ष विशेष — १६६

कच्छु = — ३१२

कटक = सेना — ४५५, ४६४ आदि

कटक्कइ = सेना — ४८८

कठखंड = काष्ठ के टुकड़े — २५९

कठपाडल = पौधा विशेष — १७४

कट्ठनि = कष्ट — १५८

कडइ = कीड़ा — १९५

कडाप = कटास — २७९

कडि = कटि — ३७५
कडियल = कटिस्थल — ६४
कढाउ = निकालना — ४७७
कण = अनाज — ३६, ४७
कण्ण = स्वर्ण — ४४४
कणइ = स्वर्ण — ४६५
कणय = कनक — ३०६
कणवजि = कन्नौजिनी — २७०
कत = कहाँ, क्यों — १५५, २४४, २४३
कत्थ = कहाँ — ३४१
कतहुस = कहाँ ३२४
कति = कैसे — १५६
कथा = कहानी — २१, ९९ आदि
कथंतर = कथान्तर — १२७
कदली = केला — ९२
कदाण = कदन्न — ५३३
कन्य = कन्या — ३८०
कन्या = पुत्री — २८३
कान्होदे = रानी विशेष का नाम — २७४
कपडु = कपड़ — ३०७
कपाल = — ३७८
कपूर = — ४१२
कपोल = गाल — ३७८
कमल = — १४, १७४
कमलादे = — २७३
कम्मु = कर्म — ३२१, ५१७, ५२८
कम्म = कर्म — ५३८, ५४७, ५४८
कय = के, काम — ३६, २०१
कपित्थ = कैथफल — १७२
कर — हाथ — १४८, २२७
करइ = — ४५, ५०, ५१ आदि
करकंकण = हाथ का गहना — ८४
करणा = एक प्रकार का मीठा नीबू
१७१, २७१
करतउ = कर्ता — ४२३
करतार = स्वामी — १५७, ४१४
करंड = करण्ड — २६०
करहिउ = ऊँट पर सवारी करने
वाला — ४०१
करुणा = दया — ६८, ४५
कलस = कलश (स्त्री) — ३६१
कलमली = कष्ट — ४४
कला = २४, १०७, आदि
कलास = कलश — १२५, ४४३
कलि = कल — ३४१
कलिमलु = पापमल — ५४, १३६
कलिमलाइ = घबड़ाकर — ३१०
कली = कली — ६५
कलेऊ — कलेवा — ४१२
कलोल — — ४५५
कल्लोलु — प्रसन्नता — १२३
कल्हि — कल — ४७४
कवइ = कवि — ८, २६, २६
कवड़ = कपट — ६८
कवडु = कपट — २६२
कवण = कौन सा — १५४, १६२,
किस १९६, ३१६, ४२०
कवणइ = किसी ने — ७५
कवणु = — १०४, १४०, २६२
३१२, ४२२, ३६१
कवणुवि = किसी को — ४०३
कवणे = किसीका — २२२
कवसउ = कैसा — ३६३
कवि = — ५०, २६६

कवित्त = कविता – २१
कविन्हु = कवियोंने – ६५
काहू = – ४३७
कसिर = कृष्ण = १६६
कसु = – ६१, १२६
कह = क्या – १४४, २२४, ४६५
कहा = कथा – १६, ७७, १११, – १२७, १५६, आदि
काउसग्गि = कायोत्सर्ग – ३६१
कांकर = कंकर – २४०
काख = – ६३
काचुली = कंचुली – १३४, १३६
काछ = – ४३४
काज = कार्य – २०७, २१३
काजिनिय = निजकार्य – ५४६
काजि = कार्य – १४४
काजु = कार्य – १७, ११६, २१४ – ४६५, ५६७
काटि = काटकर – ७०, ६५
काठ = काष्ठ – ३३२
काढि = निकाल कर – २६५
काठउ = कष्ट – १५६
काढणहार = निकलने वाला – २३२
काण = लज्जा, मर्यादा – ३६, ४६१
काणि = कान – ६६
काथु = कत्था – १७२
कान = – ३७८
कानडि = कबड्डी – २७०
कापड़ु = कपड़ा – ३२५
कापड़ = कपड़े – ११२
कामकला = – ३७६
कामबाण = – १००, ११८
कामिणी = कामिनी – २७६
काय = शरीर – ३५७
कायर = डरपोक – २६३
कारजु = कार्य – ३६०
कारण = – ५३, १६२, ३२४, ४२१
काल = कल – २१०, ३३६, ४३०, ४७६, ४७७, ४७७, ४७८, ४७६
कालउ = काला मृत्युसामान – २२६, २२७
कालकूट = काल कुष्ठ – ३८४
कालि = काल – समय –
काली = कल – २३२ ३१८
कालु = मृत्यु, – २२६, ३६६, – ४३७, ४६०, ४७८
काल = काल – ३४५, ३४६
कालिह = कल – ३४३, ४०७, ४३५
कासु = किसके – २२५, ३४७, ४७०
काहा = क्या – ३४१
काहि = क्यों, क्या – २०६, ३५२, ३६७, ३६३, ४१७, ४७१
काहु = किसीको – ११५, १८१. –
काहे = क्यों – ३१२, ३१५, ४०४, – ४६१
किज्जइ = करना – ४६
कित्तरेख = कीर्तिरेखा – २७३
किम = – ५२६
किमइ = १२६
किम्मु = क्यों नहीं – २५२
कित्ति = कीर्ति – ४५
किनु = कैसे – २१५, ४७६, ३७३
किम = कैसे – २१, २३६, ३४६, – ३७२ ४७४, ४७५

किमु = किस प्रकार – ४०,१७२,२८८
१४३,२३१,२३४,४४०,५२६
किर = – ५११
किरण = दीप्ति – ६६
किरिया = क्रिया – ५२३
किराइ = किस – १७
किसही = किसीभी – २०३
किसि = – २०७
किसी = कैसी – ८६
किमु = कैसे किसे – १०७,१६१,२१५
किसुकई = किसकी – ८४
किनु = – ४६३
किहा = कहाँ २६७
कीरति = कीर्ति, यश – ८६, ४३६
किलमाणु = कीड़ा करती हुई – ६०
किली = – १६५
कीली = कील – ३८१
कुबजा = कुब्जा – ४७६
कुकम्मु = कुकर्म – ३०५
कुकदृष्टाणी = कुकविता – २५
कचाली = खोटी चाल – ३८१
कुमार = – ४४६
कुडील = कुत्सित – ३७७
कुटंब = परिजनलोग परिवार – ६०
१०८, ११६, ११७
कुठु = – ४४८
कुठारु = कठोर – ४७५
कुडाल = बेढंगी – ३७८
कुदामहि = कुदाना – २१५
कुंथु = कुंथुनाथ – ६
कुद्धि = क्रुद्ध – २२४
कुपुत = कुपुत्र – १३६

कुबुधि = विकृत बुद्धि – ११
कुमइ = कुमति – ११
कुमुणिवर = खोटा मुनि – १०१
कुमरि = कुमारी – २३५, २८५, ३४६
कुमरु = – २३४
कुमारिहु = कुमारी – २०३
कुमारि = कुमारी – २७८
कुमारि = – १५८
कुमरु = कुमार – १२४
कुल = वंश – ४६, ६६
३७, ७२, १८४,
कुलि = कुल – २३, ५०६,५२८
कुलि = जाति – ४४, ४५८
कुलु = कुल, वंश – ६५६
कुलगणिगु = – २८१
कुलतिलउ = कुलतिलक – ४८६
कुलमंडणु = कुलमण्डन – ५६
कुलवहु = कुलवधु – २४६
कुलीय = जाति – ४६२
कुवडी = कुवडी, बीना – ४०४
कुंवरह = कुमार के – ८१
कुंवरि = राजकुमारी – २११
कुसलाल = ११७
कुहणी = कुहनी – ३७८
कूअउ = – १७३
कूटइ = कटना ६१४
कूडणु = – २४६
कूड = कुटिल – ३५
कूडउ = बुरा – ३८१
कूडू = कपट – ७१
कूंडी = ४२७
कूड = कूट ढेर – २३

कूवड़उ = कुबड़ा– ४००, ४०७
कूबड़ौ = ३७७
कूवा = कुआ – ८७
केउ = केतु – १३
केतकु = कितने ही – १२७
केतउ = कितना – ३६२
केवड़उ = केवड़े का – १६६
केवलणाणु = केवलज्ञान ५४६
केला = ३२, ४१२
केहा = क्या ३२३
कैलास = कैलाश – २६२, ३०
कैसे = १४८, १५६
कोइल = १७५
कोट = – ४५८, ४५६
कोडि = करोड़ – १२०, १३५, – १८४, १८५, ३६१, ४०६, ४५२
कोडी = – ६१
कोतूहल = कौतूहल – ३२०, ३५
कोदइ = चावल – ४०६
कोपइ = कुपित – १५५
कोपिउ = क्रोधित १३३
कोपु = कोप – १७०, २४६, २६६
कोलाहलु = शोर – १२३
कोली = जातिविशेष – ४३
कोवि = कोई – ३६
कोस = – १८७
कोहु = क्रोध – ४७०
कौन = १६४
कौवि = कोई – १४५
कंचण = स्वर्ण – ३६, ४२, ८६, ८७
कंचणदे = – २७१
कंचूरी = – ६८
कंचुली = – ६६
कुंजर = हाथी – ३७३
कुंडल = कानों के आभूषण – ६६
कुंडलपुर = – १६६
कंठारोहणु = कंठ का रुकना – १५६
कंठि = गला – ३७६
कंत = नाथ – १५६, २०३
कंदलह = ६४
कंथि = कन्था – ३५८
कांति = सुन्दर – २७३
किंकर = सेवक – ४२१
कुंचू = – ६२
कुंद = एक पुष्प – ६५
कुंमी पाक = २४५

ख

ख = – १८३
खखंदि = कठिनाई – १४३
खचिय = सींचना – ६८
खणि = क्षण – १४२
खड्ग = तलवार – २१८
खत्री = क्षत्रिय – ४४
खयर = – ५१४
खरी = खड़ी, श्रेष्ठ – १७६, २१५ २८१ – ४१०
खल = निश्चय – ७
खाज = खाद्य पदार्थ – ४१३
खाट = चारपाई – २२५
खाडं = खड्ग – ४२५
खान = भण्डार – १०७
खालउ = खाली, पिचका – २७७

खालु = चमड़ा – ४७७
खिण्णु = खिन्न – ३५६
खित्ति = क्षिति, पृथ्वी – १
खिन्नु = – ५४०
खियात = ख्याति – ३५०
खिरी = – १७२
खीचि = – १६६
खीणोवरि = क्षीणोदरी – ३०१
खीर = क्षीर – ४१२, ५००
खुजाइ = खुजाना – ४१८
खूटइ = क्षय होना – २२६
खूटउ = खुला – ३४५
खेतपालु = क्षेत्रपाल – १०
खूदंत = खोदना – ३४७
खेऊ = खेद – ३०६
खेमु कुसल = क्षेम कुशल – ११४
खेव = – २६२
खांधरु = – १८३
खोची = टेढ़ी – ४०५
खोचे = – ३७७
खोजु = – २४३
खोड = खोट – २३८
खोडि = खोट – १३०, १४८
खंड = टुकड़ा – ४०
खंडागरु = तलवार – ६५
खभ = – ३५६, ३४५
खोंड = – ४१२

ग

गइयर = हाथी – २३
गइंदु = गजेन्द्र – २३
गउडी = गौड़ी – २७१
गगन = आकाश – ३२६
गगन गामिनी=आकाश में चलने वाली– २८६
गज = हाथी – ३४५
गजगमणि = गजगामिनी – २७६
गजहि = गर्जना – २६६
गढ = – ४५६
गढहु = किले में – ४५७, ४५८
गडबड = गड़गड़ाहट – २६३
गढी = – ७८
गढु = – ४६२
गणह = समूह – ४६६
गणहरविंद = गणधर वृन्द – ३
गणु = – ५४४
गतहि = – ३०६
गयवर = हाथी – ३५७
गयंद = हाथी – २४६
गरभ = अभिमान – १४१
गरबु = अभिमान – २२६
गरहु = विश्वास – ४०८
गरिठ = गरिष्ठ – १३
गरु = अधिक – २२३
गरुवे – बड़े – २६८
गरुवउ – अत्यधिक – ५२६
गरुडकेउ – गरुडकेतु – ५०८
गल = – ६४
गलिय – – ४४८
गलींदी – २७२
गलै – गर्दन – ३७४
गवरि = गौरी – ३७६
गव्व = गर्व – ५६

गवाइ = — १५६
गव्वु = गर्व — ५०, ३८७
गवेसिउ = तलाश करना — २२२
गसहि = ग्रसना — २३१
गह = — ५२४
गहगहइ = गदगद — १७७, ४४८
गहगही = — १६४
गहगहे = — ४४४
गहवरइ = व्याकुल होना — २७१
गहिउ = — ५२४
गहियइ = टटोलना — ३८४
गहिर = गहरे — ३४१, २५१
गहिरउ = — १६५
गहिरी = गम्भीर — ३५६
गही — — २१२
गहीर — गम्भीर — १२८
गहु — दुख, आग्रह — ४०८, ३११
गहो — लिया — २९८
गाज — गर्जना — २३, ३५६
गाजइ — — १९५
गाठि — गांठ — ५७
गाम — ग्राम — ३३
गामिणी — गामिनी — २८८
गात — शरीर — ३७२, ४१४
गादह — गधा — ३७४
गाल — — ४७७
गालि — गला देना — ५४६
गालिउ — — ५१७
गालिवि — गाली — २२७
गावहिं — — ६०, १२५
गिर — पर्वत — २६७
गिरि — — ४५२
गीत — — १२५, २५०, ३२१
गीतु — गीत — ६०
गीढ = — १६२
गीव = ग्रीवा — ६६
गुटिका = — २८८
गुडी = — ५०३
गुण = ७, ४५, ३०१ ६०, आदि
गुणगा = — २७२
गुणणिहि = गुणनिधि — १५
गुणदत्तु = — १८०
गुणपाल = — १८६
गुणमित्तु = गुणमित्र — ५०८
गुणरासि = — ५२७
गुणवइ = गुणवती — ५३२
गुणवइ = गुणवत — ५१
गुणवाल = गुणपाल — ८८
गुणि = — १३६
गुणेइ = — १५८
गुणंग = गुण सम्पन्न — ११८
गुणहि = — १८२
गुपत = गुप्त — ३०८
गुपति = छिपी २५५
गुपति निहाणु = गुप्तनिधान — १८८
गुमु = — ३४६
गुर = — ५१८
गुरु = बृहस्पतिवार — २६, ५५, ३६०
गुसइ = स्वामी — १५६
गुसाई = स्वामी — ३२३
गुसाईऊ = स्वामी — १५७
गुसाइणिदेवि = गोस्वामिनीदेवी — १६
गूजरि = गूजरी — १७०
गूड = गूडी — २८६

गूढ = – १८३

गेल्ल = गैल, मार्ग – ४६१

गोवाल = – ४७६, ५१३

गोफणी = गोफया, पत्थर फेंकनेका अस्त्र

गोधूलक = – ४४३

गोवहि = गोपहि, छिपाना – ३२२

गोहिणी = साक्षी – १५०

गंगादे = – २७६

गंठि = गांठ – ६८, २१८

गंजणु = अपमान – ७१

गंजियइ = नष्ट – ४७०

गंभीरहु = गंभीर – ३४१

गथ = – ५५३

गंधव्वु = गंधर्व – ३२१, ३८५

गंधि = – ४४८

गंधोवइ = गंधोदक – १६८

गंपि = जाकर – २३४

गंभीरु = गंभीर – २५६

गांठ = – ७०

घ

घड़हडाई = – १६५

घडियार = घडियाल – १६४

घड्डी = गड्डी – ८६, १६५, ३३२

घणु = बहुत – २०६, ३४६, ४२३, ४४७, ६०७

घणाउ = घना, बहुत – ४०, ३२०, ३२८, ४०१, ४०५, ५२६

घण्णां = पेलना – ४०५

घणहुल = – १७४

घणा = श्रमीक – ३४६

घणाहु = घना, बहुत – ४०५

घणी = घनी ८६, ८६, २७१, आदि

घणो = बहुत – २२, ६१, ३८६, ४४५, ४५३

घर = ५७, ११२, १३१, १३६, आदि

घर घर = – ६०

घरणि = स्त्री – ३१, ४५, ४६

घरवहि = घर में – २१०

घरणी = गृहिणी – ५३३

घरी = गड्डी ८४, १२१

घलहि = चलना – २७६

घवक = घणा – १८

घाउ = घाव – ४३, २३१

घाग्र = उल्लू – ३७६

घाघरी = झालर – २६६

घाठि = घटिया – ४१४, ४०६

घाटि = कम – २६६

घालइ = मारना – १००, १६५

घउ = घी – ४२२

घोर = – ५४७

घोरु = घोर – ५३६

च

चउ = त्यक्त – ३१, ५१८

चइज्जु = छोडो – ५१८

चइवि = भयकर – ५११, ५३४

चउ = चार – १४१, ५०४, ५१६

चउक = चौक – ६०

चउक्कु = – १२५

चउवी = – ५३२

चउँदह = चौदह – २०२, २३४
चउदिसहिं =   ४७०
चउपई बंधु = चौपाई छंदमें – २५
चउपड़ी =   – २३२
चउपही = चौरई – ५४६ ५५३,
चउपासहीं = चारों ओर – ३०, २२६
चउरासी = चौरासी – २६६
चउरी = चौरी, वेदिका, चंवरी – ६०, १२५, ४४३
चउवण्ण = चार वर्ण – ५१६
चउवण्णे =   ५४, २६
चउवयणु = चतुर्वदन, चार मुंह वाले – १०६
चउविह = चतुर्विध – ११
चउवीस = चौवीस – ६, ११,३७,३८
चउसय =   – ४३६
चक = कहा – ४७४
चक्क = चक्र – ४५५
चकचूनि = चकनाचूर २४५
चक्क = चक्र – ३५४
चक्कवइ =   – २०२, ४५४
चक्केसरि = चक्रेश्वरी – १०
चक्खु = चक्षु – ६७
चडइ = चढ़ी, चढ़ना – २४०, २९८, ३०४, ३६३, ४६०
चडाइ = चढ़कर – ८०, १६०
चडि = चढ़कर – २६६
चडियउ = चढ़ा १६२
चडियौ =   – ४४७
चडिवि = चढ़कर – १२७,३३०,४२२
चड़ी =   – ३१
चड़े =   – १६१

चतुर =   – १८६
चमकि =   – ४१६
चमर =   – ४४६
चमरु = चमर – १८५
चरडाइ = चरचरा – ३१६
चरडु = चरट, लुटेरा – ३५
चरण =   – २५४
चरणु =   – २१६, ५२३
चराचर =   – ५२
चरिउ = चरित – १८, ५४८
चरित =   – ४४०
चर्रा = दूत – १०७
चरु = नैवेद्य – ५२
चवइ = कहना – ५०, ५२
चर्म = चमड़ा – ४४
चहु =   – ५२६
चाउ = चाव – ८८, २३६
चाउरंगु = चतुरंगिणी – ४५१
चायउ =   – १६२
चारउ =   – ४६८
चारि = चार – ५१, ३६७, ५२३
चारु = सुन्दर – ३६
चारुदत्त =   – १८०
चिक्कार = चीत्कार, पुकार –३४६ ३४६
चित्त = मन, चित्र – २१, ८४, २३७ २४६, २७६, ११३, ३३२,३८७, ४४१, ४८६
चित्तकार = चित्रकार – १०४
चित्तह = चित्त – ४०१
चिताउ = चित्त – ३३०
चिंति = चिंता – ६८

चित्तूर = — ३३४
चित्तणि = चित्रणी — २७७
चित्तरेह = चित्तरेखा — २७२
चिर = — ४३८
चिहुर = रोमावलि — ६६
चीर = कपड़े — ६१
चैत्यालइ = चैत्यालय — ७७
चूड़ = चूड़ा — २६५
चूड़मणि = चूड़ामणि — ३०६
चुड़ी = चोटी — ३२३
चेड़ = सेवक — ३५४
चोजु = चमत्कार — २२०
चोटी = — ३७१
चोड़ि = चोली, (चोलवंगी) — २७०
चोर = — ३५
चोरी = — ७० २२८
चौपही = — ४३६
चौपुड़ी = चमेली = २३६
चंगी = सुन्दर — २८१, ३४३
चंद = चन्द्रमा — ६२, १८३
चंद्रकंति = — ४४५
चंदण = चंदन — ५३
चंदप्पहु = चन्द्रप्रभ — ४
चंदशिखर = — ४५६, ४६३
चन्द्रामती = — २७५
चंद्रावइणी = चन्द्रवदनी — १५५
चंदु = चन्द्रमा — १२, २६
चंदेल = — ४६६
चंपउ = — १७३
चंपकपुरी = — ५२५
चंपापुरि = चंपापुर — १०५, १२३, १५०,१६७,२५५,२६६,४४६
चंपावण्णी = चंपा के वर्ण के समान — ६४
चंपिउ = दबाना — २६८
चांचुरी = चञ्चु, चोंच — १६२
चिंत = चिंता — २६४
चिंतामणि = २८८
चिरौंजी = — ४१२

छ

छ[illegible] = — १८५
छउ = — १६६
छज्जइ = शोभित होना — ४५
छट्ठउ = छठा — ५३०
छप्पाउ = छिपना — २२५
छत्तधारि = ४५२
छत्ता = छत्र — ६२
छत्तीसउ = छत्तीसों — ४४, ४६२
छप्पन = — ५५२
छ सहस्सा = छहजार — ४५१
छहं = — २४३
छहसय = — ५५३
छाड़ो = — ३१५
छामउ = छिपाकर — ३४०
छाप = छापा — २२३, ४३३
छार = राख — ४२४
छाह = — ५५३
छांह = छाया — ४५६
छीनि = छीन — २७४
छीपड़ी = निपटी — ३७०
छुट = — २४४

छुडु = शीघ्र – ४२५, ५३८, ५४६

छुरी = – ६५, ३६५

छुहारी = छुहारे – ३३, १७१, ४७२

छूटउ = छूटना – ३४६

छेली = बकरी – ३७५

छोला = – १८३

छोहु = स्नेह – ३२६

छोहु = क्षोभ – ३४४

छड्डि = छोड़कर – १५४

छंदु = छंद – १४, १५, २०, ३२८

जइ = जो, जैसा, यदि, जब, – २०

२३, ११८, १३१

१४२, १६६, १६७, २१६, २४७,

२५२, ३१६ ३०५, ३३५,

४८०, ४९७, जाकर, – ३३२, ३४८,

३८३, ३९२, ३९३, ४१२, आदि

जइणावि = – ३५१

जइत्तो = – ३२१

जइनी = जैनी – ४५४

जइयहु = – १४७

जइयहु = – ७३

जइर = जो – ८३

जइवी = – १७८

जइसे = जैसे – ३४, ४१३

जइसइ = – ४६५

जइसवाल = जाति का नाम – २६

जंइहु = जाकर – २६७

जंउ = जभी – ३५५

जक्ख = यक्ष – ११

जक्खिणी = यक्षिणी – ११

जगणत्थु = जगन्नाथ ६

जगणाहु = जगत् के नाथ – ३

जगत्तय = जगत्त्रय – ५

जगमगंतु = जगमगाना – २६१

जगु = जगत = ६८

झत्ति = शीघ्र – १५४

झाण = ध्यान – ५३०

जड़ित = जड़ी हुई – १३४

जडिय – ४६०

जण = जन, – २२ आदि

जांथ = – २५

जणणि = माता – ३५

जणणी = – ४९९

जणणु = पिता – २२३

जणाइ = जानने पर – २३०

जणावइ = बताना = ४६७

जणि = मत – २६६

जणिमउ = पैदा करना ३८८

जणु = – ३१, ७१, ८७,

जदुहव = यादव – ४६१

जन = – २२३, ३१५

जनमु = जन्म – ४२४

जंपउ = जपना – ५२

जम = यम – १२

जम्मु = जन्म – ५९, ३०५

जय = – १

जयकारी = जय जय कार – ३३८

जयकेतु = – ५०८

जयजयकारु = जयजयकार – ३५९

जयदत्तु = – ५०६

जयमित्तु = – ५०८

जयसारु = – १०

जर = जरा, बुढ़ापा – ९

जरा = बुढ़ापा – ५१६

जल = पानी – ३६, ५३, ६०, ३६७
जलजइ = जलधि – १६५
जलजंतइ = जलजंतु – १६१
जलदेवी = – २४७
जलबाहु = – १६६
जलसज्जु = – ५१८
जलहु = – ४५८
जलहर = – २५१
जलि जलि = – ४५६
जली = – ४०१,
जलु = जल – १६६, २३२
जले = जलना – ४१४
जव = जब – १६२
जसु = – २४०, २५१,४४८
४५६
जसहि = जबसे – ३२३, २२६
जबही = जभी, – ३३५,
४२५, ४२६, ५१५,
जसु = जब – १६६, १२१, ३०६
३६६, २१३, २१६
जीवंजसी = जीवंजसा – ३१८
जसवइ = यशवती – ५३२
जसु = यश – २, १४, ६४
जहां = – ८१, १३६,१६०,
२६२, ३२७, आदि
जहि = जो, जहां – १४, ३१, ३६७,
आदि
जाइ = गये, जाना – ४८, ५७, ६२,
जाइवि = जाकर – १३२, १३६,
१४६, ५१६
जाइ सइ = – ४२६
जाइ = जाति – १७३

जाग = – १६५
जागइ = जागना – २१०, २११
जाण, जाणइ जाणउ = –
१०३, ६६, १७६, ४४२
जाणि = – ६४, १०२, १३१
२७४, ४२०, ४४८, ४६२, ४६६,
५३२
जाणियइ = जानो – ४०
जाणू = घुटने – ०१
जाल = – ११४, १२८,
५४१
जाति = – २६, ३२०,३२२
१६८
जातिपाति = – ३७३
जातिफल = जायफल – १७२
जातु = कदाचित – ५१
जान = जानना – २६६, ३५६
जाबु = गाल – ४०६
जाम जाम = बार बार – ३४४
जाम = जब तक – १०६,१४५, १५३,
२४३,३३७,
जामति = जन्म ग्रहण करते ही
– १३८
जामहि = – जब
जायउ = – ५०८
जायव = यादव – ४६१
जाल = – ४७६
जानु = – २३३
जायति = – २०४
जालामालिणि = ज्वालामालिनी
देवी – १०
जासवणु = जपापुष्प – १७३

जासु = — ३०७, ३७६

जाहि = जाना — ३३, ७०, ७४ आदि

जाही = — २१८

जाहु = — १३१, १२२

जिउ = — ३७४, ४८३

जिण = जिन — ७, ६, १३२, १४८

जिणणाहु = जिनेन्द्र भगवान — ४५

जिणदत्त, जिणदत्तह, जिणदत्तहि, जिणदत्ता, जिणदत्तु — २, १६, ११६, १३०, ११६, ४०१, २१० = नायक का नाम ४०१

जिणदेव = — २६२

जिणनाहु = — ४३४

जिणभुवणि = जिन मन्दिर — १५४

जिणवर = जिनेन्द्र देव — १, १४, २५, ५०, ५१७

जिणसुत्त = जिन सूत्र — ५५

जिणहरु = — १५८

जिणिंद = जिनेन्द्र — २४५

जिणु = जिनेन्द्र देव — ३, ७१, ५१०

जिणुत्तु = — ५२२

जिणेसर = जिनेश्वर — ३१४, ३६०, ३८५

जिणेंद = जिनेन्द्र — ३, ३१७

जित्थ = जहाँ — ३४५

जितनु = — २२०

जिन्हु = — ६८

जिन = जिनेंद्र

जिनदत्त = १२८, ५४८ आदि

जिनवइ = — ५३२

जिनु = जिनको — ७१

जिम = जिस प्रकार — २२१, २६२

जिमु = जैसे — ६२, २२४

जिमउ = जीमा — ३१४, ३१५

जिमणार = जीमणवार — १२४

जिमायो = जिमाया — १४५

जिसु = जिसको — १००

जिह = जिन्होंने — ७, ८६, २२६, ६६६

जिहि = जो — ३७२, ४८६

जीउ = जीव — २२६

जीउदेव — जीवदेव — ४६, ४७२

जीत = जीतना — ३५८

जीति = जीतकर — १३०

जीतु = जीत — ३२७

जीव = — ६, ४५, २३१ आदि

जीवइ = जीवित रहना — ३८८, ४७६

जीवउ = — १५६, ४७६, ४७७

जीवकहु = सवेरा — ४८६

जीवदया = प्राणियों की दया,

जीवदे = — ४७५

जीवदेउ = जिनदत्त के पिता का नाम — ४५, ६०, १०८, ११३, १३१, १५६, ४७३, ४८१, ५०७, ५३४

जीवदेव = जिनदत्त के पिता का नाम — २५७, २६१, ३१८, ३८६, ४८६

जीवरसहु = — ३७

जीवंजस = जीवंजसा (सेठानी का नाम) — ४५, ४६, ३८६, ५०७

जीहु = जीव ४०१, ४७६

जुगल = युगल, दोनों — ६२

जुज्झ = युद्ध — ४५१

जुत्तु = — ५२२

जुवा = जुआ ७६, १५९
जुवाणु = युवा – ६६
जुवार = जुआरी – १२८
जुवारिउ = जुआरी – ६८, ७२, १२९
जुवारिन्हु = – १३०
जुहारु = – ११७
जूड = जूट – ३५८
जूडउ = बालों का बांधना – २१८
जूवहु = जूआ – ३३०
जूवा = – ७०, १४२, १३८, २६९, ३८७
जूहि = – १७३
जेठी = बड़ी – ४३, ३३९, ४२२
जेतड़उ = जितना – ३३
जेम = उस प्रकार – १६
जेंवणु = जीमना – १२४
जेंमहु = जीमना – १२४
जेहि = जिसने – २७
जैसे = – ४२८
जो = वह – ८, ७६, २०२, २१०, आदि
जोइ = देखना – ५४, १५२, ५१९
जोइणी = जोगिणी ५२८
जोइस = – ४४२
जोइसिउ = – ४४२
जोइसी = – ४४१
जोइसु = – ४४१
जोग = – ३७९
जोगणा = जुगनू – २४
जोडणि = – ४५१
जोड़ि = जोड़कर – ६५, ११५, १३५, १४८, २२०, ३७६ आदि
जोतिषु = ज्योतिष ६५
जोयउ = देखना ४९३, ५५०
जोयणु = योजन – २३, १९३, १९५, २००
जोवइ = देखना – ९७, १५७, ३०९, ३१०
जोव्वणु = यौवन – ९४
जोंहि = – ३७१
जंघ = जांघ – ९२
जंजीगु = यथायोग्य ६७
जंतु = जानवर, पशु – ९५
जपइ = कहना – ३००, आदि
जंबु = जामुन – १७१
जंबुदीपु = – ३०

झ

झकोलइ = – १९४
झड़ति = खींचकर – ३२२
झटि = शीघ्र, – ३००, ५४३
झरणा = – १७१
झाइ = ध्यान – ५४६
झाड़ि = झाड़कर – ४७८
झाड़े = – २३६
झाणु = ध्यान – २९७
झाणु = ध्यान – ३९६
झाला = ज्वाला – २२६
झावइ = ध्यान करना ५४
झुलाए = झुलाकर – २४३
झूठ = – ४२६
झूठउ = झूठा – १४६, ४००, ४०४, ४१७
झूठिउ = झूठ – ५८

झूंठी — ४०३, ४०८
झूठे = — ३८०
झंखहिं = बक बक करना ३०६
झंप = कूदना — ३७८

ट

टलीय = छोड़ना — ३०७,
टापुगु = — ४०५,
टेकि = टेकना — ३४६,
टेव = आदत — २११,

ठ

ठइयो = ठहरना — २६६,
ठई = — ७७,
ठए = — १३५,
ठएवइ = नमस्कार करने योग्य—१६,
ठयउ = स्थापित किया — १७६,२१८,
३८७,
ठयगु = — १६२,
ठवगु = स्थान — १०४,
ठव्विगु = लगा रहना — ६८,
ठा = स्थान — १५१,
ठाइ = स्थान — २२, ३४, १४६, १७२,
.... आदि
ठाउं = स्थान — ६, २१, १०३, ...
......आदि,
ठाट = गौरव के साथ — ३५२,
ठाठा = — ४४४, ४५६,
ठाडउ = खड़ा — २६७,
ठाढ़उ = खड़ा कर दिया — ७६,
ठाणं = स्थान — २५२,
ठाणु = ठान कर (निश्चय करके)
— ३६४, २८०,
ठाणो = स्थान — ६५,
ठार = — २१०, २२८,
ठालउ = बेकार — ३३६, ३४३,
ठाली = बेकार — ३३६, ३४३,
ठाहरि = ठहर कर — २०१,
ठाहो = — ३४२,
ठिए = — १७०,
ठिय = — २६८,
ठेट = — २४३,

ड

डगडगाणा = डगमगाना — २४८,
डराहि = — ४६३,
डरि = डर — ३४६,
डसण = दांत — ३४६, ३७८,
डमणी = — ६७,
डहउ = जलना — १३
डहो = घोषणा — ३४८,
डाड़ी = डांडी — १२२,
डाहउ = कष्ट देना — २३०,
डाहु = दाह (चिंता) — ८२,
डोकरी = वृद्धा — २१५,
डोम = — २१७,
डोमु = चांडाल — २१२, २३२, २३३,
डोर = डोरे — १०६,
डोलइ = डोलना — ४०१,
डोला = — १२२,
डोंगर = पथरीले टीले पर्वत — ३४८,

ढ

ढलइ = पिघल जाना — १०१,

ढालि = गिराना – ३८६, ४२०,
ढीकुलि = – ४५७,

ण

णइ = – ४८८,
णमि = नमिनाथ – ७,
णमिउ = नमस्कार करना – ४८९,
णमोयार = णमोकार मंत्र – १५८
णय = – ५२०,
णयण = नयन – ६०, ४८६,
णयणु = नयन – ३९७, ४८४,
णयिर } = नगर – २२२, २९३,
णयरी } = नगरी – २९६, ३४५,
णयरु = नगर – ४०, ४७२,
णर = – ४२६, ५१४,
णरइ = – ४२७,
णरणाहु = – ४७१,
णरणहि = – ४२७,
णरवइ = नरपति – ४१९, ४३६
णरु = नर – ३४,
णरेंद = नरेन्द्र – २६८,
णव – नौ – १२५,
णवइ = नमस्कार करना – ८,
णवगह = नवग्रह – १३,
णवहि = नमस्कार – ३, ४४,
णहि = – ४२६,
णविवि = नमस्कार – १,
णहवणु = अभिषेक – ५२८,
णहु = नख – ९५,
णहयर = – २१०
णाइ = निश्चय से – १२,
णाहु = नहीं – ४०२,

णाइ = नाम – ३१, ४४,
णाउ = नाम – ५१५,
णाणु = ज्ञान – १८, ५२३, ५३८,
५७१,
णाणवंत = ज्ञानवंत – ५२५,
णामे = नाम – ५२७,
णासउ = नष्ट करना – १४१,
णासि = नाश करना – ७,
णाह = नाथ – ३१०, ४८२,
णाहिणरेसरु = नाभि नरेश्वर – १,
णाहो = नहीं – १५४,
णाहु = नाथ – ४२०, ४२१,
णांकरु = अपराधी – ३५,
णिआसि = निवास – ५२७,
णिक्कारणि = बिना कारण – ५४५,
णिम्मवियउ = निर्माण करना – ३१३
णिय = निज, नित्य – ५७, ६८,
११०, १५८, २२१, ३१८, ५४४,
णियमणि = निज मन – १६२, ४१६,
५३६,
णियरे = पास – ७,
णियाणु = निश्चय – ३१४, ५३३,
णिरास = निराश – ५०१,
णिरु = निश्चय में – ५८, ११६, २९७,
४३६, ५१६, ५२६, ५४५,
णिरंजन = – ४६२,
णिरिट्ठु = – ५३४,
णिसुण = सुनो – ४७०, ५३६,
णिसुणई = – २,
णिसुणहु = सुनो – ३२, २५६,
णिसुणहं = सुनो – ४०४,
णिमुणि = – ८३, १३४, ४०६,

४०३, ५३६

णिसुणिवि = — ५२४

णिसुणीहि = — ४८,

णिंदियइ = निन्दा करना — ५०

णींद = निद्रा — ५०२,

णीसरु = — ५१७,

णीसो = निष्फल — २६०

णु = नहीं — ३०५,

णेमि = नेमिनाथ — ८,

णेरिउ = नै ऋत (दिशादेव) — १२,

णंदण = नन्दन — ७७,

णं ण काह = मना करना — १२६,

त

तइ = तूने तो — १०७, ३२३,

तइरु = — ३१५,

तउ = तो, तब — ७३, ७४, १०६
११६,......आदि

तए = — ४७०,

तक्क, तक्कु = तर्क — १४, ६४,५२२,

तक्कंते = ताकते हैं — ६८,

तगाइ = विश्वास करना—३४६,३६१,

तणउ, तणऊ= — ६७, १८३,
३८१, ४०१, ४८२,

तणिउ = — ४०,

तणिया = — ४०२,

तणी = तरह } —६३,६६,२१३,२३८,
तनी } —३६५, ३८५, ४०४,

तणु = — १००,

तणे = तने — ३८६,

तण्णो = का — ३२,

तत्थु = तहां — ३४५,

तपइ = तपना है, चमकना — २४,

तप — ताप — ४८, ३३६, ५१२,

तरणु — — २५४, २६२,

तरणी = सूर्य — ४५३,

तरिवि = तैरकर — २५६,

तरु = — १२३, ४६६,

तरुवरु = बड़े-२ वृक्षों को — ३४६,

तल = तट, तले, नीचे — २८३, २९९,
३४७,

तलि = नीचे — ६८, २२६,

तव = तप — ४२७,५३८, ५३६,५४०,

तवइ, तवहि = — ६६, ८२, ४८७,

तवु = उसी समय — १०४, ११०,
......आदि,

तवोलु = ताम्बूल-पान — १२४,

तस = उसका — २,

तसु = उसकी — ४६,......आदि,

तह = — १८, ३७, ४०, १२५,
.........आदि,

तहं = — ५२७,

तहां = उसी स्थान पर — १३२, १३६,
१६०,.........आदि

तहि = जहां } — ३०, ३१,.........
उसका } ....आदि आदि

तहु = तो — १६२, २१६,......आदि,

तहो = — ६०,

ताउ = — ५२८,

ताडइ = ताडना — ३६६,

ताणि = उन्हें — ४२०,

तात = पिता — १४८,......आदि

तातय = तात — ४००,

तापहि = उससे — ५४२,

ताम = उसको — १०६, १४५,·· आदि
तामहि = उस समय — २२५,
ताराते = — २७५,
तारुणी = तरुणी — ३३५,····आदि,
ताल = — २८२,
ताला = — २२६,
तालु = तालु — ३२६,
तास = उसके — ३४६,
तासु = उसका — २३,········ आदि,
ताहु = उस, उन्हें — ३६६,····· आदि,
ताहि = उसे, तब — ७४,······आदि,
ताहं = उनको, तब — १, २२३,
तिउ = — ४५७,
तिण = ते — ३२२, ३६८,
तिणि = उन — ७१, १८५, ३४२,
तिण्णि = तीन — ५१,
तिणु = — ४४७,
तितु = उतना — २२०,
तित्थु = वहां — २६१, ४१६···आदि,
तिन = उन्हें — ८२,
तिनसि = तिनसे — ३६८,
तिनि = तैसी — ३३३, ४१६,
तिनि = — ५१६,
तिनिउ = तीनों — ३४४, ४४२,
तिन्यों = तीनों — २१६,
तिन्ह = उनके — ३२८, ३८७,
तिन्हइं = उन्हें — १७०,
तिन्हि = उन्हें — २०४,
तिन्हु = उन्होंने — ४२,····· आदि
तिन्हु कहु = उनको — ११५,
तिन्हु हु = तीनों — ३६६,
तिमिर = अंधेरा — २८६,

तिय स्त्रियां — ७६,
तिदा = तीन फांकों वाला — १२१,
तिरइ = तैरना — २६०,
तिरिय = स्त्री — २५८,·····आदि,
तिरियनु = — ४३८,
तिरिया = स्त्री — ४२७,······आदि,
तिरिवि = पार करना — २२२,
तिरी = स्त्री — २७८, ३०६, · आदि
तिलउ = तिलक — १६७,
तिलक = " — ६८,
तिलोत्तमि = तिलोत्तमा — २७६,
तिलंग = तैलग — २७०,
तिस = उसका — ६२,·····आदि,
तिसु = उसे — ३३५,
तिसुधि = त्रिशुद्धि — ५१६,
तिह = उस — १४६,····· आदि,
तिहां = वहां — १५१,
तिहि = उसके — ४७,······आदि,
तिहु = — ३६५, आदि,
तिहुकाल = त्रिकाल — १८६,
तिहु को = तिसका — १००,
तिहुवण = त्रिभुवन — ६, २४,
तिहू = तीन — ४२१, ४३०,
तीकउ = — १८२,
तीजइ = तीसरे — ३४२, ५४६,
तीजौ = तीसरा — ···············
तीन = ······ — ३४८,
तीनि = तीन — ४१०
तीनिउ = तीनों — ३४४, ३६१,···
····· आदि,
तीन्यौ = तीनों — ३३१.
तीय = स्त्रियां — ५३५,

तीया = स्त्रियां – ३६६,
तीर = – ४६५,
तीरहिं = तट पर – २६१,
तीस = – ३६३,
तुज्झ = ········· – २२१,
तुज्झि = ········· – ५२१,
तुझ = ·········· – २०६, ५०१,
तुठ = सन्तुष्ठ – ५४,
तुडि = त्रटि – २६४,
तुणु = – १३६,
तुम = – ७३, ११०, १४८,
··········आदि,
तुम्ह = – १३१,······आदि,
तुमह = तुम्हारा – ११३,
तुमि = तुम – ४०३, ४०८,
तुम्हरइ = – ४७२,
तुम्हहि = तुम्हारे – ४०६, ४९७,
तुम्हहिन = – ५१६,
तुम्हारउ = तुम्हारा – ४२०, ४३०,
तुम्हारी = १०६, ३६२,
तुम्हारे = ४०४,
तुम्हारो = तुम्हारा – ४२२,
तुम्हि = – ७३,····· आदि,
तुरे = घोड़े – १२१,
तुरंग = घोड़ा – ६५१,
तुरंतु = शीघ्र – १६२, २६४,
तुरंतउ = – २२८,
तुरता = शीघ्र – २२४,
तुलहती = तुलाराशि – २६,
तुव = तुझको – १०,५६,८४, ११२,
२१६, २२३,
तुह = तुमको – ५५,····· आदि,
तुहारउ = तुम्हारा – ११३,
तुहि = तुझे – ८३,······आदि,
तुहु = तुम – ५, १६,······आदि,
तुहं = – २२३,
तू = – ३०२,······आदि,
तूटउ = टूटा हुआ – ४८३,
तूठउ = तुष्ठ, सन्तुष्ठ – ८२, ३३०,
तूठहि = सन्तुष्ट – ३३६,
तूठी = सन्तुष्ट – १६, ५७,
ते = वे, तेरे – ११, ४४,······आदि,
तेउ = वह – ३४०, ४५०,
तेजु = नाम – १८१,
तेण = उसने – १३२, १४६,
तेतउ = उतना – ६३,
तेन = उसका – ४११,
तेम = उस प्रकार – १६,
तेरउ = तेरा – १६७,
तेरहसै = – २६,
तेरी = – ३७६,
तेरौ = तेरा – ३६८,
तेव = – ३५६,
तैसे = वैसे ही – ३४,
तैसो = – ४२८,
तोहि = तुझ से – ३३६,······आदि,
तो = तब – ३०६, ४७७,
तोडइ = – ५४२,
तोडि = तोड़कर – ३४५,
तोडितु = तोड़ता – ३४५,
तोडे = – ५३६,
तोरण = – २८४, ४४३,
तोलि = लेकर – २६५,
तोवि = तोभी – ७६,

तोलु = मूल्य — ············
तोहि = तुझ से — १७, ४८, ···आदि,
तोहो = तुझे — ३४३'
तौ = तो, तब — ७३, ३९२,
तौहि = तुझे — ३५४,
तं = उसको — १५२,
तंखण = उसी क्षण — ८१,
तंखिणी = तत्क्षण — २२७,
तंत-मंतु = तंत्र-मंत्र — ६५,
तंद = — १३६,
तंबोल = पान — ६१, ८२, २१८,
तंबोल = पान — ४१३,
तुंग = ऊंचे — ३६,

थ

थका = उसका — ७५,
थक्किकउ = थकना — १६९,
थाट = ठाठ — ४५४,
थाढउ = खड़ा — ५३१,
थण = — ५००,
थाकइ = थकना — २०७,
थाटु = ठाट — २८१,
थाण = स्थान — ९६,
थाणु = स्थान — ९१,
थापि = — ४४६,
थापिउ = स्थापना — २६८,
थापियो = ········ — ४२९,
थापे = स्थापित किये — ४४३,
थालु = ४६७,
थुइ = स्तुति — १६,
थेई = मिली — २८८,
थोगावहि = — १८३,
थंभणिउ = रोकना — २८७,

द

दइ = देकर — ८२, १८९, २९३, ४५८,
दइजू = देना — ३०३,
दइय = दैव — ४८२,
दइया = दैव — १५५,
दइवि = दैव — ३१३,
दरसु = द्रव्य — ४१५,
दप्पु = दर्प — ७,
दप्पु = दर्प — २२७,
दमइ = दमन — १५८,
दय = दया — ६, ५२५,
दया = — ४२, ४३, ५१७,
दयवंत = — ५३६,
दयवंतु = — ५४,
द्रव्य = — ४४६,
दरसणिदे = दर्शन दे — २७५,
दरसनु = दर्शन — १०१,
दरसिणी = दर्शिनी — २८८,
दरसहि, = दिखाओ — ३२०,
दल = सेना — ४५२, ४६०, ४८५,
दवडी = द्रविड़ी — २७१,
दवणो = — १७२,
दव्व = द्रव्य (धन) — ७१, १३५, ५२०,
दव्वु = द्रव्य — १२०, १३१, १४
३३८, ३८७, ४०९, ४११
दविणमित्तु = — ५०८,
दस = — ५६,
दसपुर = — १३६,
दस = १० — २७, १३६,
दह = दश — ४१५, ४३६, ४५१, ४५२,

दहुग = अग्नि, जलाना – १२,
दहदिह = दशों दिशाएँ – २६५,
दहिउ = दही – ४२४,
दक्षिण = दक्षिणा २७०, ४६०,
दाइजी = दहेज – १२६,
दाइजे = – २३६,
दाइजो = – ४४५,
दाइजो = – २८५,
दाउ = दाव – १२६,
दाव = – ३३, १७१, ४१२,
दाडिव = दाडिम(अनार) – ४१३,
दाण, दाणु = दान – ४५, ४८, ५०, ५०४,
दातलय = हँसिया – ३७८,
दान, दानु = – १४०, २८५,
दानि = दानी – २७६,
दाम = कीमत – ३४, ६१, १०३, मुद्रा, १२६,
दामु = एक सिक्का – ७२, ८२,
दारिद्दह = – ५२६,
दारिद्द = दारिद्र – २७६,
दारुण = भयंकर – २२५,
दास = – १६७, २८४,
दासि = दासी – ८३, ११६, ५४२,
दाहिण = दक्षिण – ३०,
दिए = – १८४,
दिखाल = दिखलाया – १०५,
दिखालउ, दिखालहि = – ७०, २३५,
दिखु = दिखलाई देना – ३५३,
दिढ = दृढ – ४८२,
दिठउ = देखी – २२४,
दिठि = दृष्टि – ७१, ७७, १००, २८६,
दिठिय = देखी – ६०,
दिठियउ, दिठियऊ = देखा – ११९, १५४,
दिठु = देखी – ८५, ४८७.
दिठु = दिखाओ – ३२६,
दिढ-मंतु = दृढ मंत्रणा – १०३,
दिण्ण = दिया – १२६, २२२, ४१८,
दिण्णु = दे दिया – १६, ४४४, ४४५,
दिन, दिनु – ५६, १२७, १५१, २११, ३३७,
दिन्न = दिये – २३६,
दिन्नु = दिया – २६५,
दिपइ = चमकना – २४, ४४, ६८,
दिपहि = चमकना – ४१, ८६, ६५, २६६,
दिपे = – ३५०
दियइ = दिये – २६५,
दियउ = देना – ८२,
दियपालु = – १८१,
दिवस = दिन – ६३, ३४८,
दिवसहं = दिन में – ५०२,
दिवसी = दिवस – ३४०,
दिवाइ = दिलाना – ३८३, ५१५,
दिवाए = – १७०,
दिवाटणु = रातदिन – ३३८,
दिस = – ४६१, ४७०,
दिसइ = दिशाएँ – ३०६,
दिसंतर = देशान्तर – १३६, ३६३, ३८७,
दिसंतरु = देशान्तर – १४०, ३८८, ३८६, ४०४,
दिहु = दिशा – ४३६,

दिहि = देता है – १४०,
दीउ = द्वीप – १६६, १६७, ५४१,
दीअ = देना – ४८, ११०, १४२, १४४, १४७, ३८२,
दीठ = दिखाई दिया,– २१६, ५०१, दृष्टि –
दीठइ = देखने पर – ३१४,
दीठउ = देख कर – १०६, ३१२, ४४८,……आदि,
दीठी = दृष्टि – ११७, ७८, २२०,
दीठु = देखा – ४२४, ४३६,
दीठे = दीखे – ३८६, ५१६, ५४१,
दीण = दीन – १४४, ५०४,
दीणा = दीन – ४००,
दीणे = दिये – ६१,
दीन = देने – २७४,
दीनउ = – १६६, ५३३,
दीनहु = दीन – ४१६,
दीनिउ = – ६४६, ५३७,
दीनी = लगाई – १३१, १६२, २१७, २३६,
दीप = द्वीप – २००, २०१,……आदि,
दीपि = द्वीप – २६०,
दीवइ = दीपक – ५३,
दीवउ = देना – ७४,
दीवहु = द्वीप – ५३५,
दीवि = द्वीप में – २०१,
दीषा = दीक्षा – ५३७,
दीसइ = दिखाई देना – ३७, ३६,……आदि,
दीसहि = दिखाई देना – ६३, २६३,
दीहु = दीर्घ – ६७, २२६,

दुइ = दो – ६१, १८४,……आदि
दुइजइ = दूसरे – ३४०,
दुइसइ = दो सो – ५५०,
दुख = कष्ट – २०७, २०६, २५८, ४०५, ६१२,………आदि,
दुखहु = दुख – ४०४,
दुखी = – ३२,
दुखु = – ३, …… आदि,
दुज्जण = दुर्जन – २१,
दुठ = – ४२५,
दुद्धर = भयंकर – १६४, ५३८, ५४७,
दुमहु = दोनों में से – ४२०,
दुलहु = – ४२६,
दुव = दो – ५०५,
दुविहु = – ४८५,
दुह = दुःख – ६, ६,…… आदि,
दुहहरण = दुःख हरण – ४,
दुहिया = दुखिता – २२२,
दुही = दुखी – ५०४,
दूज = – ४४५,
दून = – ३६८, ४६२, ६७०,………आदि,
दूतक = दूत – १६३,
दूमहि = दोनों में – ४२२,
दूवइ = दोनों – ३१६,
दूसहु = दुःसह – ४५४,
दूसिउ = – ६४८,
देइ = देना – २०, ४५, ५०,…आदि,
देउ = देव – ३, ५४,… आदि,
देखइ = दिखाई देना – ११८,
देखणइ = देखने – १६३,
देखत = देखते ही – १५५, १३०,

२६१, २६६,
देक्खहु = – ११५, १३१,
देखालियउ = दिखाया – २७,
देखि = देखकर – ३२, १००,... आदि,
देण्ण = दैन्य – ११२,
देव = – २११, २१६, २३५,
...... आदि,
देवांत = देव – ३६३,
देवलु = देवल – ३८१,
देवि = देवी, देकर, ११ ५१२,
देश = – १८६, ४५३, ४५६,
देस = देश – ८५, ...आदि,
देसासु = मांस रोककर – १९२,
देसि = – ५२७,
देसु = देश – ३१, ३२, ... आदि,
देसंतर = देशान्तर – ३२४,
देहु = शरीर – ९४, ९९, ...आदि,
देहि = देते थे – २३, २४, ...आदि,
देहु = देवो, देना – ८०, ... आदि,
दोइ = दो – ४५६,
दोइ चारि = दो चार – १५१,
दोउ = – ५०४,
दोषु = – ४६५,
दोस = – ५४८,
दोसहु = दोष – ७
दोसु = दोष – २०, २१, ...आदि,
दह = – ३५, ३५३, ४६५,
४७२,
दहु = – ४७०, ४७१,
दंत = दांत – ४०६, ५३६,
दंतुसालि = दांतोंवाला – ३४५,
दंतसरि = पुष्ट दांत – ३५८,
दंतसुलि – पुष्ट दांत वाला – ३४७,
दंता सेठि = – १८६,
दंसण = दर्शन – ३८,
दंसणु = दर्शन – ५२३,
दांत = – ४०७,

ध

धण = धन – ३६, ४७, ... आदि,
धणकण = धनधान्य – ८६,
धणदत्तु = – १८०,
धणदु = कुबेर – १२,
धनदेउ = – ५२७,
धणवाहण = धनवाहन-नाम – २०२,
२१६,
धण्ण = धन्य – ११३,
धणी = धनी – ६३, ...आदि,
धणु = धनुष – ९८, ... आदि,
धणु देह = धनदेव – १८४,
धध = – १८३,
धन = द्रव्य – १३५,
धनु = धन – १६४, १८५,
धन्नी = [illegible] – ३६६,
धम्म = धर्म – १, २१, २७, ...आदि,
धम्मु = धर्म – २, ३४, ...आदि,
धम्मुद्धरण = धर्मोद्धारक – १,
धर = धरकर – ८, २२६,
धरइ = धरना – ५१, ६२, ...आदि,
धरणि = पृथ्वी – ४५३,
धरणिंदु = धरणेन्द्र – १२,
धरमु = धर्म – ४८, १६०,
धर्मपुत्र = धर्मपुत्र – १७६,
धरहि = लेकर – १८७, २४५, ४६१,

धरहु = — २३७,
धराइ = धरकरके — २७,
धरि = धारणकर — ६,……आदि-२,
धरि धरि = …… — ८७,
धरिउ = धरी, पकड़ी — ३८५, ३६०, ५४०,………आदि,
धहायउ = धाड़ मार कर — ………
धाहहिं = दहाड़ मार कर — १५०,
धाड़ि = ……… — ४७८,
धाणुक = धनुर्धर — ४५२,
धाधू = — १८५,
धार = दौड़कर — ७६, ४५६,
धारावंधणी = धारा बांधने वाली — २८६,
धाव = दौड़ना — १५५,
धावहीं = दौड़े — २६१,
धाह = धाड़मारकर — २१०,
धिउ = घी — ४२४,
धिय = लड़की — २२०,
धीइ = कन्या — २१०,
धीजहि = धैर्य देना — २४६,
धीय = लड़की, पुत्री — १०६, १११, ११२,……आदि,
धीयउ = लड़की — १५०,
धीयहु = पुत्री — २८२,
धीर = धैर्य रखने वाले — १३८,
धीरु = — ४६६,
धीरैं = धीरता पूर्वक — १३६,
धुखसती = धुवसती — ५०६,
धुजा = ध्वजा — १६१, १६२,
धूत = धूर्त — ४१०, ४१३,
धूप = — १७२,
धूपइ = — १५५,
धूलि = — ४५३,
धूव = धूप — ५३,
धोवति = धोती — ३२५,

न

नउ = — ५०६, ५५२,
नगरी = पुरी — ४७,
नट = — ३२८,
नटउ = खेलना — ३२७,
नट नट = — ६६,
नताइ = खेलने — १३६,
नमउ = नमस्कार करता हूं — ६, २७,
नमिउ = नमस्कार करना — ७,
नयण = नयन — ११७,
नयणु आंखे — १५४, २०८, २४६,
नयर = नगर — ७३, ८६, १८६, ३०८, ……आदि,
नयरहिं = नगर — ४७३, ४७४,
नयरहं = नगर में — ३४८, ४७८,
नयरि = नगर में — ४७४, ४७८,
नयरु = नगर — १०८,………आदि,
नर = मनुष्य — २११,
नरक = — २४६,
नर नारि = — ७३,
नरनाह = — ४७०,
नव निहि = नवनिधि — २०२,
नरयह = नरक — ४४६,
नरयहं = नरक में — २२४,
नरवइ = नरपति — ३६८,
नरवनु = — ४६६,
नरसुर = नरलोक एवं सुरलोक

निवासी – ....

नरिंद = नरेन्द्र, राजा – ४१७,

नरु = मनुष्य – २०३, २१४,

नवइ = नमस्कार करें – ४७३,

नवऊ = नमस्कार करता हूँ – १०,

नवजोवणी = नवयुवती – ७५,

नवरस = – २७२,

नवरंग = नवीन रंग – १५१,

नवि = – ४५५,

नसिरउ = निकला – २३५,

नहीं = – ४३२, ४८२,

नाइका = नायिकायें – ६०,

नायिकाएं – १२५,

नाइकु = नायक – १६३,

नाइसि = राशि – २२३,

नाउ = नाम – ६२, ३१७, ३२१,

३२२, ५४०,

नाक = नालिका – ६६, ३७८, ४४८,

नागु = – २३२,

नागे = – १८५,

नाटकु = नाटक – ३३७,

नातरु = नहीं तो – १४७, १९२,

नाद = स्वर, आवाज – ६६, ३२८,

नाम = – १८५, २६६, ३८७,

नामु = – २५६, ४५४,

नामें = नामकी – ४६,

नायरु = – ४५०,

नायवंतु = नीतिवाला – ८८,

नारि = नारी, स्त्री – ७५, ८३, ८४,

नारिस्यु = ... – ४३०,

नारिंग = नारंगी – १७१,

नारी = स्त्री – ३०८, ३३६, ३४४,

४०१,

नालियर = नारियल – १७०,

नावइ = नमाये हुये – ६७,

नाहु = नाथ – १५५, २०४, ३१२,

३१५,

नाहि = नहीं – ३०४,

नाही = नहीं – ४७, ६१, १३०

१६४, ...

नाहु = नाथ – १९९,

निकरहि = निकले – १६५,

निकल = चला – ३३८,

निकले = – ४०६,

निकाली = निकालना – २२०,

निकिठी = निकृष्ट – ४०३, ४८२,

निकुलाहि = बिनाकिसीकामी के – १०४,

निकुंभ = – ४६१,

निगंथु – निर्ग्रंथ – ५१८,

निरुद्द = – ४६४,

निछउ = निश्चय – ५११,

निछम्मु = निश्छिद्र – ५११,

निछय = निश्चय – ७२,

निज = अपने – १६०, ३३०,

निठाले = निठल्ली – १९२,

नित = नित्य – ४७३,

निपान = नीचा – ३७८,

निपुंसकु = नपुंसक – १६५,

निम्मल = निर्मल – ५१,

निमित्तु = – ५१२,

निय = निज – ८१, १३४, १५४,

..........आदि

नियकंतु = प्रिय-पति – १५६,

नियउ = निकट – ५४१,

नियमणु = निश्चित मन में – ५४,
नियाणु = निदान – २६३, ४८०,
नियरु = निश्चय – ३४६,
नियंबसिा = नितंबिनी – ५४३,
निरकरइ = निश्चय रूप से करना – ३५८,
निरखहि = देखना – ४३१,
निरखे = देखे – ३५३,
निरमंतु = – ५१८,
निरखाली = उलझने वाली – ३३९, ३४१, ३४३,
निरवासु = न रहने योग्य – ३४७,
निरविस = विष रहित – …………
निरालउ = – ४७९,
निरु = निश्चित ही – १८, ५२, ५३, ६८, १८९,………आदि,
निरुत = – ४९७,
निरुत्त = – ५५१,
निरुभासि = आभास – ५४२,
निरुहउ = उदासीन – ५४०,
निलउ = – ४८६,
निवडइ = व्यतीत होना – २२३,
निवसइ = रहना – ४६,
निवाणु = निदान – ३५४,
निव्वाणु = – ५५१,
निवात = नवनीत – ४१२,
निवारइ = दूर करना – २०६,
निवारिउ = मना करना – ………
निविसप्पु = निर्विकार – ५४६,
निस = रात – ३१५,
निसाणु = निशाना – ४५३, ५०३, ५१५,
निसि = रात्रि – २०३,
निसिभोज = ५१८,
निसुणु = सुनो – ११६, २६१,
निसुणहि = सुनो – ८५, ४७५,
निसुणइ = सुनकर – ३६५,
निसुनहि = सुनो – १०८,
निसंगु = निःशंक – २३२,
निसुंभहु = मार डालना – ४०४,
निहचै = निश्चय से – १६७,
निहाणु = निधान – २६२, २८८,
नीकउ = अच्छा – १११, १५०, २३४, २९५,…… आदि,
नीकी = अच्छी – २२४,
नीको = अच्छा – ११२,
नीत = – ५०७,
नींद = निद्रा – १६०,
नींदउ = निन्दा करना – २१६,
नीर = पानी – १६४,
नीरु = नीर-पानी – ३६८,
नीरहु = जल में – ३४१,
नीलामणि = – ४४५,
नीले = नीले वर्ण वाले – ६३,
नींब = नींबू – १६६,
नीसरइ = निकली – २००, २२६, ४५६,
नीसरयो = निकला – ३६६,
नीसरिउ = गये – १६७,
नेउर = नेवरी – ६१
नेत = नेत्र, एकरेशमी कपड़ा – ४६०, ५०३,
नेमु = नियम – २, ५२१,
नेवालउ = निवारिका – १७४,

नेहु = – ५२६,
नंदण = पुत्र,-नंदन – ६०,
नंदणवणु = नंदनवन – १५१,
नंदणु = पुत्र – २६१, ३१८,
नंदन = पुत्र – २५७,
नंदनि = पुत्री – ८१,
नंदनु = पुत्र – १५६,
निद = निद्रा – २२४,
निदइ = नींद में – २२७,
निदा = – ५४६,
निद्दभूती = निद्राके वशीभूत – ३८३,
नींद = सोना – ३०७, ३०६,
नींदभरिण = नींद में – ३११,
न्योले = निमन्त्रण – १२८,
न्हवणु = अभिषेक – १५२,
न्हाति = नहाते हुये – १०२,

प

पइ = पहिले के – ५८१,
पइठ = प्रस्थान किया – १२२,
पइठउ = जाना – ४१०,
पइठाण = प्रतिष्ठान – ४०६,
पइठिउ = पहुँचना – १५४, ४८८,
पइठी = बैठी – ३८८,
पइठ्ठ = बैठना – ८५,
पइमिति = परिमिति – ५३३,
पइरतु = तैर रहा – २६६, २८३,
२४२,
पइसरइ = प्रवेश करना – २०३,
४८६, ५३६,
पइसारहि = पास – ४५६,
पइसार = प्रवेश द्वारा – १६०,
पइसारि = प्रवेश – २६६,
पइसारिउ = पीछे छोड़ा – १६७,
पइसि = प्रवेश कर – २२८,
पउ = – ५५१,
पउमप्पउ = पद्मप्रभ – ४,
पउमराइ = – ४४५,
पउलि = पौल – ४५७, ४६०, ४६१,
पखालित = धोये हुए – ४२६,
पगार = प्राकार – ८९,
पच्चक्खु = प्रत्यक्ष – ४०, ४३२,
पचार = पुकार कर – २६२,
पचारहि = ललकारना – २१६,
पचारि = पुकार कर ३५२, ४५६,
पच्चारि = ललकारा – १३०,
पच्चारिवि ललकारना – २२७,
पछण्णु = प्रच्छन्न – १५४,
पछतावउ = पश्चाताप करना – २२०,
पच्छिम = पश्चिम – ४६६,
पज्जोवहि = प्रकाशित करना – ५४२,
पटतरइ = तुलना – १०२,
पटुय = – १०६,
पटवा = रेशमी वस्त्र बुनने वाला –
४३,
पटोली = ·········· – ४११, ४६०,
पटोले = रेशमी वस्त्र – १०३, ६१,
५०३,
पटोलौ = ·········· – ४२६,
पट्ट = ·············· – ११२,
पट्टणि = नगर – ३४४,
पट्टिया = पटिया – ६५,
पाठइ = भेजना – १४७,
पठवउ = प्रेषित किया – १३२,

पठवउ = प्रेषित किया – १३२,
पठाइ = भेजना – ८१,
पड़ = पट-चित्रपट – १०५,
पड़इ = गिरकर – ६२, २२६, २४२,
३६४,
पडतय = पड़ने पर – ४६१,
पडयँ = देंगा – ३३७,
पडहि = – २४६,
पडही = पटही (बाजा) – ३८०,
पडाइ = गिर पड़ा – ३४०,
पडाइरइ = ······· – १६१,
पडि = चित्रपट – १०४, १०६,
पडिउ = पड़ना – ७६, १३४, १३६,
१३७,·········आदि,
पडिगाहि = ············ – ५३१,
पडिघडंती = गिराकर – १५७,
पडिमाइ = प्रतिमा – ५२३,
पडियउ = पड़ा – २०५,
पडिहार = प्रतिहारी – ४१७,
पडिहारु = ············ – ४१८,
पड़ी = गिरी – ३१, ५५, ४२७,
पड्ड = चित्रपट – ············
पडे = पड़ना – ४०८,
पकण = पकने के लिये – ६३, १२६,
पकत = पकते हुये – ६५,
पकमु = ············ – ५३४,
पढ़िउम = नहीं पढ़ा है – २०,
पणवइ = प्रणाम करते हैं– १५, ४६,
पणावउ = प्रणाम करता हूँ– ३, २८,
पणमउ = प्रणाम करता हूँ–११, १२,
पणसइ = – १६६,
पणाठी = नष्ट करना– ३२३,
पणीत = प्रति– ५०७,
पत = – ३६२,
पतइ – पात– २०४,
पताका – – १६२,
पताल = पाताल– २४३,
पतालहि – पाताल– ३६७,
पतिवारु = विश्वास– ३०२,
पत्ति = पत्नी– ५५,
पतीजइ = विश्वास– २६६,
पद = – ५२०,
पदमणि = पद्मिनी– १०२, २७४,
पदमावती = पद्मावती देवी – १०,
२७३,
पदारथ = वस्तु (रत्न)– ८६,
१३२, १३५,
पदार्थ = – १८७, २८६,
पधोलि = मजबूत– १७०,
पन्न = – २८६,
पभणइ = कहने लगा– ४७०,
पभणेइ = ,, – १३३,
पभणेवि = ,, – १६,
पभणेहि = ,, – २६३,
पमाण = प्रमाण– २४,
पमाणु = प्रमाण– २६०, ५५०, ५५३,
पमुह = – ४२६,
पय = पद, चरण– ८, १४, २५,
१६६, ५२४, ५३०,
पयड = प्रकट– ६०,
पयडंतह = प्रतिपादित करना– २१,
पयडंसि = प्रकट करती है–२८०,
पयत्थु – पदस्थ– ५२२,
पयदल = पैदल– ४५२,

पयपंच = पंच पद (पञ्च परमेष्ठि)– २५३,

पयार = – ५२४,

पयासहि = प्रकाशित– २७१,

पयसित = प्रवेश होकर– २५४,

पयौ = पैरों में– ६२,

पयंड = प्रचण्ड– १६४,

पर = अन्य, लेकिन– ४२, ४७, १११, १६४ आदि

परदेसिय = परदेशी– २२३,

परक्कम्म = पराक्रम– ३६२,

परखि = परीक्षा– ८१,

परछण्ण = छिपा हुआ– २७१,

परछनु = प्रछन्न, छिपकर– ३०८,

परजा = प्रजा– २५, ३६६, ४७१,

परठइ = प्रस्थापित किया– ५०७,

परठइय = भेजना– ४२२,

परणाइ = विवाह करना– २३६,

परणारि = परस्त्री– ३५,

परणी = ब्याही, विवाह किया– ३६०,

परणेइ = विवाहना– ३८०,

परतह = प्रत्यक्ष– ३२,

परतिय = दूसरी स्त्री– २१४, २४७,

परतिषु = प्रत्यक्ष– ४२४,

परतीर = समुद्रपार– १७३, १७६,

परतु = – ४२७,

परतुस = प्रतोष, सन्तोष– ३०१,

परदव्वह = परद्रव्य– ६८,

परदेश = – ४६२,

परधान = प्रधान– १८८,

परनारि = परस्त्री– ६८,

परम = – ५३८,

परमप्पउ = परमात्मा– ५४६,

[illegible] = परमपद– ५२१,

परमेठि = परमेष्ठि– ५२, ४७३, ४८७, ४९३, ४९४,

परवाणि = प्रमाण– १०३,

पखालि = धोना– ५३८, ५४७,

परलोप = परदेश– २२२,

परसइ = स्पर्श करना– ८,

परसणी = प्रसन्न होओ– १६,

परह = दूसरों की– ५०,

परहंस = प्रसन्न– १४५,

परहसु = परिहास– २२२,

पराई = दूसरों की– १४१, २१४, ३६१,

पराण = प्राण– २५२, ३०४, ३१४, ३५७,

परि = गिरना– २४१, ४०२, ४९७,

परिखा = खाई– ४५८,

परिगहु = विश्वास– ३५०, ४६०,

परिजा = प्रजा– ४५६, ४५७, ४५८, ४७०, ५०५,

परिठइ = रचना– २३४,

परिठविउ = परिस्थापित– ६६,

परिणइ = परणाना– ३४६, २७२,

परिणाई = ...– ४४४,

परिणाम = नतीजा– ३७६,

परिणामु = नमस्कार– ५१५,

परिणावहि = विवाह करो– २८४,

परिणाविय = विवाह किया– २८५,

परिणिय = विवाही– ३६०,

परिणेइ = परणी, ब्याही– २५६,

परितहि = पहले ही– १६६,

परिपुण्ण = परिपूर्ण– ५०६,

परिमंडल = शत्रुदल– ४६०,
परिमाणु = परिमाण– ३६४,
परियणु = परिजन– ४७, ११०, १६४,
परिया = पड़ा– ४६, ३४२,
परियाणि = ... – ५३२,
परिरत्तु = अनुरक्त– ५४४,
परिवाणि = प्रमाण– ६४,
परिवार = – १०४,
परिवारहं = ... – ५१३, ५१५,
परिवारहं = कुटुम्ब– ४५,
परिवारु = परिवार– ४०३,
परिसिउ = ... – ४६६,
परिसिव = स्पर्शकर– १६६,
परिहरउ = छोड़ा– १६७,
परिहरहि = दूर करते हैं– १६६,
परिहरि = परित्याग कर– ५०, १५८,
परिहसु = परिहास– १५६, ३६३,
३७४, ४०६,
परिहारि = मनोहारी– ४६५,
परीछा = परीक्षा– १८७,
परीति = प्रीति– ४८३,
परु = ... – ४२६,
परुतमु = किंतु उसे– ४७३,
परोहणु = जहाज– १८६, ... आदि
परंपरु = परम्परा– ३६६,
पलइ = प्रलय– ४७०,
पलाइ = भागना– २३०,
पलाणी = पलायन– १२१,
पलाणु = भागना– ४५३,
पलारि = पलाना (भागना)– ३८६,
पलाव = प्रलाप– १५५,
पलावे = ,, – २०७,
पवणु = पवन– १६२,
पवाणु = प्रमाण– ४५१,
पवाली = ... – १६८,
पवाहु = ... – ५००,
पवाहु = प्रवाह– १,
पसण्णु = प्रसन्न– ५०६,
पसाउ = प्रसाद, कृपा– ४८६,
पसाउ = पुरस्कार में– १६, ... आदि
पसारउ = प्रसार करता हूँ– २२,
पसारि = फैलाकर– १००, १८६,
४६०,
पसंगि = प्रसंग– २८०,
पसंसु = प्रशंसा– ५०,
पहर = – २६६,
पहरणु = कपड़े– २१८,
पहरियउ = पहनना– २१८,
पहरु = पहर– २१७, २०१, २५६,
पहाणु = पत्थर, प्रशंसा– २६२,
पहारहि = प्रहार– ३५८,
पहाँ = पास– १३२,
पहि = पै– ३१६,
पहियहं = पथिक– ३३,
पहिया = पथिक– ३३,
पहिरइ = पहिने हुये– ६६, २०३,
२११, २१२, २२३, २२४, २२५
पहिरउ = पहरा– २०५, २२६, ३००,
३०६,
पहिरि = पहिन कर– ११२,
पहिलइ = – ५४४,
पहिलउ = पहला– ३००,
पहिले = – ४३४,
पहु = प्रभु, पर– ६, १५४, २२५,

पहुंतइ = पहुंचना– ३४०,
पाइ = पैरों को– १०, १६,……आदि
पाइक = पैदल– ४५२,
पाइयइ = प्राप्त करना– १४३,
पाइयउ = पालन किया– २५४,
पाइलागि = पैरों पड़कर– १७५,
पाइसइ = …………… – ४२६,
पाई = ……… .. २८६,
पाउ=पाये जाते हैं,– २१, ६१, २३१,
पाप– ४३८,………आदि,
पाकउई = ………… – ४३४,
पाछइ = पीछे– २६४, ३०५,……आदि
पाट = सूती वस्त्र– १०३, २८१,
पाटण = नगर– ३४, १६०, १६७,
पाटणु = पाटन, नगर– ३२८,
पाटलइ = रेशमी वस्त्र लेकर– १८५,
पाठउ = ……… – ५४५,
पाठयउ = भेजा है– ५२६,
पाडल = पाटल– २६, १७४,
पाण = पान, हाथ– ६१,
पाण = चांडाल– ३२२,
(श्वपच)– ३२४,
पाणिउ = पानी– १६४, ३६७,
पाणिउ सोखणी = पानी सोखने वाली – २८६,
पाणु = प्राण– २३३, ३२२, ३२५,
पातकी = पापी– १४०,
पान = पानी,– ३२४,
ताम्बूल– ५०२,
पाप = – २४०, ४३४, ४६६
पापिणी = ………– २२०, ३११,
पापी = (पाप करने वाला) सागरदत्त २४०, २५५, ४४८,
पापीया = – १४३, २४६,
पामरि = नीच– ३१,
पाय = पैर– २२, २५५,………आदि
पायालगामिणी = पातालगामिनी– २८७,
पार = सीमा– १६४,
पारधी = शिकारी– ४६,
पाराणु = प्राण– २५४,
पालइ = पालना– ४२,
पालक = पालने वाले– ४४,
पलंग– २६६,
पालखि = पालना– ४३, ५०५,
पालहु = – ५११,
पालि = – ५३८, ५८७,
पालिउ = पालन किया– २८,
पालेइ = पालन करना– १५८,
पालंक = पलंग– २२१,
पावउ = पाना– ४१८,
पावइ = पाते हैं– ५१०,
पावै = – ७२,
पाषाण = पत्थर– ३३२,
पास = निकट– ४८, १३४, ३७०,
पासणाह = पार्श्वनाथ– ८,
पासि = – १३५, ३५१, ३६३,
पासु = पास– ३०६, ३१०, ३३६, ४५६, ४८५,
पाहुड़ = उपहार– ४६४,
पाहण = पत्थर– ३१३,
पाहणमय = पाषाणमय– ७८,
पाहणु = पत्थर– ३१३,
पाहि = पैरों पर,– ४५२,

पास– ४३७,
पाहुड़ = उपहार– ४६७,
पाहुणइ = पाहुना– २२३,
पिउ = पति– ४००, ... आदि
पिउ–२ = प्रिया–२ – १५५,
पिछोलड़ो = पीछे– २३५,
पिणु = फिर– २२८, २६७,
पिला = – १४८,......आदि
पिय = प्रिये– ३८, १५४, १५६, १५८,...... आदि
पिय सुन्दरी = प्रिय सुन्दरी– २७८,
पिरथी = पृथ्वी– ३५६, ४०३,
पिरथी राइ = पृथ्वी पति– ४०२,
पिलिवि = धकेल कर,– ४०३,
पिवहि = पीना– १४१,
पिहिय = पिहित (ढ़का हुआ)– ३६,
पिंडखजूरु = – १७१,
पिंडथु = पिंडस्थ– ५२२,
पिंडरी = पिण्डली– ६२,
पीठ = कमर– ६८,
पीठि = पीठ– ३७७,
पीइ = – ४६८,
पीडे = – ४६३,
पीड़ि = पीड़ा– ४६,
पीता = ... – १८५,
पीणत्थणि = उन्नतपीन– ६४,
पीपी = पापी– ३६४,
पीपली = ... – १७२,
पीय = ... – ४४६,
पुछ्रण = ... – ४६१,
पुज्ज = पूजा कर– ५५,
पुज्जइ = पूजा करना– ४५,
पुठि = पृष्ठ– १५,
पुण = फिर– ४८, ४४८,
पुणि = फिर– २२६, २५५,......आदि
पुणिक = फिर – १५३
पुणु = पुनि – १, २४,......आदि
पुणं –
पुणु पुणु = बार बार – २८, ४०१,
पुण्वि = – १५४
पुण्णेण = पुण्य से – २५६
पुण्ण = पुण्य, पुण्य – १२५, ५३३
पुण्ण फलु = पुण्यफल – २५६
पुण्यवंत = – ३६२
पुतली = – ८२
पुत = पुत्र – २
पुतह = पुत्र – ४८
पुत्तार = पुतली – ९०
पुत्ति = पुत्र – २२२
पुत्तिह = पुत्री – ३५६
पुत्तु = पुत्र – ५५, १८०,...... आदि
पुनि तो = फिर तो – १२४
पुन्न = पुण्य – ५०६
पुन्नवंत = – ५५२
पुर = – १५२, १६३
पुरउ = पुत्री – १६७
पुरए = पूरे करना – ४१४
पुरखंड = – २६०
पुरवहि = पूरते हैं – १३६
पुराणि = – ५४८
पुराणु = – २, २०, ५५० आदि
पुरि = – ५२७
पुरिस = पुरुष – १३८

पुरी = नगरी – ८७, ...आदि
पुरु = पुर, नगर – ३६०, ५३०
पुव = – ५३४
पुप्फ = फूल – १६८,
पुप्फयंतु = पुष्पदन्त – ४,
पुहम = – ४२२,
पुहमि = पृथ्वी – ४५,
पुहमिहि = पृथ्वी पर – ५१०,
पुहिमु = पृथ्वी – ४२१,
पूछ = पूँछ – २२८, ३५५, ३६६,
पूछइ = पूछना – ११०, ११४,
११६, १४७, ४२२,......आदि,
पूछउ = पूछना – ३३६, ३७१, ३६६,
......आदि,
पूछण = – ३६६,
पूछहि = – ३२६, ३६०,
पूछियइ = – २१३,
पूछित = पूछने पर – २१३.
पूछियल = पूछा – ३२०,
पूज = पूजा – ६२, १६८, १८६,
पूजण = पूजन – २६७,
पूजि = – ५३१,
पूजिउ = ...– ५३०,
पूजिजइ = पूजा की – ५५,
पूजित = – ५३०,
पूत = पुत्र – ६१, ६७,......आदि,
पूतलिय = पूतला – ३६२,
पूतली = स्त्री – ८०,
पूतह = पुत्र – ४६,
पूतु = पुत्र – २६, ४७,...... आदि,
पूय = पूजा – ५४,
पूरविणी = पूर्व की – २७०,
पूरहया = – १२६,
पूरिउ = पूरे – ६०,
पूर्ण = पूर्ण – ४४३,
पूर्वं = ... – ४३०,
पूय = पिता – १४२,
पेखन = – १५५,
पेखि = देखना – २२, १७८, २२२,
२२३,
पेखियइ = देखी जाती थी – ३५,
पेट = ... – २३५, ३२४,
पेटहि = पेट में – ....
पेटु = पेट – ३७७,
पेठियऊ = भेजना – ४२१,
पेरियउ = पार करना – ३६८,
पेलि = पेल कर
पेसियउ = प्रवेश करना – २२२,
पोटली = ... – २४०, २४१
२४२, २४३,
पोटी = उदरपेशी – ६४,
पोला = पोला – २७८,
पोमिणिवइ = पद्मावती – १२,
पोरषु = पौरुष – ३६७,
पौरुष = पुरुषार्थ – ३६२, ३६८,
पंच = पांच प्रकार – १२०,......आदि,
पंचऊलीया = पंचोलिया – २६,
पंचकाय = पंचास्तिकाय – ५२०,
पंचदस = पन्द्रह – ६३, १५०,
पंचपय = पंचपरमेष्ठि – २५१,
पंचपरमेठि = पंचपरमेष्ठि – १८६,
पंचम = ५, – २६,
पंचमगइ = पञ्चमगति (मोक्ष) – २५२,
पंचमहव्वय = पंचमहाव्रत – ५३८,

पंचमि = पंचामृताभिषेक – १५२,
पंचानुब्बइ = पंचाणुव्रत – ५१,
पंचुंबर = पांच उदम्बर – ५१८,
पंथ = मार्ग – ३३, ४६०,
पंथि = पथिक = १६४,
पंडिम = पण्डित – ४३६,
परोहण = जहाज

फ

फरहराइ = फहराना – ३७२,
फरी = लकड़ी..............
फल = ... – ५३, १७५,
फलहू = फले – ५०६,
फली = – ५१४,
फलु = – ५१०,
फाटइ = फटना – ३८८,
फाटहि = फटना – ३१३,
फाडउ = – ४७७,
फिरइ = फिरने लगी – ६६, १३६,
१४०,.....आदि,
फिरत = – ८५,
फिरि = फिर – २२८, २६२,
फिरिउ = ... – ३०,.....आदि,
फीटउ = नष्ट होना, – ४०३,
फुक्कारंतउ = फुंकारना – २२८,
फुड = स्पष्ट – ८५,.....आदि,
फुडउ = स्फुट – ३६३,
फुड़ी = स्पष्ट – ३८५,
फुडु = स्पष्ट – ४३७, ४७०,
फुणि = फिर – १४६,.....आदि,
फुनि = ... – २३८,
फुरइ = स्फुरित होना – २६, ४८४,
फुल्लै = फूल, पुष्प – ५३,
फूटे = नष्ट होना – ४८१,
फूल = पुष्प – २०६,.........आदि,
फूलह = – १५३,
फूलहि = – १६६,
फूली = ... – ५१४,
फेरिउ = फिराया – ३५६,
फेरियउ = घुमाना – २२८,
फोड़ि = फाड़कर, चीर कर – ३६८,
फोफल = सुपारी – ६१, १६७,
फोफिली = सुपारी – १७१,
फोंकरइ = फुंकारना – २६६,

ब

बइ = ... – ४७८,
बइठे = बैठे – ४०९,
बखाणु = वर्णन – २०,
बणिज = व्यापार – १७०,
बत्तीस = ३२ – ५९, ४५१,
बत्तीसह = – ४२८,
बधाऊ = बाधाया – ६०,
बरात = ... – १२४,
बरातु = बरात – १२०,
बरी = लगाया – १२१,
बलबीर = शक्तिवान् – ५,
बलवीरु = बलवान् – २२७,
बलहू = बल – ३७०,
बसहि = रहना –
बसंतपुरि = बसंतपुर – २५६,
बहुत = – २०८,
बहुत्तरु = ७२ – ६५,
बहु = – २३४,

बहुतें = बहुत प्रकार से — ११३, १६०,
बहुतक = बहुतेरा — १७४,
बहुतु = बहुत — १६४,
बहुले = ········ — ४८८,
बहूँ = — ४५५,
बहुत = बहुत — १६२,
ब्रह्मा = — १०७,
बाढ़इ = बढ़ा — ६२,
बात = — ११७, १३२, ······आदि
बाधइ = — ४७६,
बाप = पिता — २४२, ३८८,
बार = देर, समय — ११४, १२४,
बार-बार = — ७०, ३२५,
बारह = ······ ··· — ४१६, ५२२,
बाल = मंजरी — १७०, २३२,
बालकहु = बालक — १८४,
बावराउ = बौना — ३२५,
बांधि = बांधकर — २८०,
बाह = भुजा — ४५६,
बिज्जाहरु = विद्याधर — ३४२,
बिलखाहि = बिलखना — ५६,
बिंबु = प्रतिमा — ५४,
बीसा = बीस — २००,
बुधि = बुद्धि — २१, २७, ······ आदि
बुरी = — २०६, ६११,
बुलाइ = बुलाना — १०४, १०६, आदि
बुलाये = ··········· — ६६,
बुलालउ = बुलाना — ३३७,
बुलावहु = बुलाना — ४२०,
बूड़ = डूबना — ८८,
बूडउ = डूबा हुआ — २६०,
बूडणहार = डूबने वाले — ६७,
बूढ़णी = बूढ़ा की — २१६,
बूढ़ी = बुढ्ढा — २०६,
बेधिउ = बेधना — ७६,
बेर = बोर — १७२,
बैठे = — १४१,
बोल = — १११, ······ आदि,
बोलइ = ········ — ५६, ·····आदि,
बोलबोल = — ३६४,
बोलि = बोलना — २३०,
बंगालि = बंगाली — २७०,
बंदिसइ = बंदना करना — ५०,
बंध = बांधकर — ४७०,

भ

भए = हुए — १०१, ३०६, ३८२,
········आदि,
भई = होगई — २३४, १६०, आदि,
भउ = हुआ — ६६, ········आदि,
भउभाउ = भेदभाव — २५०,
भउह = भौंहें — ६८,
भगति = भक्ति — ११७,
भड = भट, योद्धा — ३८८, ४६०,
··········· आदि
भड़राउ = योद्धा — ४६६,
भड्डाहु = भटराज — ३८६,
भंडारी = भंडारी — १३२,
भण = कहना — ५५, २५१,
भणी = कहलाना — ८६, २७१, आदि
भणेउ = कही — ९७२,
भणंताहि = कहते हुये — २२३,
भतार = भर्तार (स्वामी) — ४१४,
भत्तार = भर्तार (स्वामी) — ५५७,

भत्तु = भक्त = ६८,
भमइ = घूमना – ३२६,
भमत = भ्रमण करना – ८५,
भमिय = फैलना – ४५,
भमंतु = – २२६,
भय = डर – ३४६, ३५६,
भयऊ = हुआ – ६०, ………आदि,
भयो = हुआ १२३, ………आदि,
भरइ = भरा – २६८,
भरण = ………… – ४८१,
भरतार = स्वामी – १०४,
भरलइ = भरलिये – १८४,
भरह = भरत – ६४,
भरहखेत = भरत क्षेत्र – ३०,
भरहि ……… – १८६,
भरालि = भ्रांति – ५११,
भरि = भर – ६८, ………आदि,
भरिउ = भरा – ४०५,
भरिघालु = घाल भरकर – ८६४,
भरी = भरना – ८७, आदि,
भलउ = भला = २५३,
भलि = अच्छा – २०४,
भली = सुन्दर – ८५, आदि,
भल = ………… ४४१,
भली = सुन्दर – ३५५,
भव = जन्म – १६६, ३५५, आदि,
भवउ = – ५३६,
भवकूपि = भवकूप – ५२४,
भवण = भवन – ४१, आदि,
भवणु = जिन-मन्दिर – १५७, आदि,
भवमल = – ५२०,
भवियउ = भव्य – ३६२, ४३८,
भविय‌णड = भव्यजनों – ३५६,
भवियहु = भव्य – २५०, आदि,
भव्व = भव्य – ५०, ५२०,
भव्वु = भव्य – ५१२,
भाइ = भाव – २८, आदि,
भाउ = भाव – ६, आदि,
भाग = भागका – ५३२,
भाज = भागती – ३५६,
भाट = भाट – ३८०, ५०३,
भातु = भात – ४२४,
भादव = भाद्रपद – २६,
भामरि = भागी – ५३०,
भामादे = – २७१,
भारती = सरस्वती – १६,
भालु = भाल – ३४५,
भाव = विचार – ६६, ७५,
भावउ = – ४८४,
भावण = – ५२१,
भावती = अच्छी लगती है – १५,
२७६,
भाष = वचन – २२२,
भासहि = कहने लगे – १२६,
भासियहु = कहा हुआ – ५८,
भिक्खाहारी = भिक्षाहारी – ४०१,
भिक्खा = भिक्षा – ३७२,
भिडाइय = भेंट कराना – १५०,
भिडाइ = भिड़ जाना – २६८,
भिभणी = – ७८,
भिभलु = विह्वल – ३४५,
भीड़ि = – १२१,
भीतरि = अन्दर – ३६, ४६७, आदि
भुगति = भुक्ति – १६६,

भुजदंड = बाहु – ३५३,
भुजंगु = सर्प – २२४,
भुवणासास = प्रकाश – २३२,
भुतउ = – २२७
भुयगु = सर्प – २२७,
भुवण = भुवन, जगत – २२, आदि,
भुव बल = भुजाओं का बल – ९५,
भू = भूमि – ३४६,
भूल = भूला – ६२३, ५०२,
भुंजिउ = भोगना – ३७६,
भूपाल = राजा – ३२७,
भूलिवि = – ७८,
भूवणाहि = भुवन – ३५०,
भूसिल = भूषित – ४११,
भेउ = भेद – ५२, ······ आदि,
भेजंत = – ४५७,
भेट = भेंट – ३२४,
भेटणा = भेंट – २९३,
भेटणि = भेंट के लिये – ४६४,
भेडक = भीरु – २५३,
भेय = भेद – २८८, आदि,
भोग = – १२७, आदि,
भोगमति = भोगमती – २७२,
भोगवइ = भोगता था – २०२,
भोग विलासिनि = भोगविलासिनी – २७४,
भोगहि = – ५०७,
भोगु = भोग – १६६,
भोजन = – ५०२,
भोय = – ५१२,
भोयणा = भोजन – ३७२,
भोलइ = भोला – २११,
भोलउ = भोला – ४०८,
भंग = विघ्न – ३४६,
भंजणु = भंजन, नष्ट – ३४६,
[illegible]
भंडारहं = भण्डार को – १३३,
भंडारिउ = भंडारी – १३३,
भमापाटण = – १९६,

म

म = नहीं – ३०३, ३०६, ···आदि,
मइ = मेरा – १६, ४१, ······ आदि,
मइगल = मद गलित – ४५१,
मइमेहा = मतिमेध – ५०६,
मइल = मलिन – १६८,
मउ = मद – ३६,
मउण = मौन – ३९७, ४९१,
मउणवउ = – ४९२,
मउरउण = मुकुट बिना – ३९,
मकार = 'म' से आरम्भ होने वाली चीजों के नाम, मक्कार (बदमाश) – ३६,
मखरु = – ३६,
मगधदेश = – ४५६,
मगर = – ३६७,
मगरमछ = – १९४,
मगहु = मगध – ३१,
मचकुंद = – १७३,
मच्छ = – १९५,
मछ = मच्छ – ३६७,
मछरु = मत्सर – ३६,
मछिंदु = मछंद – ३६,
मज्ज = मद्य – ५१८,

मज्झि = मध्य – ३०, १५०, २५३, ... आदि,
मज्झु = मुझे – २८, ... आदि,
मझारि = में, मध्य, ८८, २२०,आदि,
मडउ = मुर्दा – २२५, ३६५,
मड्ढ = मुंडा हुआ – ३७२,
मण = मन – २६२, ... आदि,
मणमथ = मनमथ (कामदेव)–५४१,
मणवयकारण = मन, वचन और काय – २५७,
मणइं = मन में – २२१,
मणहि = – २४७,
मणि = मन – २५, ५०, ...आदि,
मणु = मन – ५४, ५८, ६४, आदि,
मणुअ = मन – १५५,
मणुसु = मनुष्य – २६४,
मत्त = मात्रा, मस्त – २०, २३,
मत्तइ = माता से – १४६,
मतलोगु = मृत्यु लोक – २७,
मति = – २४५,
मतिहीण = मतिहीन – १८८,
मती = – ४४०,
मतै = मतानुसार – १४८,
मथियउ = मथना – ३८४,
मन्दिर = जिनालय – ४२१,
मन = – २०६, ... आदि,
मनपुरी = मन को पूरा (संतोष) करने वाली – ३७८,
मन भावती = – ५०८,
मनि = मन में – २४०, ३८४,
मनु = मन – ६७, ६८, ७२, ७५, ... आदि,
मनोहरु = मनोहर – १०८,
मय = मद – ३४५,
मयण = मदन (कामदेव) – ६८,
मयणदीउ = मदनद्वीप – १६७,
ममणसुन्दरी = मदन सुन्दरी – २७३,
मयमतु = मदमस्त – ३४७,
मयरा = मदिरा – ३६,
मयसार = मद सहित – ६४,
मया = – ४३, ३१५,
मयंक = चन्द्र – २२१,
मरइ = मरना – २०३,
मरगजमणि = – ४४५,
मरजिवा = – १६२,
मरण = मृत्यु – ६, २६१, ३६५,
मरत = मरता – ३२३,
मरत्रिण = – ३६,
मरहि = मरना – १२८,
मराउ = मरजाऊं – १५६,
मराल = हंस – १५,
मरि = मरी – ३६, ४४६, ५३५, ५४६,
मरु = मरकर – ५३६,
मरुवउ = मरुआ – १७३,
मरुहटी = मराठी – २७०,
मरंवि = – ५३४,
मलणु = मर्दन – ३६,
मलहारि = – ५२४,
मल्लिणाहु = मल्लिनाथ – ७,
मलिणु = मालिन्य – ३६,
मसाणि = श्मसान – २२५, ३६५,
महु = मैं – ४२०,
महत्तणु = महत्त्वपूर्ण – ३६०,

महमहणु = मधुसूदन – १०७,
महरू = – १८१,
महंघी = अधिक मूल्य वाली – १७६,
महा = – ५२१,
महापुराणु = महापुराण – ६४,
महाबल = महाबलवान – ११८,
महामति = – १८३,
महामंत्र = – ४६२,
महावतु = महाव्रत – ३४५,
महावत्थु = महाव्रत – २४५,
महि = मध्य में – ७६, २४२,
……… आदि,
महि मंडल = पृथ्वी मंडल – ८६,
महियलि = पृथ्वी पर – २,
महिलइ = मध्य में – २६४,
महिष = भैंसे – १८६,
महु = मेरी – ११, १६, २० …आदि
महोछउ = महोत्सव – ५७,
महोवहि = महोदधि – २५६,
महावेगु = महावेग – २६१,
महंत = – ४५७,
महंतु = बड़ा – ४०६, ५१३.
मृग = हिरन – ३७६,
म्हारउ = मेरा – ४६७,
म्हारिय = मेरी – १५०,
म्हारी = मेरी – २४६,
माइ = माता – १६, २७, २८, आदि
माईयइ = समा जाना – ६२,
माखइ = – ४८५,
मांग = – ६८,
मांगइ = मांगता है – ४६६,
मांगइं = – ४७५,

मांगि = मांगे – ३३०, आदि,
माझ = मध्य – २३३,
माझिझ = मध्य में – १५३,
माटी = मिट्टी – ३४७,
माठी = सुडौल – ६६,
माडियउ = तैयारी करना – ४८०,
मागे = मांगे – २३, ३२७,
माणसु = मनुष्य – २११, २२७,
माणिक = रत्न – ४१, १३५,
माणिवि = माणाकर – ५३४,
माणु = मान – ३६,
माणुसि = मानवी – ३३३,
माणुसु = मनुष्य – २२१,
माता = माँ – २७, २८, ३८६,
माति = सीमा – ५११,
माथे = मस्तक पर – १६२,
मानइ = मानकर – २६१,
मानहि = मानते थे – ४६१, ५०४,
माय = माता – २६३, ३८६,
माया = – ५३६,
मायाइ = माया – ३६,
मारइ = मारना –
मारउ = मारूंगा – २२८, २३०, २६५
मारण = मारना – ४४,
मारणु = घात – ३६, २६४,
मारि = घात – ७१, १००, आदि,
मारिउ = मारना – २२३,
मारु = मारो – २६३, ४५७,
मारुवेग = वायुवेग – २६१,
मारोगा = – २७४,
माल = माना – २१८, २४१, ३७४,
मालती = – १७३,

मालिए = मालिन – २१३, ३६५,
मालिरिए =   – २०५, २०६,
मालिरिएस्यों = मालन से – २१५,
मालिन =   – २०६,
माली = एक जाति – ४३,
माल्हती = लीला पूर्वक – १०१,
मास = महीने – २७, ५६, आदि,
माह = में – ३१२,
माहि = मे – ३४०, ३८०, '' आदि,
माहिलउ = मारना होगा ………,
माही =   – ३२८,
मांगउ = मांगता – ३६३,
मांगियउ = ………… – ४६२,
मांझि = मध्यभाग – १५३,
मांहे =   – ४१२,
म्हारौ = हमारा – ४०१,
मिच्छती = मिथ्यात्व – ५४६,
मिट्ठावहि =   – ४६८,
मिठिया = मधुर – ३२१,
मिभि =   – १५६,
मित्र = मित – ४०२,
मियरणयरिए = मृग नयनी – ६७,
मिलइ = मिलना – ३२५, ३५१,
मिलवहि = मिलाना – ४०७,
मिलवहु = मिलकर – ३६२,
मिलहि = ………… – १८१,
मिलि = मिलकर – १२२, आदि,
मिलिउ =   – १२३,
मिलिए =   – १८७,
मिलिय = मिल गये – ४६२,
मिलियउ =   – ४८८,
मिली =   – २८६, २८६,
मिले =   – १५०,
मीच = मौत – २१४, ……आदि,
मीचु = मृत्यु – ४२, ५१६,
मीठु = मीठे – ४२४,
मीणु = मीन (मछली) – ३६,
मुकउ = मरा हुआ – २११,
मुक्के = मुक्त – ६,
मुख =   – ४३६,
मुखी = मुखवाली – १५७,
मुठि = मुट्ठी – ६८, ७१,
मुणइ =   – ४४१,
मुणउ = जानो – २६६, ५५२,
मुणसु = मनुष्य – २६५,
मुणसाइ = मनुष्यता – २६४,
मुणहु =   – ५१७, ५४८,
मुणाइ = मरने पर – २५३,
मुणि = जानना – ६४, ५३०,
मुणिउन = नहीं जानता – १६४,
मुणिवरु = मुनिवर – ५५, ५७, आदि,
मुणिसरु =   – ४४५,
मुणिसुव्वइ = मुनिसुव्रत – ७,
मुणिहं = मुनिवर – ६२,
मुणिद =   – ५२०, ५२३,
मुणीसरु = मुनीश्वर – ५३१, ५३७,
मुक्तादेवी =   – २७७,
मुक्ताहल = मुक्ताफल – १३५, ४४२,
मुक्ति = मोक्ष – ५१, …… आदि,
मुदिगर = मुद्‌गर – १६१,
मुद्द = मोह – २२१,
मुनि =   – ५६, ५१४,
मुनिउ =   – ४६४,
मुनिनाहु = मुनिनाथ – २८२,

मुनिवर = – ५५,
मुवउ = मरना – १४१,
मुसण = – ३६,
मुसि = चुराना – ३११,
मुह = मुख – १४, १७८, आदि,
मुहइ = मुह – २५६,
मुहमुडलु = मुखमंडल – ६७,
मुह मुहते = मुख में – २२६,
मुहि = मुझे – २०५, ……आदि,
मुहु = – २३८, आदि,
मुंडइ = मुंडी – २२७,
मुंदडिय = अंगूठी – ६१,
मूकी = छोड़ी – ३१२, …… आदि,
मूठिहिं = मुट्ठी में – ६२, ३५८,
मूंड = शिर – ४१८,
मूंडिउ = शिर – ३७२,
मूंडी = मूंडना – ३२३,
मुरुखि = मूर्ख – २१६,
मूढ = मूर्ख – ३६,
मूंदडी = मुद्रिका – २८६,
मूलु = मूल (जड़) – १५२,
मेदणि = मेदिनी (पृथ्वी) – २६६,
मेखला = वनवली – ३७५,
मेर = मेरे – २०४,
मेरइ = मेरा – ३३२, …… आदि,
मेरु = – २९६.
मेरे = – ४०८, ५०१,
मेलउ = – ३४२, ४३८,
मेलि = मेल – ३६६,
मेहु = मेघ (बादल) – २६३,
मोकडी = मोगरी – ३७८,
मोक्खह = मोक्ष – ६,
मोखली = – २७८,
मोखह = मोक्ष – ५४६,
मोटउ = मोटा – ३५७,
मोडति = मोड़ना – २२४,
मोड़ी = मोड़कर – २४५,
मोतिम्ह = मोतियों के – ६०,
मोतिय = मोतियों के – ६८,
मोती = – ४१, ……आदि,
मोल = मूल्य – २०१, …… आदि,
मोलि = – १३५,
मोल्लिवि = – ४०३,
मोल्लु = बहुमूल्य – १८७,
मो समु = मेरे समान – १२७,
मो सउ = मुझ से – ५७,
मोस्यो = – २४५,
मोष = – ४६५,
मोह = – ३६,
मोहउ = मोहित – ३३६,
मोहणिय = मोहिनी – २७६,
मोहणी = मोहनी – २८७,
मोहमल्ल = मोहरूपी योद्धा – ५३६,
मोहि = मुझे – ……… आदि,
मोहिउ = मोहना – २२३, ३६२,
मोहियइ = – ४२८,
मोही = मेरे – १७५, …… आदि,
मोहु = – २३७, ५२६,
मगल = – १३,
मगलु = – ३६,
मगाली = – २७०,
मंझारि = में – २८४,
मंडणु = – ४७३,
मंडिय = मंडित – २६५, ३०६,

मंत = मंत्रणा – २४८, आदि,
मंति = मंत्री – २०५,
मंतिहि = मंत्रियों – ३६६, आदि,
मंदर = महल – ३६,
मंदार = – १७४,
मंदिर = आवास, महल – ८६,
मंदोदरि = मंदोदरी – २७५,
मंस = मांस – ३९,
मंसु = मांस – ५१८,
मंत्र = मंत्रणा – ३६४,
मंत्री = मंत्री (सचिव) – २०३, ३६४, ४६३,

य

यह = यहां – ४३२, ……… आदि,
यह रही = हरी होना – १६४,
यहि = – १३९,
यों = इस प्रकार – १७,

र

रई = रची – १६८, ………आदि,
रउद = रौद्र – ५२२
रखहि = – ४६२,
रचउ = रचना करना – १६,
रचीय = – १२५,
रचे = – ४५७,
रजउ = – १८१,
रडइ = रुदन – १५५,
रडियइ = रोने लगी – १५४,
रणि = युद्ध में – ५३९,
रणु = – ४८०,
रतन = – १३५,
रतिपति = कामदेव – ५४३,
रथनुपुहि = रथनूपुर – २६७,
रमइ = रमने लगे – ७३, ७६,
रमायणु = रामायण – ६४,
रयउ = रचना करना – २५, ५५०,
रयण = रत्न – ४१, १३४, आदि,
रयणनु = रत्न को – २९८,
रयणहु = – ४९०,
रयणाइ = रत्नादि – ५२३,
रयण्णाहु = रत्नों को – २४१,
रयणि = रात्रि – ३०७,
रयणी = रत्न – २३६,
रयणु = रत्न – २६२ २७३, आदि,
रयवर = काम – ५३९,
रल्हु = 'कवि का नाम' – १५, आदि,
रविधाम = सूर्य के प्रकाश में – ३७६,
रस = – ७६,
रसण = रसना – २८८,
रसु = रस – २८८,
रख्या = रक्षा – ११,
रहइ = – १५१, १५८, आदि,
रहणु = रहना – २५४,
रहस = सुख – १६५,
रहहि = रहना – २८८,
रहावइ = सान्त्वना – ३१६,
रहि = – ४६१,
रहि = वरसा – २७, ………आदि,
रहिय = रहना – २५८, ……आदि,
रहा = रहना – ३३१, …… आदि,
रहु रहु = चुप रहो –२१५, २३०, २६६
रहे = रहना – १७०, ३४८, आदि,
राउ = राजा – १६२, ………आदि,

राइचंपउ = रायचंपा – १७३,
राइण = राजा – २१०,
राइसिंहि = राजसिंह कवि – २००,
राइसिंहु = राजसिंह (रल्हू कवि)–८,
राइसीह = राजसिंह – ४३६,
राइसुन्दरि = राजसुन्दरी – २२२,
राउ = राजा – ४, ········ आदि,
राउमति = बुद्धिमान राजा – ४९३,
राख = रखी – ४६०,
राखहिं = रखता है – १४०,
राखहु = रक्षा करो – ४५६,
राखि = छोड़कर – २६२,
राज = राज्य – १२७, ४१३,
राजथाणु = राजा का स्थान – ४०,
राजनु = – ४६५, ४६६,
राजभोग = – ५११,
राजा = नृपति – ४०, ४१,...आदि
राजासइं = राजा स्वयं – ३५१,
राजु = राज – ३२,......आदि
राणि = रानी – २६८......आदि
राणी = रानी – २०२......आदि
रातहिं = रात्रि को – ५०२,
राति = रात्रि – २१०, २९९, ३००,
रामा = – २७८,
राय = राजा – २२३......आदि
रायणु = राजन् – २३८,
रायरहु = राजा – ४८०,
रायसिउ = राजसिंह – २६८,
रायसिंह = ,, – ५४७,
रायसोय = राजा अशोक – २६५,
रायस्यौ = राजा से – २१६,
रालि = डालना – २४१......आदि

रावत = राजा – ४५२,
रावलि = राजा – ४२२,
रासि = समूह – ७, ८३, ११९,
राहणु = – ५२४,
राहाइ = रहा – ३४०,
राहु = – १३,
रिसउ = – ५२७,
रिसहाइ = वृषभादि – १,
रिसहु = वृषभनाथ – १,
रिसि = ऋषि, मुनिवर – ५८, ६२,
रिसीस = ऋषियों के ईश – ३,
री = अरी – २०७,
रीती = – ४४२,
रुउ = रूप – ५३८,
रुदन = – २०८
रुचित = धारण किया – १५४,
रूप = सौन्दर्य – ८४, ·········आदि,
रूपआ = रूप में – ८३,
रूप निवासु = रूप का निवास – ४१,
रूपरासि = रूपराशि – ६०,
रूपसुन्दरी = – २७३,
रूपहिं = रूपकी – ८३,
रूपारे = – २७१,
रूपिणि = – ४२९
रूपु = रूप – १००, १०४,
रूलइ = हिलना – ६८,
रूव = रूप – ४६, ६०......आदि
रूवउ = सुन्दर – १६६......आदि
रूवड़ी = रूपवती – १११, ११७,
रूव मुरारि = रूप मुरारि – २७१,
रूवह = रूपवान – ४०१,
रूवहिं = रूप की – ११६,

रूसि = क्रोधित – ३०६,
रेख = रेखा – २७१, ४७२,
रेवती = रानी का नाम – २७५,
रेह = रेखा – ६४......आदि
रोपि = रोपकर – ११५,
रोपिउ = खड़ा किया – ११२,
रोपियउ = – ४४३,
रोय = – ३००,
रोल = रोला (शोर) – ४५५,
रोवइ = रोती है – १५४......आदि
रोवहि = „ – २१५......आदि
रोवंती = – १२२,
रोसु = रोष – २१,
रोहिणि = रोहिणी – १०,
रोहिणी कंतु = रोहिणी देवी के पति,
चन्द्रमा – १२
रंग = – ९३,
रंजणु = रंजायमान – ४५,
रंजावहि = रिझाने – ३३५, ४०१,
रंजि = रंजायमान (प्रसन्न) – २१,
रंभ = रंभा – ३७६,
रंभादे = – २७२

ल

लइ = लिया – ७६, ८०..... आदि
लइकर = लेकर – २१२,
लइजाइ = लेजाना – १७५,
लइरु = लेकर – ४१६,
लए = लेना – ४०७, ४५१, ४६१,
लक्खण = लक्षण – २०,
लक्षण = चिह्न – ५६, ८१, ४२८,
लखण = लक्षण – ४२३,
लखु = लक्ष – २२,
लगण = लगन – ३५६,
लगु = लगना – ६७, ४५९,
लगुण = लग्न – ११७, १२४,
लगनु = मुहूर्त – ११२,
लगि = लगी – ५४७,
लगिउ = – ४६६,
लच्छि = लक्ष्मी – १३६, ...आदि,
लच्छी = लक्ष्मी – ५३८, ...आदि,
लजालु = लज्जाशील – ६९,
लज्जविणु = विना लज्जा के – ३८,
लड्डि = – ३५४,
लइउ = प्राप्त किया – २५६,
लयउ = लेकर – ५३, ६४, आदि,
लये = लिये – ४५१,
लयो = लिये – १३७, आदि,
ललाट = भाल – ९८,
ललित = पली हुई – ३०६,
लवइ = कहना – ४७६,
लवणिउ = नवनीत – ५१८,
लवणोवहि = लवणोदधि – ३०,
लवंग = लौंग – १७१,
लहइ = प्राप्त करना – २६४, आदि,
लहय = लेकर – ५३,
लहर = – २४७,
लहरि = – १९४,
लहिउ = प्राप्त किया – ५०७,
लहिय = प्राप्त करना – ५२६,
लाइ = लाकर – ८, ३९६, ४०२,
लावइ = – ३००,
लाकडी = लकड़ी – ३७७,
लाख = लक्ष – ७२, ८२, आदि,

लाखु = पं० लाखु – ५५०,
लागइ = – १४८,
लागउ = लगता हूँ – १०, ५१६,
लागि = स्पर्श कर – २४२, २५५,
लागी = – ११४, २४६, ३१७,
लागु = लगा – २३२,
लागे = लगे – ३६६,
लाग्यो = – २२७, आदि,
लाड़ि = लाड़ी – २७०,
लाणी = – ४४२,
लापड़ = लंपट – ४७७,
लापसी = ········ – ४१२,
लयइइ = लगाना – १४३,
लाव = – ७५,
लावळ = लाओ – ४७४,
लावण्य = सुन्दर – ७८,
लावल = – ३५५,
लावहिं = लाना – ३०६,
लावैं = लगाऊँ – ७२,
लिउ = लिया – २५२,
लिखइ = – १४६,
लिखत = लिखते हुये – ६५,
लिखतहू = लिखते ही – १०४,
लिखी = लिखी हुई – ११७,
लिय = लिया – ४७२,
लिलाडेहि = ललाट पर – ७७,
लिलार = ललाट – २६०,
लिहाइ = लिखाकर – ११२,
लिमु = – ५४७,
लीए = – १८५,
लीज = लेना – ४८, ३२४,
लीणु = लीन – ४७०,

लींय = लेकर – ३३१,
लीलारग = भोग-विलास – ········
लीलि = निगलना – १६५,
लीव = बालक – ६६,
लेइ = लेकर – ७६, १४७, ३७४, आदि
लेउ = – ४७०, ४७८,
लेख = – ११६,
लेखइ = समझना – ३४७,
लेखि = पत्र – १४६,
लेण = लेने को – १४६, ४२१,
लेत = लेना – ४११,
लेपसो = लेप से – ३३२,
लेहि = लेते हैं – ५४, १६२, आदि,
लेहु = – ८१, ४६६, आदि,
लोइ = लोग – ३२, आदि,
लोउ = लोग – १६६,
लोए = लोक – ४०३,
लोक = संसार, लोक – ८७,
लोकु = लोग – ३५६,
लोग = – २३५, ३११, आदि,
लोगु = लोग – ११६,
लोगुबागु = जन समुदाय – ३६६,
लोचन = लोचन – २८२,
लोटणी = – ४६८,
लोणु = नमक – १४०,
लोपहि = छिपाना – ३२२,
लोभिउ = लोभी – ३६६,
लोय = लोग – ४२, ३६६,
लोयण = लोचन – ४०१,
लोह टोपर = लोहे की टोपी – १६२,
लोह मार = लोहे की मारी – ······
लंक = कटि – ६२,

लंपट = लंपटी – ४०३,
लंपटह = लंपटी – १२८,
लंतिय = लिये – ६८,
लंब = – ४४६,

व

वइ = – ४८३, ५४६,
वइठ = बैठकर – १२२, ५४१,
वइठउ = बैठो – ४२३,
वइद = वैद्य – २७,
वइराइ = वैराग्य – ५१२,
वइरिउ = बैर – २२६,
वइल्ल = बैल – १८८,
वइसइ = – ४६०,
वइसरइ = बैठ गया – १२६,
वइसारहु = बैठाना – ४२०,
वइसारि = बैठाकर – ११०, ११६,
वइसि = बैठकर – ७७, २२३,
वउ = वपु (शरीर) – ६६,
वउलसिरी = – १७३,
वकार = 'व' से प्रारम्भ होने वाली–३७,
वच्छ = वत्स – १४४, ३६२,
वज्ज = वज्र – २८८,
वज्जग्गी = वज्राग्नी – २८८,
वज्जविउ = – ५२२, ५२४,
वज्र = इन्द्र का आयुध – ३१३, ३२८,
वज्रु = – ४७७,
वड = – ४७६,
वडइ = बड़ी – १४३,
वड्डण = गिरना – ५१२,
वडवानल = समुद्र की आग – ......
वडवार = बड़ी देर..................
वडुहि = बढ़ते थे – ४६१,
वड्डी = बहुत – २६६,
वढे = – ४६५,
वण = वन – ७७, ३१२, ३४७, ५३०,
वणजी = – ५३०,
वण्णं = – ४४०,
वण्णइ = वर्णन करना – १००,
वणउ = वर्णन करना – ४००,
वणजारे = व्यापारी – १८७,
वणमहि = वन में – ३२७,
वणवाल = वनपाल – ५१३,
वणसई = वनस्पति – ५१४,
वणिण = – ६५,
वण्णिणगउ = वर्णन – ४०, ६०,
वणिकु = महाजन – ३७,
वणिज = व्यापार – १७६,
वणिजह = वनज, व्यापार – ४१०, ४१५
वणिजारिन्ह = – २४८,
वणिजाए = व्यापारी – १८६, १६१,
वणियार = – ३७,
वणियर = व्यापारी – १७७, १६१,
वणिवरु = व्यापारी – १६६, ४७२,
वणिवार = वणिग् दल – २३६,
वणिंद = वणिकों में इन्द्र – २५४, (जिनदत्त)
वण्णी = – ४३३,
वण्णु = वर्ण – ६२,
वत = बात – ६८, २२१, ३६१
वत्ति = बात – ४६५,
वत्तीमह = – ४३२,
वत्तु = बात – २१३,
वत्थ = वस्तु = ३१,

वध = — १३१,
बधाउ = बधावा — ८०,
बधाऊ = बधाई — ८१,
बधाए = बधावे में — ६१, ५०३,
वप = वपु, (शरीर) — ९७,
वपु = शरीर — २३०,
वपुड़ा = बेचारा ([illegible]) — २६२,
वय = उम्र — ५१९,
वयण = वचन — १७, २१९, आदि,
वयणी = मुख वाली — २२०,
वयसारि = बैठाकर — ४६, ६८,
वर = सुन्दर — १४, ५३, आदि,
वरण = विवाह — १०९,
वरत = डोरी — ५४२,
वरष = वर्ष — ६३,
वरस = वर्ष — ८५, ३८६,
वरिसिणी = वर्षिणी — २८८,
वरसियउ = दिखाई देना — ३२६,
वरु = पति — ३७, २८२, २८३, आदि
वरुउ = — ३७,
वरुणु = वरुण — १२,
वरतइ = वरतने — ४१६,
वल = — ४४६,
वलथंभिणी = बल को रोकने वाली — २८६
वलद = बैल — १८६,
वलि = शोभित — २६०, ३५३,
वलिवंड = बलवान — ३६८,
वलियउ = व्रीड़ित, लज्जित — ७४,
वलुवलु = सेना — ४५१,
ववइ = बोदे — ४७६,
वस्त = वस्तु, चीज — ३२४,
वस्तु = — १७१,

वसइ = बसा हुआ — ४०, ४७, ६८,
वसणजी = व्यापार — ५२९,
वसण = सोने के लिये — २१२, २१६,
वसगु = — ४६२,
वसहि = वसना — ४२, २६७, आदि,
वसहु = — २२३,
वसिउ = सोने के लिये — २२३,
वसंतपुर = नगर का नाम — ३८, ३६,
वसंतु = — ४०,
वह = — २२७, २४४,
वहइ = चल रहा है — ३०,
वहत्तरि = ७२ — १५,
वहा = — १६८,
वहाइ = विदा करना — ३८३,
वहि = — ५३४,
वहिउ = चलाना — ४२५,
वहिणी = बहिन — ४२४,
वहिगयो = — ४३८,
वहिजाउ = नष्ट हो जाय — ४२७,
वहिजाउ = व्यथित — ८४,
वहु = बहुत — १५, ३७, ...आदि,
वहुक = बहुत — ३२०,
वहुलइ = बहुत — ४६२,
वहुलु = बहुत — ३११,
वहुफलु = अधिक फल — ८,
वहुरुपिणी = अनेक रूपों को बनाने वाली — २८६,
वहुल = बहुत — ३०२, ४४३, ५०४,
वहुलकु = — १४६,
वहुल वहुलु = बहुत २ — ४४०,
वहू = — ४८८,
वहूत = — १४३, १७८,

वहे = — ५००,
वहेड़ = १७२,
वहेड़े = — ४१६,
वहोडइ = हरी — ३६३,
वृष = वृक्ष — १६०,
वाइ = वावड़ी — ८७, १५६,
वाइणो = लाहना — ५३१,
वाईसइ = २२ — २६,
वाए = — १६६,
वाखर = पशु विशेष काठी — १२१, १८२, १८४, २०१
वाखरु = — १७६, १८६,
वाचि = — ११६,
वाजू = बाजा — २४८,
वाजणो = वाजे (वाद्य-यन्त्र) — ६१,
वाजहि = बजना — ३८०,
वाजेवि = बजने लगे — १२०,
वाट = मार्ग दर्शन — ४५४,
वाड़ा = — ४५८,
वाड़ी = वाटिका — २४, १६०, आदि,
वाढ़ = बढ़ई — २७, ६२,
वाणहि = — २२१,
वाणि = वाणी — १४, ४५, आदि,
वाणी = वाणी — १४,
वाणु = — ३७,
वामण = ब्राह्मण — ४४,
वात = बात — ११६, ३३०, आदि,
वाता = वार्त्ता — २२४, ४०२,
वातु = वार्त्ता — २०१, आदि,
वादि = — १८४,
वाधउ = — ४७४,
वाधे = — ४६५,

वापह = पिता — ५०७,
वापहि = पिता — ५०१,
वायु = [illegible] — १४७, आदि,
वामण = ब्राह्मण — ३२१,
वामणु = ब्राह्मण — ११५,
वाय = वायु — १२,
वार = बार, मार्ग, देरी — १४१, २६६
वारवार = बार २ — ३७३,
वारस = बारह (१२) — १६०,
वारह = बारह (१२) — ८५, आदि,
वारि = द्वार — १५७, आदि,
वारिठिया = — ३७,
वरिस = — ४३६,
वाउ = समय — २१७, ४४३,
वारुणु = — २२६,
वाल = — १०५, ४७६, ५१३,
वालउ = बाला, बालक — १७४, ४१५
वालम = स्वामी — ३०५,
वालही = वल्लभा — २७६,
वालहे = वल्लभ — ३०३,
वाला = — २७८,
वालि = बालकर — १५६,
वालिय = बाला — ३८२,
वाली = नवयुवती — ३४१, ३४३,
वावरा = बौना — ३०७, ३४३, आदि
वावणइ = बौना — ३४१,
वावलउ = पागल — ३२६, ३३२,
वावली = बावली — ३०६,
वास = — ४४३,
वासणु = पुरस्कार का वस्त्र — ३३१,
वासरि = दिन — ३४२,
वासव = इन्द्र — ३५,

वासीठ = बसीठ – ३७,

वासु = बांस – १६२,

वासुपुज्ज = वासुपूज्य – ५, १५२,

वासे = – १८१,

वाह = विमान – ३७, ३१०, ४०५,

वाहइ = डालती है – १००,

वाहरण = वाहन – २६६,

वाहरणु = ,, – ४३६, ४७८,

वाहरि = बाहर – ५०, ३५१,

वहहि = बहाना – ३६७,

वाहु = भुजाओं – ४७८,

वाहुडि = अश्व – ३१६, ३६७, आदि,

वांदिर = बंदर – ३७५,

वांवरणउ = बौना – ४००,

विऊअ = विमुक्त – १५८,

विकाल = – २२६,

विकेरण = विक्रय – २०१,

विक्कम = विकास – ४१६,

विगसइ = विकसित – १११,

विगसाहि = प्रसन्न हुए – १८२,

विचार = – १५७, २६०,

विचारि = – ८३,

विचि = मध्य, में – २६६,

विचित्तहु = विचित्र – २६८,

विचि-विचि = बीच-२ में – १३५,

विच्छरउ = विस्तार करें – १३,

विछूरनि = – ४३१,

विजउ = – १८१,

विजय मंदिर = महल का नाम – २२१

विजयादे = विजयादेवी – २०२,

विजाहरि = विद्याधरी – ८३, ११६,

विज्जउ = विद्याओं से – २६०,

विज्जनु = विद्याओं से – २६०,

विज्जा = विद्या – ६३, २८६, आदि,

विज्जागमसार = विद्या तथा आगम का सार – १५,

विज्जातारणी = विद्यातारणी – २८७ आदि

विज्जाहर = विद्याधर – १८२, २६७, ...आदि

विज्जाहरिय = विद्याधरी – २६८, ४३२,

विजोग = वियोग – ४०५

विडहु = – ३७,

विडे = विटप (वृक्ष) – १६८,

विढइ = बढ़ाकर – १३८, १३६,

विढवहि = वृद्धि – १३८, १४०,

विढंनी = कमाई हुई पूंजी – १३७,

विरण = बिना – ५०१, ५०२, आदि

विरणउ = विनय – २६७,

विरणवइ = विनय से – ३५६, ५३६,

विरणवहि = निवेदन करो – ५४३,

विण्ण = विमान – २६८,

विण्णि = दो – ४१५,

विरणी = वेणी – ६८,

विणु = बिना – ४८, १३१,......आदि

विता = बीत गये – १,

वित्त = धन – ५१२,

वित्थुरु = विस्तृत – ५४८,

वित्थरउ = फैंकना – २६५,

वित्थार = विस्तार – ......

विदेस – विदेश – ४८१,

विद्धंसइ = नष्ट करना – ३४६,

विनान = विज्ञान – २८०,

विनवो = विनती – ४१६,
विनु = बिना – ४३, ३१४, ३१५,
विनोद = रंजन – ६६, २८०, ३२८,
विघ्न = – ५५३,
विप्रिवि = निकलती है – ५०२,
विपरितु = विपरीत – ३२१,
विप्पहं = विघ्न – ११२,
विप्पु = ,, – १०५, ११२,
विप्पुरिउ = विस्फुरित – ३०,
विघ्न = – ४४१,
विभ्रम = भ्रम – २८०,
विभुषित = भूख रहित – ३२५,
विमल = विमलनाथ – ५, ११०, आदि
विमलमइ = विमलमति (ती) – १०१, १५४,
विमलमति = ,, – ११७,
विमलसेठ = विमलसेठ – ८६,
विमला = – ४५०,
विमलाणगु = – ५२७,
विमलामइ = विमलामती – ४४४,
विमलामति = ,, – १०६,
विमलामती = ,, – ३३८,
विमलासेठिणी = विमला नाम की सेठाणी – ८६,
विमलु = विमल – १२४, ३१६, आदि
विमलुमनि = विमलमती – ३२७,
विमाण = विमान – २६६, २६७,
वियखल = विचक्षण – ३४१,
वियसाइ = हँसकर – १६३, २०६,
वियसिउ = विकसित – ३६८,
वियसंतु = ,, – १५१, आदि,
वियाधि = व्याधि, बीमारी – २०३,
वियारि = विचार – ५२१, ५२३,
वियूर = पूरित – ३६,
वियोड़ = विवेक – ५४०,
वियोग = विरह – १७७,
विराउ = वैराग्य – ६४, ६८,
विरध = वृद्धि – ६३,
विरयउ = विरचित – ५५०,
विरलउ = बिरला – २१४,
विरली = – २१४,
विरसोरा = विजोग – ४१३,
विरह = वियोग – ४००, ……आदि,
विरहिणि = विरहिणी – ३१६,
विरुद्ध = विरोध में – ३५२,
विरुद्ध = विरुद्ध – ३५०,
विरूप = असुन्दर – ३२८, ४०३,
विलखवि = विलखना – ३०७,
विलखाइ = विलखते हुये – १२६, १३७, ………आदि,
विलखाणिउ = रोते हुये – २३६,
विलखियउ = – ४६८,
विलखीइ = रो-कर – २१०,
विलखो = बिलखना – २५७, ४१८,
विलवहु = व्यतीत करना – ३००,
विलसाइ = भोगने लगे …………
विलसहि = विलसना – ४१३,
विलसंत = भोगता है – २६६,
विलाइवी = – १२३,
विलाउलि = वेलाकुल………
विलाए = विलाना – ४०३,
विलावल = देश का नाम – १८६,
विलास = ,, …… – ५०२, ५०४,
विलासगइ = विलास गति – १०१,

बिलिखाइ = बिलखना – २१३,
विलंको = विश्राम किया – १६०,
विवेकु = सविस्तरण – १०८,
विवहुउ = विनिष्ट – २२३,
विवहारु = व्यवहार – ६७,
विवाणु = विमान – ४४७,
विवाणु = ,, – ३६६,
विवारी = – ३७,
विवाहु = – ११६, १२६,
विवाहुउ = विवाहना – ३६२,
विवाहंगु = विवाह के लिये – १२२,
विविहु = – ५३४,
विवुहु = विबुध – २२,
विवुहजण = विबुधजन – २१,
(विद्वज्जन)
विवेय = विवेक – ५४१, ५४३, ५४४,
विवोय = वियोग – १५८,
विशाल = पुत्र का नाम – २२२,
विषम = गहरा – २५४,
विषमु = ,, – २५६,
विषय = विषयों में – ६७, ७२,
विषयन – सुख (भौतिक) – ३०६,
विषयहु = विषय पर – ६६,
विषे = में – ३४,
विसउ = विश्व में – ५२७,
विसमाउ = विस्मय – ४८६,
विसमु = विषम (भयंकर) – २८६,
विसय = विषय – ६८,
विसहर = विषधर (सर्प) – ३६६,
विसहरु = सर्प – २२६, २२६,
विसामु = विश्राम – ४२३,
विसाहणु = खरीदने को – २०६,
विसाहि = खरीद कर – ३४,
विसीसु = विश्राम – ४६६,
विसूरिउ = – ४६४,
विसेषइ = विशेषता लिये – ८६,
विहडि = विघट – २६३,
विहप्पइ = बृहस्पति – १३,
विगयउ = विलगना – ४११,
विहलघन = विह्वलांग – १०६, ११८,
विहसणादे = – २७३,
विहसाउ = हंसकर – १६२, २१७, ३०१
विहसंत = ,, – २१५,
विहाण = प्रात-काल...............
विहार = जिन मन्दिर – ८७, आदि,
विहारइ = – ३७,
विहारहु = – ३७,
विहारहु = मंदिर में – ३९५,
विहारि = मंदिर – ३७, ...आदि,
विहारी = ,, – ३३८,
विहिलहिं = बहुत – ६१,
विहिवसेण = विधिवशात (भाग्यवश)
– २५६,
विहीणु = विहीन – ३६, ३७३,
विहु = कुछ – २५६,
विदु = जानना – २२,
विभई = – ४३१,
विभउ = विस्मय – १०२, २२१,
विभिउ = विस्मित – ८०,
वीकउ = – १८२,
वीचि = – १६६,
वीतराग = – ३५१,
वीती = व्यतीत – ३०७,
वीनती = प्रार्थना – २३७,

वीनगउ = विनती करना – ५४५,
वीपुमा = – ३०५,
वीयराउ = वीतराग – ५२,
वीयराग = ,, – २५,
वीर = बहादुर – ७५, ... आदि,
वीरणाहु = वीरनाथ (म० महावीर) – ८,
वीरमदे = – २७६,
वीरराइ = – १६१,
वीरु = वीर – ७२, ... आदि,
वीरन्ह = वीरों ने – ७७,
वीलह = – १८३,
वीलहे = – १८२,
वीस = बीस (२०) – ३६, ... आदि
वीसमइ = विस्मृत – २६२,
वीसरइ = भुलाना – ५०१,
वीह = वीथी – ३५३,
वुज्झि = ... – ५२१,
वुद्ध = बुध – १३,
वुरु = ... – ३७,
वुवा = ... – ४०८,
वुलाइ = – ३२०,
वुलाइय = बुलाना – ३६१,
वुसि = राजा – ४५२,
वुह = बुधमान – ३७, ४६,
वुहयण = बुधजन – ५५०,
वूचे = बूचे – २७८,
वूड़ = डूबना – १६५,
वूड़ि = ,, – २४७,
वूड़िउ = डूबा हुआ – ७२,
वूड़िवि = ,, – ३४१,
वूड तिहि = – ५२४,
वूडभो = – २४८,
वूढ़ि = बूढ़ा – २२२,
वेग = – २२८,
वेगहु = शीघ्र – २६८,
वेगि = ,, – १६६, १६७, २०७,
वेचियइ = बेचना – १४४,
वेटी = बेटी – ३८१,
वेठि = बैठना – ४६, ४७५,
वेठिउ = घेर लिया – ४५६,
वेतु = बाल – ३५८,
वेणानयरु = बेणा नगर – १६६,
वेणासए = ,, – १८४,
वेण्णि = दोनों – ११५,
वेभियउ = विह्वल – ७६,
वेर = – १७२,
वेल = – १७३,
वेलि = लता, – १५७,
बेला – १६८,
वेसा = वेश्या – ३७, ७०,
वैठिउ = – २२४,
वोधु = – ३२६,
वोल = – ३६४, ४७६,
वोलइ = बोले – ५८, १७८, २०१,
वोलण = बोलने – ३४३,
वोलम = – ४६६,
वोलहि = बोलना – ३६८,
वोलु = बात – ७३, ... आदि,
वोलि = कहना – ३७६,
वोलिइ = बोला – ३०६,
वोहणु = जहाज – १८४,
वोहु = बोध – ५३६,
वल्हइ = चाहना – ४२, ७४, ...

वंदण = वन्दना – ७७,
वंदणु = वन्दनार्थ – ५१५,
वंदन = वंदना – ५१६,
वंदरा = – ३७,
वंदहु = वंदना करके – १५९,
वंदि = ,, – २११, २६२,
वंदिणीजण = बन्दी जन – ८८,
वंधइ = बांधकर – ३२९, ४७८,
वंधण = बंधा हुआ – ३४४,
वंधणी = – २८९,
वंधि = बांधना – ३५९,
वंभण = ब्राह्मण – ३७,
वंभणु = ,, – ३३५,
वंबालु = जोर शोर से – १७५,
वंशविद्धि = वंश वृद्धि – ६७,
व्यवहरइ = व्यवहार – ३५,
व्याकरण = – ६४,
व्याधि = व्याधि – ४४८,
व्याहु = विवाह – ३२६,
व्योहार = व्यवहार – ३२,

श

शब्द = आवाज – १७५,
शरीर = देह – ११८,
शुक्लज्झाण = शुक्लध्यान – ५२२,
शुखु = सुख – ४१४,
शुद्ध = पवित्र – ५१४,
शुभ = ……………… – २८८,
शुहिणालु = फूल का नाम – ४६४,
श्रवण = श्रमण – ५०,
श्री रघुराइ = नाम – ३९५,
श्रीवसंतमाला = – २७१,

ष

षण-षण = क्षण २ – ३४४,
षोडसु = सोलह – २४,

स

स = सह – १५७, ३५८,
सइ = उनके, राजा – १, २८०, ३५०
सइहार = सहकार – १६६,
सउ = सौ – १९५, २००,
सउक्कु = उत्साह पूर्वक – ६०, १२५,
सउंघी = सखी – २०१,
सउरा = सब – ४०७,
सकइ = कर सकना = ३६२,
सक्कइ = – ५१६,
सकइ = सकना – १९८,
सकऊं = शंकर – १०७,
सकहि = सकना – ३९३,
सकहु = ,, – ७३,
सकार = 'स' से प्रारम्भ होने वाले –
सकुटंवउ = सकुटुम्ब – ३२,
सके = ………… – ४४०,
सखी = सहेली – १०२, २४५, २५६,
सग्ग = स्वर्ग – २१, ५२८,
सग्गमोक्ष = स्वर्गमोक्ष – ५११,
सगवर = श्रवक – ५०७,
सग्गहि = उपसर्ग – ४८७,
सगि = ……………… – ५४७,
सगुणु = शकुन – ५७, ४४१,
सगे = – ४०८,
सजण = सज्जन – १११;
सजि = सजना – २५१,
सहि = – ४४८,

सत = सतीत्व – २४७, ३०७, आदि,
सत्त तच्च = सप्त तत्व – ५२०,
सतभाउ = अच्छी तरह (सत्यभाव)– ८२............आदि
सतक्षर = सप्त अक्षर (णमो-अरिहंताणं) – २५३,
सत्तावन = ५७ – ५५२,
सतिभाउ = – ४३७,
सती = – २४७, २५०, आदि,
सतीण = सतृष्ण – ५०७,
सतूकार = सत्तू के भोजनालय – २३,
सत्थ = ... – ३८, ५५२,
सत्थवइ = ... – ३८,
सत्थहिं = साथ – १,
सत्थु = शास्त्र – ५५,
सत्थे = व्यापारी दल – २२२,
सद्दु = शब्द – १४,
सधर = धरा पर – १०६,
सधारु = – १८३,
सनमधु = सम्बन्ध – ३२६,
सनि = शनिश्चर – १३,
सनु = – ४६२,
सपडु = – ३४६,
सप्पु = सर्प – २२७,
सप्तभंग = स्याद्वाद के सात सिद्धांत – १४,
सफल = फल सहित – ३२,
सब = सर्व, सभी – ४२, ४४, आदि,
सबद = – ४४४,
सबही = – ४३,
सबु = सब – ४८, १२४ ......आदि,
सभा = बैठक – ३३४ ....आदि,
सभाउ = भाव सहित – १०, ११२,
सभामइ = सभा में – ३३०,
सभालि = स्मरण कर – २२५, २७५
समचित्त = शान्तचित्त – ४,
समभाइ = ... – १४५,
समत्थि = ... – ३४४,
समत्थु = समर्थ – ६ १६,
समद = समुद्र – २४१, २६३,
समदत = अशोक – २६६,
समदविजय = समुद्रविजय (भ० नेमिनाथ के पिता) – ८,
समदह = समधी – २१३,
समदहिं = – २२७,
समदी = ब्याही (वर पक्ष) – १२६,
समदुल = – ४५०,
समधौ = – ४५०,
समरि = लड़ाई में – ४७१,
समलहु = – ४३५,
सम्मणु = श्रमण, साधु – ३६१,
सम्हारि = संभालना – ३१७,
समाइ = समाना – ३६८, ३६९,
समाण = ,, – २३,
समाणहं = ,, – ३८,
समाणिय = समान उम्र की – ६०,
समाहि = समाधि – ५३०, ५३८,
समाहिगुप्त = समाधिगुप्त – ५१४,
समीठु = सुमधुर – ३२६,
समीप = पास, साथ – ३६४,
समु = समान – ४७, ७४, ४६७,
समुझावण = – ४८२,
समुद = – ३६३,
समुद्द = समुद्र – १६५, २५४, २६१,

समुद्दह = समुद्र – ३८६,
समुद्द = ,, – ५४५,
समूह = – ५३,
समेरणि = युद्ध करना – ४७०,
सय = – ५५२, ५५३,
सयण = सज्जन – २१, ४७,
सयल = सब – ४२, ४५, ५२, आदि,
सयं = – २१४,
सरणु = शरण – ५, २८,...... आदि,
सरणू = ,, – १५६,
सरवर = तालाब – ३८, १०२, १७४
सरुवर = ,, – ६०,
सरसती = – ४४०,
सरसुती = सरस्वती – १५, २६,
सरावगधम्म = श्रावक-धर्म – ४४,
सरि = – ३८,
सरिवि = – ५२५,
सरिस = समान – ६५,
सरीर = शरीर – १००, ... आदि,
सरीरह = ,, – २३, १०४,
सरीरु = ,, – ५, २०७, २८८,
सरूप = समान – १७२,
सरूपु = सरूपवान – ८८, ५२६,
सरंभ = समान – ३७६,
सलहहि = सराहना – ३०५, ५०३,
सलहियइ = – ४४०,
सल्लेहणु = – ५१६,
सलोकं = – ५५३,
सव = सब – ३६०, ... आदि,
सवइ = सभी, सम्पूर्ण – २४,
सवइण = ,, – ३१,
सवई = सर्व – ६२,

सवण = स्वर्ण – ३८, ३६६,
सवण्हु = सब के लिये – ४१,
सवद = शब्द – १२०,
सवमहि = सब में – १८८,
सवारथु = स्वार्थ – ३७६,
सवारि = ठीक – ७३,
सवासी = ब्राह्मणी – ३३२,
सवु = सब – ११५, १२२, ... आदि,
सर्थ = सबही – ३३४,
सठव = सब – ३६,
सव्वइ = सभी – २७६,
सव्वल = – ३८,
सव्वसिद्ध = सर्वसिद्धि – २८७,
सव्वहु = सब ही – ४०२,
सव्वु = सब – १४३, ... आदि,
सव्वोसही = सर्वौषधि – २८६,
सव्वंग = सर्वांग – ११८,
ससि = चन्द्रमा – २४, ६७,
ससिवयणि = शशिवदनी – ३०६,
सहइ = धारण करती है – १५, ६३, / सहन करना – १५८,
सहकार = आम्र – १७०,
सहजावली = – १६७,
सहगु = गयन – ४७३,
सहले = सकल, सभी – १६६,
सहस = हजार – १८६, ४५१,
सहसर = चन्द्र – २२१,
सहस्र = हजार – ४५१,
सहसु = ,, – ५५३,
सहहि = – ४५५,
सहाउ = स्वभाव – ४, ६६, ४७३, ५१४
सहारउ = सहारा – ३१५,

सहासहि = — २२६,
सहि = सहित — ३६, ...आदि,
सहिव = ,, — ४८८, ५४१,
सहिय = सखियाँ — ६०,
सहियण = — ३८,
सहियणहं = — ३८,
सही = सहन किया — ७१, २५३,
सहु = सब — ६६, ...आदि,
सहे = — ५०२,
स्वयंवर = — ५१,
स्वातिनखतु = स्वाति नक्षत्र — २६,
स्वामिनी = — १६,
स्वामी = — ४००,
सा = वह (स्त्री) — ८६, ८७, ...,
साइ = स्वामी — १५६,
साई = ,, — २०४,
सांकल = सांकल (अर्गला) — ३४५,
साखि = साक्षी — ३१४,
साखी = ,, — ३५०,
सागर = समुद्र — २५३, ३६४,
साचउ = — ४७६,
साचौ = सच — ३११,
साजि = सजाकर — १२१,
साजित = ,, — १२१,
साटिवि = बदलना — २०१,
साठि = ६० (षष्ठिः) — १६३,
साणंदे = आनन्दपूर्वक — १६,
सात = ७ — ५१५,
साथि = संग, पास — २५४,
साधरउ = धरा गाय — २३१,
सामली = अच्छी — १०१,
सामले = — ४२६,
सामहणि = सम्मुख — १७७,
सामि = स्वामी — २१४, २८२,
सामिउ = स्वामी — ४२५,
सामिणि = स्वामिनी — ११,
सामिय = स्वामी — ४, २५,......आदि
सामिण्हं = ,, — २११,
सामी = ,, — १५७, २०४, आदि
सामीय = ,, — ३८,
सायऊं = ,, — १५७,
सायर = सागर — २२२, ... आदि,
सायरदत्त = सागरदत्त — ३६४,......,
सायरु = सागर — २५६, आदि,
सार = चौपड़ — २३२ आदि,
सारउ = दूर करना — २१३,
सारद = शारदा — [illegible], आदि,
सारु = सम्पन्न — ३६, ६५, १८५,
सारंग = — ३८,
सारंगदे = — २७६,
सावधाण = — ४८७,
सावय = श्रावक — ५१६,
सावयह = ,, — ३८,
सावल = — ४३३,
सावलउ = — ४३२,
सावलदे = — २७४,
साव = सभी — ....
सासइ = संशय — ३६४,
सासु = श्वश्रू (सास) — १४६,
सासू = ,, — १५७,
साहउ = — ४४३,
साहण = साधन — २६६,
साहणा = सैन्य — ३८,
साहणु = ,, — ४४६, ४७८,

साहूर = साहूकार – ११८,
साहस = साहसी – २५८, ३८६, आदि
साहसु साहस – १३६, २४२,
साहि = सहारे – ३६७, ५३७,
साहिव्वउ = साधूंगा – ५२७,
साहु = सेठ – ३८, ५८, ११३, आदि
सांकरे = सांकले – १६१,
सांफी = संध्या समय – २१५,
सिउ = से, सथ – २६३, ४२६, आदि.
सिऊ = – ३८,
सिक्खवय = शिक्षा व्रत – ५१,
सिखि = – ३८,
सिग्घु = शीघ्र – १५४,
सिगरी = सभी – १२१,
सिठ = प्रसिद्ध – १२,
सिद्धउ = सिद्ध हुआ – २५६,
सिद्धि = – २८७,
सिर = मस्तक – १५४,
सिरघ = शीघ्र – ४६७,
सिरहु = सिर पर – ६८,
सिरहं = ,, – १५३,
सिरि = सिर – २२८,
सिरी = – २६८,
सिरीखंड = श्रीखंड – ४७२,
सिरिगुण = – १८७,
सिरिमइ = श्रीमती – २२१,
सिरिमति = ,, – २५६,
सिरीया = ,, – २७, २५४,
सिरीयामति = ,, – २३६, आदि,
सिरु = सिर, मस्तक – ८, २२६, आदि
सिला = शिला – ३३३,
सिलारूप = शिला के रूप में – ३३५,
सिलाहु = शिला – ३३४,

सिवदेउ = – ५२८,
सिवपुरि = मोक्ष – ४,
सिहु = साथ – १०२, १६८, आदि,
सिंगारमइ = शृङ्गारमती – २८१, ३४२,
सिंघलदीपि = सिंघलद्वीप – ३६०,
सिंचण = सींचना – १६८,
सिंचि = सींचकर – १०६,
सिंचिउ = सींचना – १६६,
सिंदुबार = – १७४,
सिंह = प्रमुख – ४६५,
सिंहल = सिंहल – ३४०, ...आदि,
सिंहासण = – ४६०,
सिंहासणु = सिंहासन – ४१६,
सिंहुज = – २८६,
सीखिउ = सीखा – १५,
सीखी = – ३३२,
सीधर = – ४४१,
सीमा = – ३८, ४७०,
सीयल = शीतल – ५,
सीयलक = ,, – १४,
सीयलु = ,, – ५,
सीया = सीता – ३६६,
सीरधु = श्रीरघु – ३८५,
सीलु = – ३८,
सीलवंत = शीलवान – ६६, ४६६,
सीलु = शीलवंत – १५७, २५१,आदि
सील्हे = – १८२,
सीवल = सेमल – २६०,
सीस = – ४३०,
सीसइं = – ३६,
सीसे = शिरस्त्राण – ४५७,
सीहदि = सिंह – २५७,
सींग = – १८४,

सुइरी = स्मरण करना – ३५२,
सुइंछिइ = स्वइच्छित – २८७,
सुउ = सुत – १, २१६,
सुकइ = सुकवि – १५, १६, ···आदि,
सुकीठ = कठिनाई से मिलने योग्य–१७६
सुकुमाल = सुकोमल – ३०६,
सुक्क = शुक्र – १३,
सुक्केउ = सुकेतु – ५०८,
सुख = – ४३७,
सुखरु = – ५३४,
सुखसरइ = सुख प्राप्त होना – २०८,
सुखसेणवलि = सुखसमनावली – २७५
सुखासण = पालकी – १२१, १२८,
सुखि = – ३५,
सुखियाइ = सुखी होना – ३०३,
सुखु = – २२४,
सुगुणगुण = सद्गुणों वाला – ४००,
सुचंगु = चंगी, अच्छे स्वास्थ्य वाली –
सुछिंड = छोड़कर – २२१,
सुजाण = सुजान – ३०४,
सुजाणु = – ४४१,
सुठ = सुन्दर – १८१,
सुठि = ,, – ४००,
सुठु = ,, – १८१, ४१०, आदि,
सुण = – २०६, ३०२,
सुणइ = सुना – ३१७, ५५१,
सुणह = – २५०,
सुणहि = सुनो – ३०३, ३१६,
सुणी = – २१३,
सुणेइ = – २४५,
सुणेहि = सुनो – ४७१, ५१७,
सुत = – २२८, ४८१,

सुतउ = सूता हुआ – २१७,
सुतधार = सूत्रधार – १०३, १०६,
सुतधारि = ,, – ७८, ८४,
सुतधारी = ,, – ६०,
सुतमउ = – २७१,
सुत्तारि = सुन्दर तारिका – ११७,
सुतु = पुत्र – ८,
सुदत्तह = – ५३७,
सुदत्तु = सुदत्त – १८०, ५०६,
सुदि = शुक्लपक्ष – २६,
सुद्ध = – ४७३,
सुद्धउ = – ४६८,
सुद्धि = शुद्ध – ६६,
सुधउ = ,, – १८,
सुधरंति = धारण करना – २८०,
सुनत = – ५४६,
सुन्दरि = – २२१,
सुनहि = – ५२३,
सुनहु = सुनो – १५७,
सुनि = – ३००,
सुनिउ = सुना – २५६,
सुन्हि = ,, – २००,
सुपत्तह = सुपात्र – १४२,
सुप्पहु = सुप्रभ – ५०६,
सुपासु = सुपार्श्वनाथ – ४,
सुपियार = प्रेम सहित – ४२, २०२,
सुबात = बार्ता – ३४१,
सुमइ = सुमति – २७४,
सुमइनाहु = सुमतिनाथ – ३,
सुमइल = सुमति – २७८,
सुमसि = – १८३,
सुमयादेवि = 'सुमया' देवी – २७२,

सुमरइ = स्मरण किया – २५४, ३३४
सुमरणि = – ४८७,
सुमरत = स्मरण करते – २५२,
सुग = – २७४,
सुर = देवता – १०२, ५१४,
सुरमा = – २७२,
सुरसादि = सुरसारी – २७०,
सुरय = सूरत – २८०,
सुरग्ग = स्वर्ग – ३६, २६८,
सुरही = सुरभित – १७४,
सुरा = – १६३,
सुरु = सुर, देवता – ७, २५३,
सुरुपाल = श्रीपाल – १८१,
सुरेख = शुभ रेखा वाली – ४६, ६५,
सुरेन्द्र = इन्द्र – २६८,
सुलखणु = सुलक्षण – ११३,
सुव = – ४९२,
सुवणु = सवर्ण – ४५,
सुविचार = विचारपूर्वक – ६०,
सुव्वस = – २८,
सुवा = लड़की – २२०,
सुवास = सुगंधित – १६७,
सुविशाल = बड़े – ४५,
सुव्वि = – ३२८,
सुसर = श्वसुर – १४६, २४४ आदि,
सुसरु = ,, – १४६, २४४,
सुसरे = ,, – १५७,
सुसारि = सार – ५२३,
सुह = सुख – १३, ·········आदि,
सुहगादे = – २५४,
सुहड़ = सुभट – १२४,
सुहणाल = जातिविशेष के योद्धा–४६०
सुहयर = सुख से – ५४५,
सुहवइ = – ५३२,
सुहसार = पुससार – ३८,
सुहाइ = शोभा देना – ४५, ६३, आदि
सुहि = सुखी – ३६,
सुहु = सुख – २४५,
सुंडि = सूंड – ३५५,
सुंडु = ,, – ३४६,
सुंदरि = – ४३०,
सुंदरीय = सुंदरी – २२३,
सूकउ = सूखी – ३६३, ४६५,
सूकी = सूखे – १६५,
सूखे = ,, – २६०,
सूझइ = दिखाई देना – १६४, ४५३,
सूडिउ = सूंडी से – ३४५,
सूडु = – १८३,
सूती = सोगई – २२५, ३४२,
सून = सूना – ३१३,
सूनौ = – १२६,
सूर = सूर्य – ३६, ···········आदि,
सूरू = ,, – १३, २६६, ५५०,
सूवा = तोता – ६६,
सेज = शय्या – २६६,
सेठ = – ४८, ······आदि
सेठि = सेठ – ४५, ४६, ······आदि
सेठिणि = सेठानी – ५६, ······आदि
सेठिपुत्र = (जिणदत्त) – २३१,
सेतु = – १६३,
सेयंस = श्रेयांसनाथ – ५,
सेव = – ५१४,
सेवज = सेवा – २६८,
सेवती = – १७३,

सेव्वउ = सेवा करता – ....,
सेवा = – २२४,
सेष = शेष – ४५८,
सोइ = वही – ४८४, ... आदि,
सोउ = ,, – २९६,
सोग = अशोक – २८५,
सोगु = शोक – १६५, ... आदि,
सोषणी = धरता – १५३,
सोजि = उस – ९०, ... आदि,
सोतह = सौत का – १८३,
सोतियहि = श्रोत्रिय – ३८,
सोनवती = – २७७,
सोने = स्वर्ग – १३५,
सोपुण = पुनः – १८६,
सोभाव = सुन्दर वचन – २७९,
सोभित = शोभित – १४१,
सोम = चन्द्रमा – १३, आदि,
सोमदत्त = सोमदत्त – १७०,
सोय = वही – ५८,
सोरठी = सौराष्ट्री – २७०,
सोलह = १६ – २८६, आदि,
सोवइ = सोना – ३०१,
सोवण्ण = स्वर्ण – २८२,
सोवणु = सोने में – २३२,
सोवती = सोती हुई – ३१८,
सोवन्न = स्वर्ण – ८६, २७२, आदि,
सोवह = सोना – ३०२,
सोवहि = सुशोभित होना – ६८, आदि
सोवि = वह, सोना – १५४, ...आदि
सोवंतिय = सोती हुई – ३०९,
सोहइ = शोभित – ८६, ...आदि
सोहउ = ,, – ३४६,
सोहहि = ,, – ९५, १०६,
सोहा = – २८,
सोहियउ = शोभा देना – ४५,
सौ = – १०१,
सौवइ = सोना – २२५,
सौंहौं = सम्मुख – ३५३,
संक = शंका – ३८४,
संकट = – ४८४,
संखदीउ = शंखद्वीप – १९८,
संगहइ = संग्रह – ५४८,
संगुम = – ५१८,
संघ = – ५०४,
संघल = सिंहल – २००,
संघहु = संघ – ११,
संघात = समूह – १५३, २५५, ४८६,
संचिउ = संचय किया हुआ – ५४,
संजमु = संयम – २, ५२१,
संजाय = – ५३४,
संजुत = सहित – ४७, १०८, आदि,
संजुतु = संयुक्त – ४३७, ५२८,
संजूत = ,, – ५६,
संजोइ = संजोकर – ४१२,
संत = शान्त – ३८, ... आदि,
संतापु = संताप – १३६, १३७, १४२,
संति = – २४९,
संतिणाह = शांतिनाथ – ६,
संतु = शांत होकर – १७,
संतुठी = संतुष्ट – १७,
संदेहु = सन्देह – ३८२, ...आदि,
संपइ = सम्पत्ति – ४८, ... आदि,
संपत्ति = वैभव – २,
संपय = संपत्ति – १४४,

संबंधी = — ५३५,
संभइ = संभव हुई — २५३,
संभलि = — ४३२,
संभव = संभवनाथ — ३, १४,
संभवइ = संभव हुआ — २५१,
संभालि = स्मरण किया — ३५५,
संभदी = विदा किया — २३१,
संवत् = सम्वत — २६,
संबल = मार्ग का भोजन — १४६, १६०
संसहु = — ५२५,
संसारहु = — ५१२,
संसारि — ५२४,
संहरिउ = संहार किया — ३६६,
संज्ञासु = विचारों में — ४८५,

ह

हइ = है — ६३, १३५, ………आदि,
हउ = मैं — १०८, १६, ……आदि,
हउए = — ५५२,
हकराइ = बुलाया — ८४, ४६३,
हकरायउ = ,, — ४४१,
हकारउ = बुलाना — २१७,
हक्कारउ = बुलाने — ६६,
हकारि = बुलाकर — ११६, ……आदि,
हक्किउ = बुलाया — २५६,
हकइ = सरना — ४०२,
हकहि = गाली देना — ६८,
हण = हनन करना — ३५७,
हणहि = मारना — २२१,
हत्थालंवण = हस्तावलंबन — ५५०,
हत्थु = हाथ — १६,
हत्थी = हाथी — ३४४,
हथिए = — ३७०,
हथिया = हाथी — ३५६,
हनि = नष्ट कर — ५४७,
हनु = हरना — ४६,
हपा = हप्पा — ४१०, ………आदि,
हप्पा = ,, — १८०, ………आदि,
हम कहु = हमको — ८१,
हम = — १३१,
हमरउ = हमारा — २४४,
हमह = हम्हें — ३६३,
हमहु = हमें — १७७,
हमारी = — २३४, ४००,
हमारे = — २६६,
हमारौ = — ७३,
हमि = — १७८,
हमु = हमें — ७४, १११, आदि,
हमुहि = — ४३६,
हयउ = — ३५८, ५२८,
हर = हरना — ३५४,
हरइ = हरण — २७६,
हरउ = — १७२,
हरण = हरने वाला — ६, ९,
हरतु = — ४२७,
हरस्यौ = — ४३८,
हरहि = हरती है — २८०,
हरहु = हरो — ११,
हरिउ = हरना — ७,
हरिएवास = हरा बांस — १२५,
हरिगुण = — १८०,
हरिचंद = — १८२,
हरी = हरना — ४१२,
हरु = हल्की — ६६,

हरे = — ४४३,

हल्ल = हल्ला — ३३३, ४५५,

हवइ = ... — ५१०,

हसइ = हंसते हुये — ३२६, ३३६,......

हसतिनचाहु = प्रसन्न हुआ — ११३,

हसहि = हंसना — ३३३, ३३४,

हसाइ = हसावे — ३३४,

हसाव = हंसाऊं — ३३३, ३३७,

हसि = हंस — ३३५, ४१७,

हसंतु = — ४३०,

हस्ति = हाथी — १२२,

हहकाइ = अट्टहास — ३३५, ३३६,

हहि = है — ३३२, ३७१,

हाइ = — १५६,

हाउ = — ३७५,

हाकर = पशु विशेष — ४०७,

हाकि = हांक — २५४, ४५३,

हाकिउ = हिलाया — ४६५,

हाट = दूकान — ५०३,

हाथ = हस्त, हाथी — २५, ...आदि

हाथहि = — २३०,

हाथि = हाथी, हाथ — ३५४, ...,

हाथिउ = हाथी — ३६०,

हाथिजोडि = हाथ जोड़कर — १६३,

हाथु = हाथ — ५६, ...आदि,

हास्थिउ = हाथी — ३४८,

हार = माला — १०६, ...आदि,

हारि = ,, — १३०, ... ,,

हारिउ = हार गये — १३०, १३८,

हारिवि = हारकर — १३६, १४३,

हाल्होरु = हास्यबोल — ४२३,

हारे = ... — .... ,,

हाव-भाव = — २८०,

हासउ = हंसी — ३२६,

हाहाकारु = हाहाकार — २१५, ४२५,

हित = भला — १७६,

हियइ = हृदय — ३६८, ...आदि,

हियउ = ,, — ७६,

हियडइ = हृदय में — ५६,

हियडा = ,, — ३१३,

हियलोकणी = हृदय लोकिनी — २८७,

हीण = हीन — २०,

हीणवि = — ५५३,

हीणहं = असमर्थ — २०८,

हीणे = हीन — ३७४,

हीणंगु = — ४२६,

हीरा = — १६८,

हीरादे = — २७५,

हीरामणि = हीरे की मणि — ६७,

हुइ = होकर — २७, ...आदि,

हुइहइ = होगा — १११,

हुई थी = — १६८,

हुउ = मैं — ....,

हुउसउ = हो सकता हूँ — २८,

हुय = — १५४,

हुवऊ = होकर — ....,

हुवासणु = हुताशन (अग्नि)— १५६,

हूतउ = होकर — १६७,

हूल = हल्ला — १७४,

हूवउ = — २३२,

हूं = मैं — १६३, २०२, ... आदि,

हेम = — ४१२,

हेला = धाक — ३६६,

होइ = होना — २, २०, ... आदि,

होइसइ = होवेगा – २८३,
होउ = है – २६६, ५०६,
होणि = चिन्ता – १४२,
होति = – १५३,
होनि = अगवानी – १२३,
होय = – ५८,
होसइ = होगा – ४७, ५६, ५८,
होसहि = होंगे – १,
होहु = होय – २५०,
होहि = – २३०, २४२,
हुंटे = घूमे – ३८६,
·········· आदि,
हंसइ = हंसते हैं – ११६, १४३,
·········· आदि,
हंसकूट = – ३६४,
हंसगइगमणि = हंस की चाल चलने वाली – ४६, ·········· ९०, १०२,
हंसतूल = हंस के समान – २६६,
हंसागमणि = हंस गामिनी – १५४, २७४, ·········· आदि,
हंसागवणी = हंस गामिनी – १५५,
हंसि = हंसकर – ७३, १६५,
हंसिनी = – २७७,
हंसु = हंस – ६१,
हांकि = हांकि – ३६८,
हिंडइ = घूमना – २२६,
हुंतउ = होकर – २००,
हुंति = होने पर भी – ३२५, ४३०,
हुंतउ = (था) – २४४, ५४४,

॥ इति ॥

अर्थ-संशोधन

प्रस्तुत रचना हिन्दी की एक प्राचीन काव्य-कृति है। इसमें अपभ्रंश शब्दों की बहुलता है। प्रकाशन के पश्चात् पुस्तक को देखने पर कतिपय अर्थ संशोधन अपेक्षित लगे, उन्हें नीचे दिया जा रहा है। इनमें लगभग आधे स्थलों पर मेरे द्वारा दिये हुए अर्थ हैं, उनके हमने तारक चिन्ह लगा दिये हैं, शेष आधे स्थलों पर नये अर्थ प्रस्तावित हैं। आशा है पाठक इन अर्थों पर विचार करेंगे।

*१. ८. ३' 'धर सिर लाइ' का अर्थ किया गया है 'साष्टांग नमस्कार करके', होना चाहिये 'धरा पर सिर रखते हुए'। साष्टांग नमस्कार भिन्न होता है।

२. २६. ३: 'सहिउ तहि मछिंदु मउरउ ण दीसइ' का अर्थ किया गया है 'मछिन्दु (मछन्द) मउरउ ण (मुकुट बिना)', 'सहिउ' को कदाचित् होना चाहिये 'महिउ', क्योंकि 'मकार' युक्त नाम वाले पदार्थों का ही इस छंद में उल्लेख हुआ है, और इस पाठ को लेकर अर्थ होगा— 'मही (आद्य) तथा मत्स्येन्द्र (बड़ी मछलियाँ) तथा मयूर भी नहीं दीखते थे।

*३. ७४. २: अर्थ में दिये हुये 'इससे अधिक क्या कहूँ' के लिये मूलपाठ में कोई शब्दावली नहीं है और न उससे अर्थ में ही कोई स्पष्टता आती है।

*४. ९१. ३: 'जाणु थाणु विहितहि घणे' का अर्थ किया गया है— 'घुटनों के नीचे स्थान टिकोरे बहुत घने थे' किन्तु 'जानु-स्थान' से 'घुटनों के नीचे का स्थान' अर्थ नहीं लिया जा सकता है, न वह स्थान सघन ही होता है। संभवत:जाणु=मानों, थाणु<_स्थाणु = स्तंभ, विहि = दोनों, तहि = वहाँ हैं अत। अर्थ होगा 'उसके [दोनों पैर ऐसे थे] मानों वहाँ दो सघन (स्तंभ) स्थाणु हों':

*५. ६३. ३: 'नीले चिहुर सि उज्जल कास' का अर्थ किया गया है, 'उज्ज्वल एवं नील वर्ण की रोमावलि थी'। 'रोमावलि' उज्ज्वल वर्ण का किसी भी तरुणी की नहीं हो सकती है। अर्थ संभवतः होगा, 'उसके चिकुर (केश-पाश) नीले (श्याम) थे, और उसकी कक्षा (काँख पर के बालों) उज्ज्वल [वर्ण की] थी'। किन्तु तीसरे और चौथे दोनों चरणों के तुक में 'कास' है, इसलिये असम्भव नहीं कि 'कास' दोनों में से एक चरण में स्मृति-भ्रम से आ गया हो, पाठ कुछ और रहा हो।

*६. १०६. ४: 'चन्दन सिंचि लइ उछंग' का अर्थ किया गया है, 'उसे चंदन से सींच कर सचेत कराया गया'। होना चाहिये, उसे (उस चित्रपट को) चन्दन से सिंचकर [विमलमती ने] क्रोड (गोद) में ले लिया'।

*७. १२२. ४: 'चंपापुरिहि पइठ' का अर्थ किया गया है, 'चम्पापुरी की ओर चले', किन्तु होना चाहिए 'चंपापुरी में प्रविष्ट हुए'।

*८. १२३. ३: 'भउ हल्ल कल्लोलु' का अर्थ किया गया है 'शोरगुल एवं प्रसन्नता छा गयी', जबकि होना चाहिये 'हल्ल (तुमुल शब्दों) का कल्लोल (तरंगोल्लास) सा हुआ'।

*९. १२६. ३: 'समदी विमलमती विलखाइ' का 'कुमारी विमलमती को बिलखते हुये विदा किया'—अर्थ देते हुये अन्य अर्थ के रूप में दिया गया है 'समधी (ब्याही) बिलखती हुई विमलमती को', जो कि संभव नहीं है, क्योंकि 'समदी' 'समधी' से भिन्न शब्द है, और दोनों में से किसी शब्द का भी अर्थ 'ब्याही' नहीं होता है।

१०. १२८. ३: 'आइ कुमारी' का अर्थ किया गया है 'कुमारी आ रही है', किन्तु 'विमलमती' उस समय कुमारी नहीं, विवाहिता और जिनदत्त की पत्नी थी और उसका 'जुए के समय वहाँ उपस्थित रहना' पाठसिद्ध भी नहीं है। अतः 'आइ कुमारी' का अर्थ सम्भवतः होगा, 'बयार की [जुआ खेलने की] फसल आगई है'।

११. १५६. ४: 'हाइ बाइ गुसइ सहि छाड़ि कति गयउ कंत मोहि' के 'हाइ बाइ गुसइ सहि' का अर्थ नहीं किया गया है, जो कि सम्भवतः होना चाहिए 'हाय बाई (माँ), गुस्से के साथ—'। केवल दो स्थानों पर कवि ने फारसी-अरबी शब्दों का प्रयोग किया है और उनमें से एक यह है।

*१२. १६९. २: 'मन पर परितहि दीनउ भोगु' का अर्थ किया गया है, 'उस पर (गंधोदक) पहले ही भोग में रखने योग्य हो गया', जब कि होना चाहिए उस (अशोक) ने अन्य स्वभाव में पड़कर भोग (फल-फूल) दिये'।

*१३. १७०. २: 'तिन्हइं हार पदोले (पटोले) किए' का अर्थ किया गया है: 'उन्हें अब हरे एवं मजबूत कर दिये', किन्तु होना चाहिये, 'उन मालियों ने भी' जैसे रमणियाँ हारों तथा पटोलों—रेशमी वस्त्रों से करती है, [प्रसन्न होकर] हार-पटोल किये (पुष्पपत्रादि से अपना अलंकरण किया)।

१४. १८२.२: 'ते बाखर भरि चले बहुत' का अर्थ किया गया है, 'वे भी अपना सामान बाखरों में भरकर चलें' किन्तु होना चाहिये 'वे भी बहुतेरा बाखर (क्रय-विक्रय का पदार्थ) [वेष्ठनों में] भरकर चले'।

१५. १८४. १-२: 'पूतु न जाणउ बाखर आदि, कोड़ि सींग भर लद जेवादि' अर्थ किया गया है 'उन्होंने बाखरों में क्या है, यह न जानते हुये भी कोड़ियों एवं सींगों को बैलों पर लाद लिया', किन्तु होना चाहिये, 'पूत (पुत्र-जीवक—एक फल-जिसके बीजों की मालाएँ बनती थीं, जो प्रायः बच्चों को स्वस्थ रखने के लिये पिन्हाई जाती थीं) के बाखर (सौदे) का तो आदि (परिमाण) ही ज्ञात न होता था और जवादि (एक सुगंधित द्रव्य) का एक कोटि सींग (बैलों) का भार ले लिया गया'।

१६. १८४. ४: 'दुइ बोहयु भरि वेणा लए' का अर्थ किया गया है, 'जिसमें दो जहाज भर लिए और वेणा नगर (को जाने का संकल्प) लिया', किन्तु होना चाहिये, 'दो जहाजों का भार [उसने] वेणा (खस) का ले लिया'।

*१७. १८६. २: 'गए बिलावल कइ पइ पसारि'–जिसमें 'पइ पसार' न हो कर पाठ 'पइसारि' होना चाहिये, का अर्थ किया गया है 'वे बिलावल तक चलते गये, किन्तु अर्थ होगा 'वे वेलाकुल (बन्दरगाह) के प्रवेश [द्वार] पर पहुँच गए'।

*१८. १८६. ३: 'वलद महिष समुदइ निरु करहिं' का अर्थ किया गया है, 'उन्होंने बैलों और भैंसों को दूसरी ओर मोड़ दिया', किन्तु होना चाहिये, 'उनके बैल और भैंसे निश्चय ही शब्द करते थे'।

*१९. १६३. ४: 'सुरा सेतु दीसइ गु अणंतु' का अर्थ किया गया है, अनन्त जल ही जल चारों ओर दिखाई पड़ता था', किन्तु होना चाहिये, [वहां] अन्तहीन [सा] सुरा-सेतु [उन्हें] दिखाई पड़ रहा था [जिसे छोड़ते हुये वे आगे बढ़े]'।

२०. १६६. १–२: 'पणासइ धणु जलु जिणवरु नाहु, भव अंतर दीठिउ जलवाहु' का अर्थ किया गया है, 'वहाँ जल के मध्य जिन–चैत्यालय था तथा वहाँ उन्होंने भव से पार करने वाले जिनेन्द्र भगवान के दर्शन किये', जब कि होना कदाचित् चाहिये, [उन्होंने जिनेन्द्र भगवान से निवेदन किया], 'हे जिनेन्द्र नाथ, हमारा धन जल में प्रणष्ट होना चाहता है, क्योंकि हमें भव (समुद्र?) में जलवाह (जल-जंतु-विशेष) दिखाई पड़ा है।'

*२१. २१३. २: 'आहुठ……डि उद्धसे जिणदत्तु' का अर्थ पाठ त्रुटित होने के कारण नहीं दिया गया है, किन्तु तत्सूचक कोई संकेत होना चाहिये था। 'उद्धसे' 'उद्ध्वस्त हो गए' अथवा 'उद्ध्वस्थ थे' है।

२२. २२१. ४: 'मिठिया कि अण बाणहि हणहिं' में 'अण बाणहि' का अर्थ नहीं किया गया है, 'अण बाणहि' —है 'बिना बाणों के'।

*२३. २२५. २, ३६५. ३: 'मडउ' का अर्थ मुंडी (मुंड) किया गया है, जब कि होना चाहिये 'मृतक' = मुर्दा, [मनुष्य का] शव।

*२४. २२८. २: 'कामुत्तणार कहाहि' का अर्थ किया गया है, 'जिससे कौनसा पुत्र नर कहा जायगा'। पाठ त्रुटित है, अवशिष्ट शब्दों का अर्थ होना चाहिये कदाचित् 'तू किसीका··· कहलाए।'

२५. २४६. ४: 'बहु रोवहि अरु खीजहि नयगु' का अर्थ किया गया है, 'तुम बहुत रो रही हो, अब नेत्रों को धैर्य दो' किन्तु होना कदाचित् चाहिये, 'तुम बहुत रो, और नेत्रों को बरबाद कर रही हो।'

२६. २५०. १: 'रहिउ उन ठाउ (नठाउ?)' का अर्थ नहीं किया गया है। अर्थ होगा 'सभी कुछ नष्ट हो (?) गया था।'

*२७. २५५ ४: 'पाय लागि जिणदत्त संभालि' का अर्थ किया गया है 'उसके (विमलमती) चरणों में लगकर जिनदत्त को पुकारा', जबकि प्रसंग-सम्मत अर्थ होना चाहिये, 'उसने [जिनेन्द्र के] चरणों से लगकर जिनदत्त को [सत्वर] स्मरण किया।'

*२८. २५६.४, २६२.१, ३६५.४: 'भविय' का अर्थ 'भव्य' किया गया है, जब कि होना चाहिये < भविक = मुमुक्षु। (दे० छंद २५०.३, ४३८.२)

*२९. २६५.२: 'आवहु अज्ज न मारउ बोलु' का अर्थ किया गया है 'आओ, मारने के बोल मत बोलो' किन्तु होना चाहिये, 'आओ, आज मैं बोल न मारूंगा (छुरी मारूंगा),

३०. २६५.३: 'तौ न मुणसु जौ ऐसी करउं' का अर्थ किया गया है, 'जो ऐसा नहीं करेगा', होना चाहिये, 'तो मैं मनुष्य नहीं, यदि मैं ऐसा करूं (केवल बोल मारूं)'।

३१. २६८.३: 'णं सुरेन्द्र जो थापिउ सुरहं' का अर्थ किया गया है, 'मानों इन्द्र ने ही यहां स्वर्ग की स्थापना की हो', किन्तु होना चाहिये, 'मानों वह सुरेन्द्र है जो [उस पद पर] देवताओं द्वारा स्थापित किया गया हो।'

*३२ २७१.४: 'अचामउ सुतमउरव मुरारि' का अर्थ नहीं किया गया

है, शब्दावली अर्थों की ज्यों अर्थ में भी दुहरा दी गई हैं, किन्तु अर्थ होगा, 'जिसका अत्यद्भुत पुत्र रूप मुरारी हुआ है।

३३. २७४.३: 'रेह सुमई सुय पदमणि' का अर्थ तत्सम शब्दों में दुहरा भर दिया गया हैं— 'रेखा सुमति सुता पद्मिनी है', जबकि अर्थ होना चाहिये [और] सुमति रेखा है जो पद्मिनी कन्या है— अर्थात् जन्म से पद्मिनी है।'

*३४. २६०.२: अर्थ में दी हुई शब्दावली 'जिससे उसका मुख चमकने लगा' का आधार मूल पाठ में नहीं है, और न इससे अर्थ में ही कोई स्पष्टता आई है।

*३५. २६२.२: 'मण चिंति अयासि उपमइ' का अर्थ किया गया है, 'वह पास आगई', किन्तु होना चाहिये, 'मन द्वारा चिन्तित होते ही वह आकाश में [जहाँ जिनदत्त था] उत्पतित हो गई (उड़ या उठ आई)'।

*३६. २६८.३: 'विप्पए विचित्तहु वेगहु गहो' का कोई अर्थ नहीं किया गया है, होना चाहिए 'उस विप्र (जिणदत्त) ने [विमान पर चढ़ने पर] विचित्र वेग ग्रहण किया।'

*३७. ३०१.१, ४१५.१: 'अघाइ' का अर्थ 'थक कर' और 'अपार' किया गया है, जबकि होना चाहिये, 'तृप्त होकर' और 'भर-पेट'। (दे० ५०४.४)

३८. ३०४.१: 'सती तिरी ते नाह मुजाणा' का अर्थ किया गया है, 'सती वह है जो (अपने) सुजान (नाथ) के सामने (अपना) अस्तित्व मिटा दे', जब कि होना चाहिये, 'सती स्त्री अपने स्वामी को [ही] जानती है।"

*३९. ३२२.१: 'झडत्ति' का अर्थ 'खीझकार' किया गया है, किन्तु होना चाहिये झटिति = शीघ्र ही'।

*४०. ३२६.४: 'जिणदत्त भणति नारि मइ दिट्ठ' का अर्थ किया गया है, 'नारी (विवाह योग्य स्त्री) को मुझे बता दिए', किन्तु होना चाहिये 'जिसे जिणदत्त कहा जाता है, उसकी नारियों (पत्नियों) को मैंने देखा है।'

*४१. ३३३.३–४: 'तउ मैं देव तिलि सीखी कला, जौ न हसाउ पाहणु सिला' का अर्थ किया गया है, 'हे देव! मैंने तो वह कला सीखी है कि मैं पाषाण की शिला को भी न हंसा दूं (तो मेरा क्या नाम)', जब कि होना चाहिये, 'हे देव, तब तो मैंने वह कला सीखी ही नहीं, यदि मैं पाषाण–शिला को (भी) न हंसा दूँ।'

४२. ३४१.४: 'सो बुलाई' का अर्थ किया गया है, 'वह लौटकर,' जबकि होना चहिये, 'उस [मौन धारण किए हुई] स्त्री को बुलवाकर [मौन तोड़कर] बोलने के लिए प्रेरित कर'।

४३. ३४२.२: 'सुणि सुणि तिरिया मेलउ परिया जहा गयउ मोह' का अर्थ किया गया है, 'हे स्त्री सुनो, सुनो, जैसे ही वह (सागर में) गया, वह छोड़ दिया गया', जब कि होना चाहिये, 'हे स्त्री! सुनो, सुनो, [समुद्र में] छोड़ दिये जाने पर वह जहाँ गया'।

४४. ३४४.३: 'देई देई जाम जाम तहि बहु रयण समरिय' का अर्थ किया गया है, 'वह उसे बार-बार रत्न देने लगा', जब कि होना चाहिये 'जभी वह उसे समस्त [प्रकार के] बहुतेरे रत्न देने लगा'।

४५. ३५५.४: 'भव लावत्त लयउ जिणदत्त' का अर्थ किया गया है, 'उसके भव (जन्म) का ज्ञान कराते हुये पकड़ा', किन्तु होना चाहिये, 'जिनदत्त उस [हाथी को] मॅंवाने (चक्कर देने) लगा'।

४६. ३६०.४: 'सव पुर सामि अचंभो भयउ' का अर्थ किया गया है, 'सभी पुरुषों को आश्चर्य हुआ', जब कि होना चाहिये, '[उसने कहा,] "हे स्वामी, समस्त पुर को आश्चर्य हुआ–"'।

४७. ३६२.३–४: 'जो मोहिउ पूतलिय पहाण, पुण्यवंत को सकइ पहाण (बखाण?)' का अर्थ किया गया है 'जो पत्थर की पुतली को देखकर मोहित हो गया, उस पुण्यवंत की कितनी प्रशंसा की जावे?' किन्तु होना चाहिये,

'जिसने पाषाण की पुतली को मोहित कर लिया उस पुण्यवंत की प्रशंसा (?) कौन कर सकता है ?'

पाषाण शिला को तारुणी विद्या द्वारा मोहित कर हँसाने और उसके द्वारा लोगों का मनोरंजन करने का प्रसंग कुछ ही पूर्व आया है (छंद—३३५-३३६), दोनों चरणों के तुक में 'पषाण' है, जिनमें से पहला प्रसंग के लिये अनिवार्य है और दूसरा अर्थ-हीन, इसलिए दूसरे के स्थान पर पाठ संभवतः 'वखाण' होना चाहिये था।

*४८. ३६३.१: 'परिहसु लियउ दिसंतर करइ' में 'परिहसु' का अर्थ 'खुशी के साथ' किया गया है, किन्तु 'परिस' ∠ परिहास = [लोक द्वारा किया जाने वाला] उपहास है, जुए में ग्यारह करोड़ रुपये हार जाने के लोक-परिहास के कारण ही जिणदत्त देशान्तर गया था (दे० छंद १५९)।

४९. ३६३.२: 'जहि कौ हाथ अंजणी चडइ' का अर्थ किया गया है 'जिसने अपने हाथ से अंजनी (गुटिका) चढ़ाई', किन्तु होना चाहिये 'जिसके हाथ अंजनी गुटिका चढ़ी' (दे० छंद १५२)।

५०. ३७६.३: 'अरण छाजत हहसइ सबु कोइ' का अर्थ किया गया है, 'यहाँ सब मनचाहा हो रहा है', जब कि होना चाहिये, 'अशोभन को सभी लोग हँसते हैं।'

५१. ३८४.४: 'मति करि मथियउ कालकुठु होइ' के 'कालकुठु' का अर्थ किया गया है 'कालकुष्ट', होना चाहिये 'कालकूट', समुद्र से उसके अत्यधिक मंथन के कारण 'कालकूट' निकला था।

५२. ३९२.२: 'किन पत तौ मिलवहु बइसारि' का अर्थ किया गया है, 'तब उन्हें बैठाकर मिल क्यों नहीं लेते?' जबकि होना चाहिये, 'तब उन्हें बिठाकर उनमें [अपना] प्रत्यय (विश्वास) क्यों नहीं मिलाते (उत्पन्न करते) हो?'

*५३. ४०९.४ 'कोदइ' का अर्थ 'चांवल किया गया है, किन्तु 'कोदई'

कोदव ∠ कुद्दव ∠ कुद्रव (चांवल से भिन्न) एक प्रकार का निकृष्ट धान्य है।

५४. ४११ ३: 'भूत्रित (भूषित)' का अर्थ 'प्रसन्न हुई' किया गया है, जब कि होना चाहिये 'आभूषित हुई'।

५५. ४१८ ३–४: 'निय म [न] विरह न पावइ जाण। धूतह दिण्ण राइ की आण।' का अर्थ किया गया है, 'इस वियोग के वह कोई कायदे-कानून नहीं जानता था, किन्तु उसने तो धूर्त को राजा की दुहाई दिलादी', जबकि होना चाहिये, '[अपनी स्त्रियों को देखने पर] अपने मन में जब उसे उनमें वियोग के लक्षण नहीं ज्ञात हुए, तो उसने उक्त धूर्त को राजा की आन (सौगन्ध) दी।'

५६. ४२५.२: 'हाहा कार [अ] पर किउ सवहिं' का अर्थ किया गया है, 'सब दूसरों ने हाहाकार किया', किन्तु होना चाहिये, 'तब [उसकी] अपर स्त्रियों ने भी उसमें हुंकारी भरी — उन्होंने भी उसको भाँति उक्त धूर्त को पति स्वीकार किया'।

*५७. ४२५.४: 'निय सामिउ तिन्हु खाइहु वहिउ' का अर्थ किया गया है, 'अपने स्वामी पर तीनों ही खड्ग चलाओ', जब कि होना चाहिये, 'अपने [विदेश से लौटे हुये वास्तविक] पती पर तीनों ने खड्ग चलाया है।'

५८. ४२६.१–२: राय पमुह सब जाणहु झूठ' का अर्थ किया गया है 'सब कुछ (हुण्डा सैंठ के वचन को)', जब कि कदाचित् होना चाहिये '[उन दुष्टाओं के] समस्त कथन को'।

५६. ४३२.२: 'संभलि पुहम ताह मुह वात' का अर्थ किया गया है, 'हे पृथ्वीपति! उसकी बात को स्मरण कर', जब कि होना चाहिये, 'हे पृथ्वीपति, मेरी बात सुनो'।

*६०. ४३२.४: 'हेम (हम?) पिउ देव नहीं सावलउ' का अर्थ किया गया है, 'हमारा पति तो, हे देव! सोने का सा है, सांवला नहीं है, किन्तु 'हेम' पाठ, जिससे 'सोने का सा' अर्थ लिया गया है, असंगत है, उसके स्थान पर शुद्ध पाठ

'हम' होगा, जिसका अर्थ होगा 'हमारा'।

*६१. ४३८.४: 'सइ राजा उठि लागिउ पाइ' का अर्थ किया गया है, 'सब राजा के चरणों से लगे', जब कि होना चाहिये 'राजा सइ (स्वयं) उठकर उस (जिणदत्त) के पैरों लगा'।

६२. ४४१.४: प्रति में पाठ 'सोरघ' है, जिसके स्थान पर 'सीघर' का सुझाव दिया गया है, किन्तु 'सोरघ' ठीक इसी प्रकार (छंद ४६८ में) आया हुआ है, इसलिए लगता है कि प्रति का पाठ अशुद्ध नहीं है।

६३. ४४४.२, ४५६.१: प्रथम स्थान पर 'ठाठा' का अर्थ 'उठकर' किया गया है, दूसरे स्थान पर 'ठाठा करना' अर्थ में वह यथावत् है, किन्तु 'ठाठा करना' का अर्थ 'सज्जा करना' तथा 'ठाठा' का अर्थ 'सजे-बजे हुए' ज्ञात होता है।

६४. ४४६.१: 'देस कुठार' का अर्थ 'कुठारु देस' किया गया है जो कि निरर्थक है, किन्तु शुद्ध पाठ कुठार' के स्थान पर 'कुठार' ∠ 'कोठार' ज्ञात होता है (दे० छंद ४७१) जो सं. कोष्ठागार=भण्डागार, भण्डार है।

६५. ४५३.३–४: 'हाकि निसाणु जोडि अणु हणो, अपुनइ देश पलाणे घणों' का अर्थ किया गया है, 'जब समस्त निशानों को जोड़कर उन पर चोट की गई तो बहुत से स्वतः ही अपने देश भाग गये', जब कि होना चाहिये– 'हक्का (पुकार) लगाकर जब सेना के लोगों ने निशानों पर आघात किए, तो अनेक देश [और उनके राजा] अपने–आप ही भाग निकले'।

*६६. ४५६. ३: 'परिजा भाजि गई जहि राउ' का अर्थ नहीं किया गया है, होना चाहिये 'प्रजा भागकर वहाँ गई जहाँ पर [गढ़ में] राजा था'।

६७. ४५७. ४: 'रचे मारु कइ सीसे घणों' का अर्थ किया गया है, 'मार करने के लिये अनेकानेक शिरस्त्राण रचे गये' किन्तु होना चाहिये 'मारों (योद्धाओं) ने अनेक कौसीसें (∠कपि शीर्ष=बुर्जें) बनाईं'।

६८. ४५८. १: 'कोटा पा [गार] (उ) त्तंग अपार' का अर्थ किया गया है, 'कोट के पास ऊंची प्राकार थी', जब कि होना चाहिये, 'कोट का प्राकार अत्यधिक उत्तंग (ऊंचा) था'।

६९. ४६०. ३: 'सुहनाल' का अर्थ 'तोप' किया गया है, किन्तु 'सुहनाल' एक योद्धा का नाम है, जो आगे राजा चन्द्रशेखर के दूत के रूप में जिणदत्त के पास जाता है। (दे० ४६४. २, ४६६. १)।

७०. ४६५. २: 'हाकिउ कणइ दंड परिहारि' का अर्थ किया गया है, प्रतिहारी ने स्वर्णदण्ड हांका (हिलाया)', जबकि होना चाहिये 'कनक-दण्ड धारण करने वाले प्रतिहारी ने उसे हांका (पुकारा)'।

*७१. ४६६. ४: 'देवि सीसु धिर लगिउ पाउ' का अर्थ किया गया है, 'विश्वास दिलाकर उसने राजा के चरणों का स्पर्श किया'। 'देवि सोस' के स्थान पर शुद्ध पाठ कदाचित् 'दे विसासु' मान कर किया गया है, किन्तु राजा (जिणदत्त) के दर्शन करते ही उसे विश्वास दिलाने का कोई प्रश्न नहीं उठता है, इसलिये यह अर्थ प्रसंगसम्मत नहीं है। शुद्ध पाठ 'देवि' के स्थान पर कदाचित् 'देखि' होगा, इसलिये अर्थ होगा, 'राजा (जिणदत्त) को देखकर दूत अपना सिर रखते हुए उसके पैरों लगा'।

७२. ४७५. ३: 'अकहा कहा किम कहियइ बेठि' का अर्थ किया गया है। 'यहां बैठकर न कहने योग्य बात क्यों कहते हो?' किन्तु होना चाहिये, 'यहां बैठकर यह अकथनीय (जिणदत्त के द्वारा नगरश्रेष्ठी जीवदेव को मांगने का) कथन कैसे कहा जाए?

*७३. ४७९.२: 'वरु किनु नयरहं कुइला बवइ' के 'कुइला' का अर्थ 'कुचला' किया गया है, किन्तु 'कुइला' 'कोयला' है, और 'कोयला बोना' एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है 'आग लगाना'।

*७४. ४८३.१: 'तूटउ इ.........सोमिय दुइ लगाउ' का अर्थ किया गया है,

'हे स्वामी, (अपने दोनों) का दुःख टूटा हुआ है (दूर हुआ चाहता है)' किन्तु प्रसंग के अनुसार अर्थ इसके ठीक विपरीत होना चाहिये, 'हे स्वामी [हमपर] दुःख का ·········टूट पड़ा है' ।

*७५. ४६४.१: 'विसुरिउ' का अर्थ 'विसूर कर (चिन्तारहित होकर)' किया गया है, जबकि इसके विपरीत उसका अर्थ 'चिंताकर (सोचकर)' होना चाहिये ।

*७६. ४६७.२: 'किछु परि जाणउ देउ निरुत' का अर्थ किया गया है, 'ओ हे देव ! हम कुछ निरुत जानें (कहें)', किन्तु होना चाहिये 'हे देव, हमें निरुक्त का (ठीक बात) कुछ परिज्ञान हो' ।

*७७. ५०३.१: 'भए बधाए हाइ निसाए' के 'हाइ निसाए' का अर्थ किया गया है, 'पौसौ (पौसा) पर चोट पड़ी' । 'पौसा' निरर्थक है और 'हाइ' भी अशुद्ध है, उसके स्थान पर पाठ प्रति में 'हुए' होना चाहिये और 'हुए निसाए' का अर्थ होना चाहिये निसानों (धौंसों) पर चोट पड़ी' ।

७८. ५०५.२: 'एक चित्त दुख (दुव) रहिय सरीर' का अर्थ किया गया है, दोनों एक-चित्त दो शरीर होकर रहने लगे', किन्तु 'दुव' न होकर प्रति में पाठ 'दुख' है, अतः अर्थ होना चाहिये, 'वे एकचित्त और दुःखरहित शरीर के थे' ।

७९. ५०७.१–२: 'करहि राजु भोगहि परठइ, नीत पणीत सतीण भए' का अर्थ किया गया है, '(जिणदत्त) राज्य करते हुए भोग में प्रस्थापित हो गए और नित्य प्रति उनमें सतृष्ण होते गये', किन्तु 'नीत पणीत' 'नित्य-प्रति' नहीं है, वह 'नीति-पणति' ज्ञात होता है, जिसका अर्थ 'नीति और व्यवहार' होना चाहिये ।

*८०. ५१२.१–२: 'उक्क पडण पइराइ निमित्त, लहिवि भोय संसारह वित्त' का अर्थ किया गया है, 'उल्कापात के निमित्त से भोग ग्रहण को संसार की स्थिति को बढ़ाने वाला जानकर उसे वैराग्य हुआ', किन्तु मेरी राय में

चाहिये होना उत्क-पतन (वासना से निवृत्ति) और वैराग्यलाभ के निमित्त ही संसार के वित्त का भोगलाभ कर' ।

८१. ५१३.३: 'परिवारहु सो हियउ महंतु' का अर्थ किया गया है, 'अपने परिवार के सहृदय से महान् हो गया', जब कि होना कदाचित् चाहिये, 'परिवार पूर्ण होने के कारण वह हृदय का महान् हो गया था' ।

८२. ५१५.१: 'गुरु' का अर्थ '(उसका) गुरु' लिया गया है, किन्तु शब्द संभवत: केवल 'पूजनीय व्यक्ति' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

८३. ५१७.२: 'कहु (हुमु) मुणीसरु गालिउ कम्मु' का अर्थ 'कहु' के अनन्तर 'हु' लगा करके किया गया है, 'मुनीश्वर ने कहा, कर्मों को नष्ट करो' । किन्तु कदाचित् होना चाहिये [तब] मुनीश्वर ने, जिन्होंने कर्मों को गालित कर रखा था—क्षीण रखा था, 'कहा' ।

*८४. ५२१.१: 'बारह भावण कहिय वियारि, संजमु नेमु धम्मु तउ चारि' का अर्थ किया गया है 'बारह भावनाओं का विचार (चिन्तन) करो, तथा' संयम, नियम, (दश-लक्षण) धर्म और तप इन चारों को·········' । किन्तु होना चाहिये, 'मैंने बारह भावनाओं को विचार कर कहा और संयम, नियम, धर्म तथा तप इन चार के विषय में बताया' ।

८५. ५२१.३: 'अब्भंतरि परमप्पा बुज्झि' का अर्थ किया गया है, 'परम पद के लिये अभ्यंतर (अन्तरंग) रूप से जानो', जब कि होना चाहिए, 'अभ्यंतर (अन्तःकरण) के परमपद को जान कर' ।

८६. ५२२. ४: 'सुक्ल ज्झाण वज्जरिउ अलेउ' का अर्थ किया गया है—'शुक्ल ध्यान के भेदों को जान कर ग्रहण एवं त्यागो', जब कि होना चाहिये, 'मैंने अलेप (अलिप्त) शुक्ल ध्यान का कथन किया' ।

*८७. ५२६·४:, ५३०·२: 'वणिजी' का अर्थ 'लेन देन' किया गया है होना चाहिये 'वाणिज्य' = 'क्रय विक्रयादि' ।

*८८. ५३४.३: 'तहि चइवि' का अर्थ 'वहां से चलकर' किया गया है, जो निरर्थक लगता है, होना चाहिये 'उन्हें त्याग कर' ।

*८९. ५३९.२: 'रय' का अर्थ 'काम' किया गया है, किन्तु कदाचित् होना चाहिये 'रजस' ।

९०. ५४०.१: 'निल्हउ' का अर्थ 'उदासीन' किया गया है, किन्तु णिल्ह ∠ निल्ह ∠ णिरोव = आदेश, आज्ञा है ।

९१. ५४१.३: 'मणमथ सहिउ दीउ मइ दीठ, मुक्ति लच्छि ते निगड वइठ' का अर्थ किया गया है, 'मुक्ति लक्ष्मी के निकट बैठने पर भी मुझे कामदेव पर विजय प्राप्त करने की दृष्टि दी है' किन्तु होना चाहिए, 'उसके द्वीप को मैंने मन्मथ के सहित देखा है, मैंने देखा है कि वह मुक्तिलक्ष्मी के निकट बैठा है' ।

*९२. ५४४.४: 'मुणिवरु गणु अछइ जित्थु' का अर्थ किया गया है, 'जिसको मुनिश्रेष्ठ उत्तम कहते हैं' किन्तु होना चाहिये 'जहां मुनि श्रेष्ठ गण [रहते] हैं' ।

*९३. ५४७.२: 'साहु सगि' का अर्थ 'सारे' किया गया है, किन्तु 'सगि' संभवतः 'संगि' है और इस संशोधन से अर्थ होगा, 'साधु [जिणदत्त] के संग में [रहकर]' ।

९४. ५५०.३: 'देखि विसूरु रयउ फुड एहु' में से 'देखि विसूरु' का अर्थ नहीं किया गया है । उसका अर्थ होगा 'उसे देखकर तथा [उसका] चिन्तन कर' ।

माताप्रसाद गुप्त